Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

फ़रवरी १९७५

पुस्तकालय
13/3/75

समांतर कहानी विशेषांक-५

आम आदमी के आसप
आज की कहानियां

कामतानाथ, ओम गोस्वामी, अभिमन
अनत, हिमांशु जोशी, विभुकुमार, रश्मि
तन्वा, सतीश जायसवाल, अकुलेश
परिहार, पाल भसीन, मुद्राराक्षस
राम सुरेश, दिनेश पालीवाल,
प्रभातकुमार त्रिपाठी की सशक्त
कहानियां

- भगवतीचरण वर्मा की विशिष्ट कहानी
- तथा सभी स्थायी स्तंभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिन्सो से रोज़ाना सूती कपड़े चकाचौंध सफ़ेद धुलते हैं

रोज़ाना के सूती कपड़े सचमुच मैले हो जाते हैं और उन्हें रोज़ाना सफ़ेद धोना एक मुसीबत है. रिन्सो का फ़ार्मूला इतना ज़ोरदार है कि मैल बाहर...और धुलाई चकाचौंध सफ़ेद ! सबसे अच्छे साबुनों के मुक़ाबले में रिन्सो गारण्टी के साथ बेहतर धोता है. इसके अलावा, धुलाई के दूसरे पाउडरों के मुक़ाबले में इसकी क़ीमत भी कम है.

अधिक चकाचौंध सफ़ेदी के लिए
रिन्सो से गर्म पानी में धोइए
गर्म पानी में रिन्सो मिलाइए. फेंटिए. कम से कम १/२ घंटे तक कपड़े भिगोए रखिए. सामान्य तरीक़े से धोइए. देखिए, अपने सूती कपड़ों की चकाचौंध !

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

लिंटास-RINSO.5-140 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

080582

सांस में दुर्गंध जुदाई कराये...

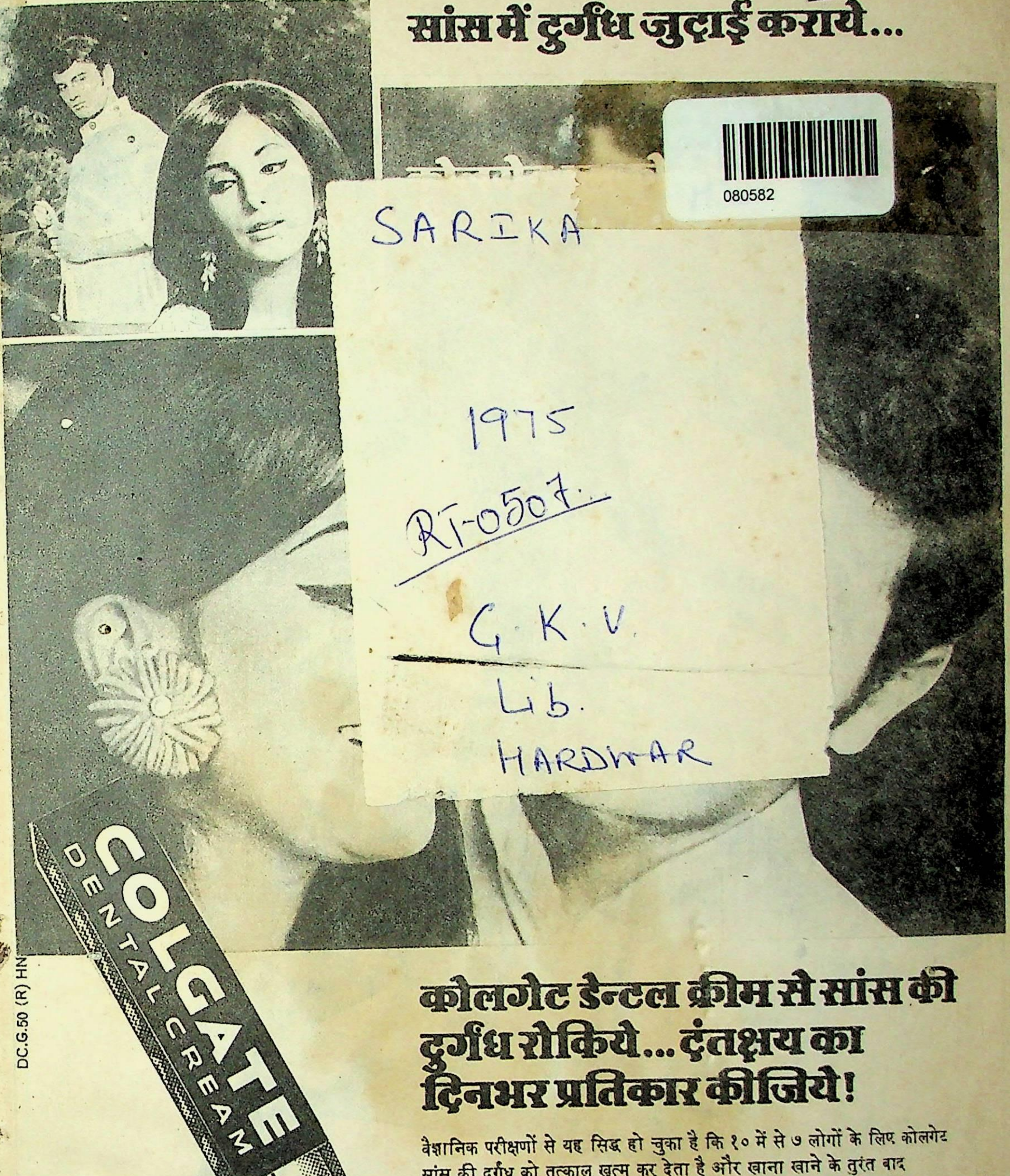

DC.G.50 (R) HN

कोलगेट डेन्टल क्रीम से सांस की दुर्गंध रोकिये... दंतक्षय का दिनभर प्रतिकार कीजिये!

वैज्ञानिक परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि १० में से ७ लोगों के लिए कोलगेट सांस की दुर्गंध को तत्काल ख़त्म कर देता है और खाना खाने के तुरंत बाद कोलगेट विधि से दांत साफ़ करने पर अब पहले से अधिक लोगों का—अधिक दंतक्षय रुक जाता है। दंत-मंजन के सारे इतिहास की यह एक बेमिसाल घटना है। क्योंकि एक ही बार दांत साफ़ करने पर कोलगेट डेन्टल क्रीम मुंह में दुर्गंध और दंतक्षय पैदा करने वाले ८५ प्रतिशत तक कीटाणुओं को दूर कर देता है। इसका पिपरमिंट जैसा स्वाद भी कितना अच्छा है—इसलिए बच्चे भी नियमित रूप से कोलगेट डेन्टल क्रीम से दांत साफ़ करना पसंद करते हैं।

ज़्यादा साफ़ व तरोताज़ा सांस और ज़्यादा सफ़ेद दांतों के लिए...
दुनिया में अधिक लोग दूसरे टूथपेस्टों के बजाय कोलगेट ही ख़रीदते हैं।

अधिक सफ़ेद दांतों, अधिक स्वस्थ मसूढ़ों व मुंह में अधिक ताज़गी के लिये **कोलगेट टूथ ब्रश** इस्तेमाल कीजिये १६ विभिन्न किस्मों में — आपके परिवार में हरेक के लिये अनुकूल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

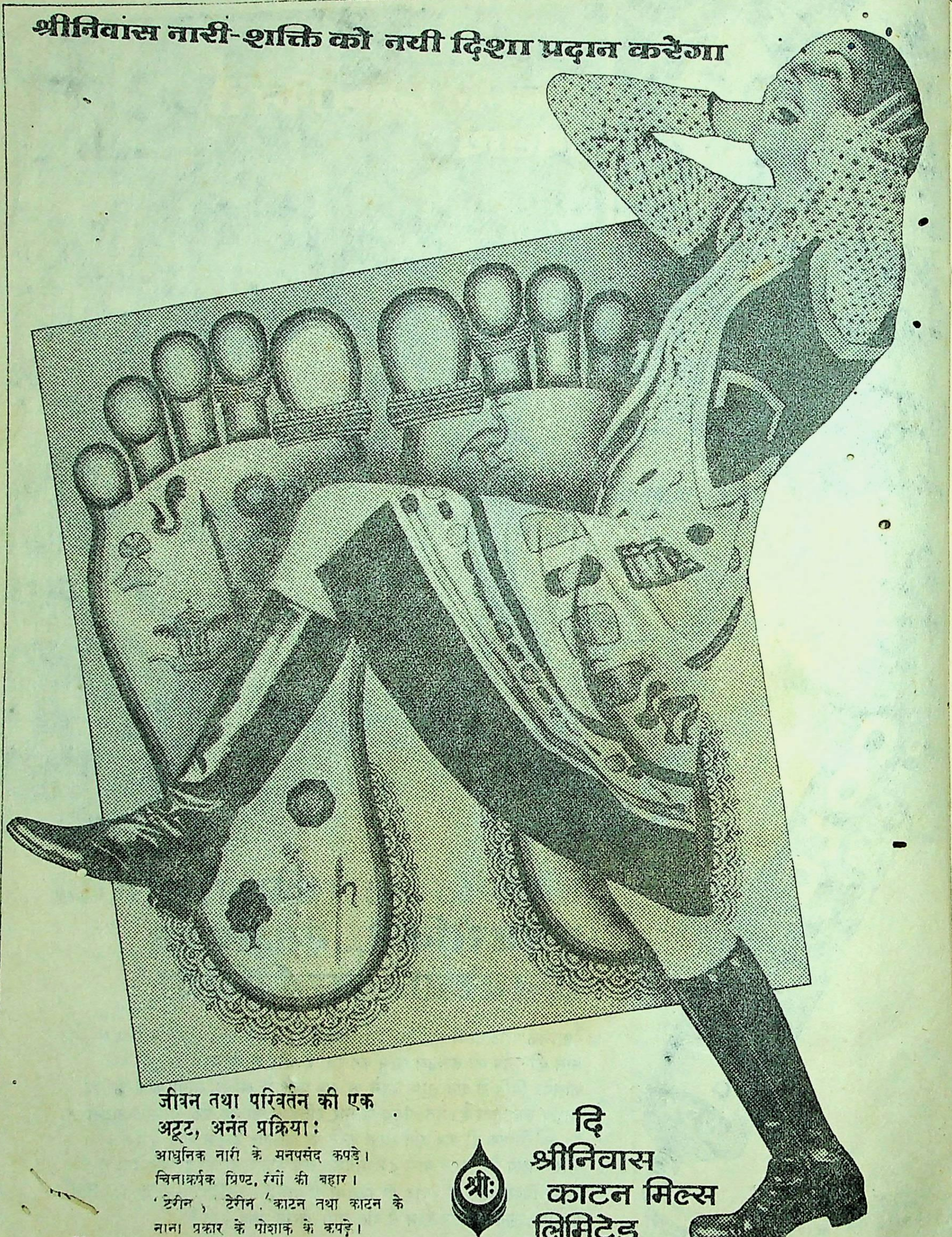

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आइये, शामिल हो जाइये

भारत के त्योहारों और मेलों में. दिवाली, दशहरा, होली, इस्टर, क्रिसमस, मोहर्रम, बैसाखी, रक्षा बन्धन, दुर्गापूजा, ओणम, ईद-उल-फितर, गणेश चतुर्थी में. बहुत लम्बी है यह सूची पर त्योहार सिर्फ़ यही नहीं और सिर्फ़ ऐसे भी नहीं. बड़ा अजीबोगरीब संसार है इन त्योहारों का. आप ने देखा है ?

* नावों की दौड़ से तीतर युद्ध तक
* आदिम अंचलों के मेले नज़र जहां नहीं जाती
* सौंदर्य और फैशन मेले, कुरुपता के मेले, मूर्खों का उत्सव...
* मौसमी पर्व
* धार्मिक परंपरा से जुड़े सांस्कृतिक त्योहार
* अंतरराष्ट्रीय व्यापार मेले
* बच्चों के मेले
* फिल्मी मेले

आइये, देखिये यह सब घर बैठे: नवभारत टाइम्स वार्षिकांक 1975 में. केवल 5 रुपये में. अपनी प्रति के लिये अखबार वाले से कहें या हमें लिखें. रजिस्टर्ड डाक द्वारा मूल्य सात रुपये

नवभारत टाइम्स

वार्षिकांक 1975

टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन

७ बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली ११०००२

HT-BC-3661 B

लंबाई बढ़ाइए

बढ़िए और बढ़िए
(महिलायें भी!)

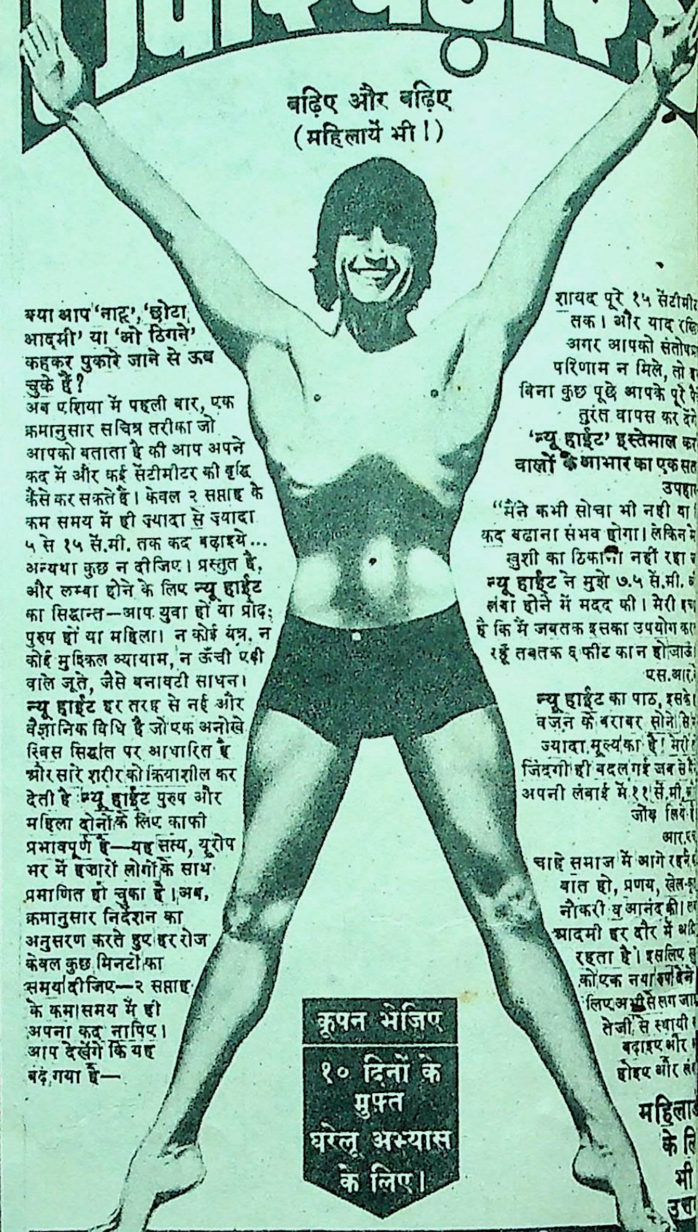

क्या आप 'नाटू', 'छोटा आदमी' या 'ओ ठिगने' कहकर पुकारे जाने से ऊब चुके हैं?

अब एशिया में पहली बार, एक क्रमानुसार सचित्र तरीका जो आपको बताता है की आप अपने कद में और कई सेंटीमीटर की वृद्धि कैसे कर सकते हैं। केवल २ सप्ताह के कम समय में ही ज्यादा से ज्यादा ५ से १५ सें.मी. तक कद बढ़ाइये... अन्यथा कुछ न दीजिए। प्रस्तुत है, और लम्बा होने के लिए **न्यू हाईट** का सिद्धान्त—आप युवा हों या प्रौढ़; पुरुष हों या महिला। न कोई यंत्र, न कोई मुश्किल व्यायाम, न ऊँची एड़ी वाले जूते, जैसे बनावटी साधन। **न्यू हाईट** हर तरह से नई और वैज्ञानिक विधि है जो एक अनोखे स्विस सिद्धांत पर आधारित है और सारे शरीर को क्रियाशील कर देती है **न्यू हाईट** पुरुष और महिला दोनों के लिए काफी प्रभावपूर्ण है—यह सत्य, यूरोप भर में हजारों लोगों के साथ प्रमाणित हो चुका है। अब, क्रमानुसार निर्देशन का अनुसरण करते हुए हर रोज केवल कुछ मिनटों का समय दीजिए—२ सप्ताह के कम समय में ही अपना कद नापिए। आप देखेंगे कि यह बढ़ गया है—

शायद पूरे १५ सेंटीमी... तक। और याद रखि... अगर आपको संतोषप्र... परिणाम न मिले, तो ... बिना कुछ पूछे आपके पूरे पै... तुरंत वापस कर देंगे...

'न्यू हाईट' इस्तेमाल कर... वालों के आभार का एक सत... उपहा...

"मैंने कभी सोचा भी नहीं था ... कद बढाना संभव होगा। लेकिन मे... खुशी का ठिकाना नहीं रहा ... न्यू हाईट ने मुझे ७.५ सें.मी. ... लंबा होने में मदद की। मेरी इच्... है कि मैं जबतक इसका उपयोग कर... रहूँ तबतक ६ फीट का न हो जाऊं..." एस.आर...

न्यू हाईट का पाठ, इसके ... वजन के बराबर सोने से ... ज्यादा मूल्य का है! मेरी ... जिंदगी ही बदल गई जब ... अपनी लंबाई में ११ सें.मी. ... जोड़ लिये ... आर...

चाहे समाज में आगे रहने ... बात हो, प्रणय, खेल-कू... नौकरी व आनंद की। ... आदमी हर दौर में अ... रहता है। इसलिए ... को एक नया रूप देने ... लिए अभी से लग जा... तेजी से स्थायी ... बढ़ाइए और ... होइए और ...

महिला... के लि... भी उ...

कूपन भेजिए
१० दिनों के मुफ्त घरेलू अभ्यास के लिए।

सिर्फ़ रु. २९ में

यह कूपन आज ही भेजिए

न्यू हाईट १० वीं मंज़िल, १५ मैथ्यू रोड, बम्बई:४०० ००४.

हाँ, मै कद बढ़ाना चाहता हूँ। अपने १० दिनों के घरेलू अभ्यास योजना के अंतर्गत, मुझे न्यू हाईट शीघ्र भेजिए अगर मै पूरी तरह संतुष्ट नहीं हुआ तो मै सबकुछ लौटा दूंगा ताकि तुरन्त पूरे पैसे वापस पा सकूं, कोई पूछ-ताछ नहीं होगी।

(कृपया सही चौकोर पर ☑ निशान लगाइए)

- ☐ मै रु.२९ (तथा ४ रु. डाक व्यय व पैकिंग खर्च) चैक/बैंक ड्राफ्ट/आइ.पी.ओ. द्वारा भेज रहा हूँ।
- ☐ रु. ३३ का मनी ऑर्डर भेजा है (मनी ऑर्डर रसीद नं............तारीख.........)
- ☐ मै साथ में रुपया नहीं भेज रहा हूँ लेकिन वी.पी.पी. द्वारा मिलते ही डाकिये को रु. ३३ दे दूँगा।

नाम..उम्र..................

पता..

बचत कीजिए डाक व पैकिंग खर्च ५ दिन के अन्दर इस कूपन को भेजने पर।

SB

लंबाई बढ़ने का आश्वासन, वर्ना कुछ भी मत दिजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका

फरवरी, १९७५; वर्ष : १५; पूर्णांक : १६५

समांतर कहानी विशेषांक-५

कहानियां

कामतानाथ : तीसरी सांस : १२
नवतेज सिंह : अन्न और स्वप्न : १८
ओम गोस्वामी : दैयें की मछली : २०
अभिमन्यु अनत : नयी तलाश : २४
हिमांशु जोशी : जलते हुए डैने : २८
विभुकुमार : एक बिछा हुआ आदमी : ३४
रश्मि तन्खा : पार्टी : ३६
सतीश जायसवाल : जाने किस बंदरगाह पर : ४६
अकुलेश परिहार : छुट्टी का एक दिन : ४८
पाल भसीन : सौदा : ५६
मुद्राराक्षस : निहत्थे : ६०
राम सुरेश : मदारी : ६८
दिनेश पालीवाल : एक चालू आदमी : ७२
प्रभातकुमार त्रिपाठी : ऋषि : ७६

विशिष्ट कहानी

भगवतीचरण वर्मा : गुन न हिरानो, गुन गाहक हिरानो है : ४०

लघुकथाएं

सुभाष उपाध्याय : समानांतर : २७
वीणा गुप्ता : मेरे देश में : ४५
नरेंद्र भारद्वाज : पक्का सबूत : ५९
हरजिंदर सिंह : रखवाला, मिलावट : ६५
रामशंकर देवांगन : ब्लडप्रूफ : ६६
अशोक दुबे : आत्महीन : ६६
एस. एस. शाहनवाज : चढ़ती कीमत, घटती कीमत : ६६
मनीषराय यादव : अपना - अपना भाग्य : ६६
कृष्णदेव झा : पावर : एक, पावर : दो, उम्मीदवार, समीक्षक : ६७
माधुरी शाह : निवटारा : ७१
रमेश बहादुर पोद्दार : समझदार भेड़िये : ७१

विशेष टिप्पणी

डॉ. रामवचन राय : वर्ग तथा वर्ण संघर्ष और समांतर साहित्य : ८९

स्थायी स्तंभ

मेरा पन्ना : कमलेश्वर : ८, पाठकीय : १०, गुस्ताखियां : प्रकाश पंडित : ३२ कबिरा खड़ा बजार में : हरिशंकर परसाई : ८२, फिल्में : मीनाकुमारी की डायरी; नज्म : गुलजार : ८४, चंद सतरें और : अनीता औलक : ८६, व्यंग्य विचार : अरविंद मालवीय : ८९, नयी पौद : ९१, सारिका कथा-पहेली : ९१
● आमुख : एम. डी. शर्मा

● संपादक : कमलेश्वर
● मुख्य उप-संपादक : आनंदप्रकाश सिंह
● उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
● कार्यालय सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

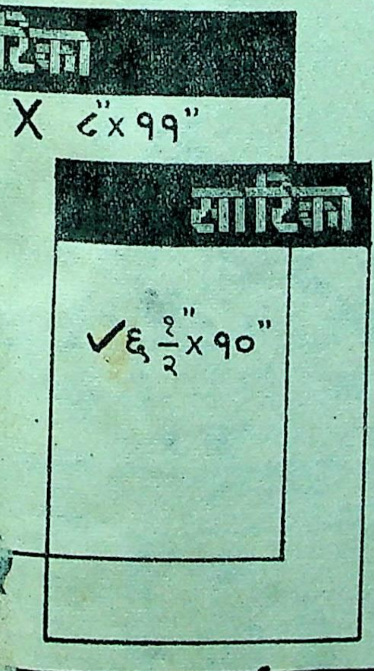

अब सारिका नये रूप नये आकार और नयी सज्जा में

अप्रैल १९७५ अंक से सारिका आपको नये रूप और आकार में उपलब्ध होगी. सारिका के वर्तमान आकार का कागज अकसर समय पर नहीं मिल पाता था साथ ही कुछ तकनीकी कारण भी थे जिनके कारण हमें सारिका के आकार में कुछ परिवर्तन करना पड़ रहा है. हालांकि यह परिवर्तन अधिक नहीं है लेकिन इससे सारिका अधिक ग्राह्य हो जायेगी. कीमत और पृष्ठ संख्या में कोई अंतर नहीं आया है.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज का यथार्थ : समांतर संसार. . . (५)

करुणा, समन्वय और संस्कार!

करुणा की नैतिकता और समन्वय की सामाजिकता के संदर्भ में संस्कारों की बात भी कर ही लेनी चाहिए. जब तक कोई जाति स्वयं अपने लिए विचार और मूल्य तय नहीं करती, तब तक संस्कार नहीं बनते; फैशन आते और जाते रहते हैं, जिन्हें हम आदतन संस्कार कहते हैं. आज का विपुल साहित्य बार-बार परिवर्तन की मांग करता है, पर यह नहीं सोचता कि संस्कारग्रस्तता को तोड़ना ही लाजिमी नहीं है, बल्कि नये संस्कारों का सृजन भी उतना ही अपेक्षित है. संस्कारग्रस्तता को तोड़ने के नाम पर बहुत कुछ हुआ है, पर यह भूल कर कि मनुष्य कभी भी शून्य में संस्कारों को नहीं त्यागता. वह हमेशा नये संस्कारों के पक्ष में रूढ़ संस्कारों को छोड़ता है. किसी अमानुषिक इतिहास के दौर में बने विचार और मूल्य मनुष्य के चाहे जितने विपरीत चले जायें, वह उन्हें इसीलिए नहीं छोड़ पाता, क्योंकि उसके सामने नये मूल्यों और विचारों को चुनने का कोई विकल्प नहीं होता. परिवर्तित विचार और मूल्य ही 'संस्कारग्रस्तता' का पर्याय हो सकते हैं. परिवर्तित विचार या मूल्य शून्य में से नहीं आते. ये मनुष्य को उन्हीं स्थितियों और विषमताओं में से स्वयं प्राप्त करने होते हैं, जहां उसके अस्तित्व की शर्तों को पैदा किया जाता है. यहीं पर हरेक को जीने की शर्तों और अपनी जीने की अपेक्षाओं का रिश्ता तय करना पड़ता है.

यथार्थ से आंखें मूंद कर हम बेहद जोशीले स्वर में कह सकते हैं कि कल क्रांति होने वाली है. . . कि मजदूर-किसान अब ज्यादा सहन करने वाले नहीं हैं! यह सही है कि सबके धीरज का बांध टूट चुका है, पर यह भी सही है कि सबके संस्कारों के बांध में दरार तक नहीं पड़ी है. परिवर्तन चाहना और परिवर्तन के आड़े आने वाले कारणों को नकारते जाने की बौद्धिक ऐय्याशी बड़े जोर-शोर से चालू है. क्या कभी हमने भारतीय मजदूर की 'प्रकृति' को समझने की कोशिश की है? उसकी संस्कारग्रस्तता को जानने की तकलीफ उठायी है? क्या हमारे आंदोलनों ने कभी भी मजदूर और मशीन के रिश्ते को तय किया है? जब मशीन मजदूर की अच्छी या बुरी तरह से जीने की शर्त भर हो, तब क्या वह अपने संघर्ष को ज्यादा दिनों तक चला सकता है? मशीनें दूसरों की और मेहनत मजदूर की, इस संदर्भ में मशीनों की बात छोड़ कर मेहनत की कीमत वसूल करने की क्रांतिवादिता एक आसान और सुविधावादी क्रांतिकारिता है! और इस तरह की क्रांतिवादिता जैसे मशीनों को छोड़ देती है, वैसे ही संस्कारों को भी नजरअंदाज कर जाती है; क्योंकि भाग्यवादी संस्कारग्रस्तता और साथ ही कर्मफल की मानसिकता वाले संस्कार की बुनियाद यही है. जब तक मशीन और मजदूर का रिश्ता तय नहीं होता, तब तक संघर्ष की भूमिका भी स्पष्ट नहीं हो सकती, और ऐसे में रूढ़ संस्कारों का पर्याय भी पैदा नहीं किया जा सकता.

● के. के. उपाध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब तक बहुसंख्यक किसान और जमीन का रिश्ता तय नहीं होता, संस्कार-बद्धता को नहीं तोड़ा जा सकता. जब तक कलम और लेखक का रिश्ता तय नहीं होता, तब तक नये संस्कारों या मूल्यों की खोज सार्थक नहीं हो सकती. आज जिस संघर्ष-चेतना की कामना चारों ओर व्याप्त है, वह सक्रिय क्यों नहीं हो पाती? परिवर्तन फलित क्यों नहीं होता? शायद इसीलिए कि हम मनुष्य को उसके पूरे परिवेश और संदर्भों में स्वीकार नहीं करते. उसकी सच्चाइयों को मंजूर न करके, अपनी गढ़ी हुई 'सच्चाइयों' के आईने में उसकी तसवीर देखते रहते हैं. इच्छामूलक सच्चाइयों और परिवेशगत सच्चाइयों के अंतराल को जब तक समाप्त नहीं किया जाता, तब तक कुछ भी संभव नहीं हो सकता. इन इच्छामूलक सच्चाइयों की भी जरूरत पड़ती है, पर ये तभी संगत हो पाती हैं, जब ये सच्चाइयां परिवेशगत सच्चाइयों की कोख से जन्म लेती हैं. परिवेशगत सच्चाइयों की कोख से जन्मे मूल्य और विचार ही संस्कार का रूप ले कर अंततः संस्कृति में तब्दील होते हैं. सांस्कृतिक सच्चाइयों और राजनीतिक मंतव्यों (इच्छामूलक सच्चाइयों) में जब तक तालमेल नहीं होता, तब तक सम्यक् परिवर्तन की बात लंगड़ाती रहेगी. संस्कार एक ऐसी सांस्कृतिक शक्ति है जो समाज को एकीकृत रखती है--- व्यक्ति और व्यक्ति को समाज में साथ होने का विश्वास देती है. अपने प्रचलित संस्कारों से टूट कर व्यक्ति चाहे 'व्यक्तित्व' प्राप्त कर ले, पर वह अपने वर्तमान समाज से बाहर चला जाता है.

जब किसी समाज के 'जीने' के साधन बदलते हैं -- यानी उसके और समाज के रिश्तों के बीच उत्पादन के साधनों का रूप बदलता है, तो नये सामाजिक-आर्थिक रिश्तों के लिए संस्कारों का बदलना भी जरूरी हो जाता है. पर मुश्किल सिर्फ यह है कि बदली हुई परिस्थितियों में सामाजिक रिश्तों, पूंजी और संपदा का उत्पादन जितनी तेज रफ्तार से हो पाता है, संस्कारों का परिवर्तन उतनी तेजी से नहीं होता. मशीन के आते ही मनुष्य और मनुष्य का रिश्ता जिस तेजी से बदलता है, उतनी ही तेजी से मनुष्य और मनुष्य के सांस्कृतिक (या सांस्कारिक) रिश्ते नहीं बदलते. इन सांस्कारिक रिश्तों को शून्य या वैक्यूम में नहीं बदला जा सकता --- इनका पर्याय खोजना ही पड़ता है. पर्याय की यह खोज तब तक संभव नहीं है, जब तक हम परिवर्तन करने वाले जन सामान्य और उसके जीने की शर्त पैदा करने वाले उत्पादन के स्रोतों तथा साधनों का रिश्ता यथासंभव साफ न कर लें, उन उत्पादन के स्रोतों तथा साधनों का, जिन्होंने समाज और साथ ही सामाजिक व्यक्ति के कार्य-क्षेत्र तथा कार्य-पद्धति का नक्शा ही बदल दिया है. आज का मजदूर या किसान उत्पादन की इकाई नहीं है, वह उत्पादन की इकाई का एक अंश है. दस-दस या बीस-बीस मजदूर या किसान मिल कर उत्पादन की एक इकाई बनते हैं. क्योंकि अब जमीन से सिर्फ अन्न पैदा करके नहीं जिया जा सकता. मशीन से सिर्फ वस्तु तैयार करके जिंदा नहीं रहा जा सकता : यह आत्मनिर्भरता का दौर नहीं है, यह परनिर्भरता का नृशंस दौर है, क्योंकि अब जमीन पे अन्न उगा कर उसे पैसे में बदलना होता है, या मशीन से कपड़ा तैयार करके उसे पूंजी में तब्दील करना होता है; और तब उसी अर्जित पूंजी या पैसे से वही उत्पादित अन्न या कपड़ा खरीदना पड़ता है. यह विद्यादान का युग नहीं है. . पहले यहां दूसरों के बच्चों के लिए मास्टर को अपनी विद्या को बेचना पड़ता है और तब अपने बच्चे के लिए उसे ही दूसरों से विद्या खरीदनी पड़ती है. कोयला-खदान के मजदूर को कोयला खोद कर जो पैसा मिलता है, उसी पैसे से वह बाजार में अपने लिए कोयला भी खरीदता है. यानी यह आत्मनिर्भरता, उत्पादन-संतुष्ट, आवश्यकतापूरित दान और प्रतिदान के रिश्तों का दौर नहीं है--- इस दौर में जमीन का रिश्ता किसान से और मशीन का रिश्ता मजदूर से वहीं तक है, जहां तक वह 'उत्पादन' करता है. उत्पादन के बाद जब (उसी के द्वारा उत्पादित वस्तु को) उसी के द्वारा खरीदने का सवाल आता है तो रिश्ते एक अलग धरातल पर चले जाते हैं. यानी तब हम परनिर्भरता, मुनाफा-केंद्रित, उत्पादनच्युत, आवश्यकता-विकेंद्रित, क्रय और विक्रय के स्थापित किये गये नृशंस बाजार में गरीब की तरह हाथ फैलायें जीने के लिए भीख मांगते खड़े होते हैं! आज आपकी मां अपने नेत्रदान कर जायें और कल आपको अगर अपनी लड़की के लिए उन्हीं नेत्रों की जरूरत पड़े तो मां के नेत्र आपको वापस दान में नहीं मिलेंगे, आपको अपनी ही मां के नेत्रों को लड़की के लिए खरीदना पड़ेगा.

जहां आदमी और आदमी, आदमी और समाज, समाज और बाजार, जमीन और किसान, मशीन और मजदूर के रिश्ते पूरे जीवनगत सांस्कृतिक ढांचे को चकनाचूर कर दें, वहां दान और प्रतिदान, कर्म और करुणा, त्याग और तपस्या, अपरिग्रह और संतोष; जन्म, जीवन और मृत्यु, बलिदान और उत्सर्ग, संयम और साधना, कार्य और फल, इहलोक और परलोक, भौतिक और आध्यात्मिक आदि सांस्कृतिक कुंठाओं की पहचान समय और मनुष्य के संदर्भों में की जानी चाहिए.

सवाल आदमी को संस्कारविहीन कर देने का नहीं है, जो कि मनुष्य कभी होता भी नहीं; जरूरत है संस्कारों के परिष्कार और पर्याय की! संस्कारगत वर्जनाओं और कुंठाओं से उपजने वाले आत्मिक दंश और दोष भावना की ग्रस्तता से आहत आज के मनुष्य की आत्मा को बेबाक बना देने की. सांस्कारिक निरीहता, लाचारी और निष्क्रियता से उबार कर उसकी आत्मा को यथासंभव और अधिकतम स्वतंत्र कर सकने की, ताकि वह सामने आये समय और समाज के नये रिश्ते सांस्कारिक मजबूरियों में तय न कर ले, बल्कि सांस्कारिक पर्यायों की दृढ़ता ले कर सम्यक् परिवर्तन का वाहक बन सके!

* *

इस अंक की कहानियां भी इसी संदर्भ में देखी जानी चाहिए. इन कहानियों का आदमी सांस्कृतिक निरीहता के खिलाफ लड़ाई में जुटा है लेकिन संस्कारहीन नहीं हुआ है. उसने नये संस्कारों को अपने बाहर और भीतर पैदा किया है. उसके लिए जिंदगी की निष्क्रियता मौत से भी बदतर चीज है. चाहे कामतानाथ की 'तीसरी सांस' का केबिन-मैन हो या हिमांशु जोशी की 'जलते हुए डैने' के शिवदा या अकुलेश परिहार की 'छुट्टी का एक दिन' का प्रभाकर और उसका पिता अथवा ओम गोस्वामी की 'दर्द की मछली' का धर्मू, सभी जिंदगी के इसी पहलू से बंधे हुए हैं. इसी तरह मुद्राराक्षस, विभुकुमार, अभिमन्यु अनत, प्रभातकुमार त्रिपाठी, राम सुरेश, पाल भसीन, रश्मि तन्खा, सतीश जायसवाल, दिनेश पालीवाल और नवतेज सिंह की कहानियों के पात्र ही भी जिंदगी की सक्रियता से जुड़े रह कर ही अपने अस्तित्व के सही अहसास को भोगते हैं. वे हर विकृत और भयावह परिस्थिति को लड़ाई जारी रखने के एक नये धरातल के रूप में स्वीकार करते हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकीय

समांतर कहानी विशेषांकों पर प्रतिक्रियाएं

'सारिका' का नवंबर अंक पढ़ा. सभी कहानियां अत्यंत मार्मिक रहीं. आज जिंदगी को देखने का सिर्फ एक ही दृष्टिकोण रह गया है—और वह है आर्थिक. सिर्फ एक मोर्चे पर हमारी समस्त शक्ति केंद्रित हो गयी है और वह है आर्थिक मोर्चा. हम अपने पारिवारिक व मानवीय संबंधों को सिर्फ एक ही तराजू में तोलते हैं और वह है—आर्थिक. यानी दो वक्त की रोटी ही सब कुछ हो गयी है. एक कातिल के खिलाफ, जो हमारे हक छीन लेता है, हम सिर्फ रोटी के डर से नहीं बोल सकते (**'शहादतनामा'**), अपने अधिकारों के लिए लड़ने से पहले हमें अपनी रोटी की खैरियत मनानी पड़ती है (**'उल्टी करने वाला आदमी'**), हमें अपनी रोटी के लिए अपने बाप के मरने का इंतजार है (**'आगे बढ़ो'**), अपनी दो वक्त की रोटी के लिए आज हमें किराये की बेटी ढूंढनी पड़ती है. उफ, क्या स्थिति है!

एक बहुत बड़ा सवाल हमारे आगे है. आर्थिक मोर्चे पर हम एक भयंकर षड्यंत्र के शिकार हो गये हैं. और सिवा छटपटाने के हम कुछ करने के काबिल नहीं रहे. हमारा सारा आक्रोश नपुंसक आक्रोश बन गया है. हम भुगत सकते हैं, ज्यादा-से-ज्यादा लिख सकते हैं—कुछ बोल नहीं सकते, कुछ कर नहीं सकते. स्वतंत्र भारत (!) में क्या विचारों की स्वतंत्रता है!

☐ **जगमोहन बवे, उदयपुर**

समांतर कहानी विशेषांक : २ (नवंबर '७४) पढ़ा. सभी कहानियां आम आदमी की वर्तमान दारुण और तनावपूर्ण स्थितियों की ओर आक्रोशमय ढंग से इंगित करती हैं. **'शहादतनामा'** (जितेंद्र भाटिया) और **'आगे बढ़ो'** (राजेश कुमार जैन) में निम्न स्तरीय मजदूरों का आर्थिक तनाववश अपने आत्मिक सुख-शांति को खो देना, **'सूखा'** (जसवंतसिंह विरदी) और **'हवा'** (दामोदर सदन) में प्राकृतिक और रक्त-संबंध की मजबूरियां वर्तमान संत्रस्त और निराधार मजबूरियों के साथ हैं, **'आतंक भरा सुख'** (मेहरुन्निसा परवेज) **'तमाशा'** (स्वदेश दीपक), **'एक और हत्या'** (मिथिलेश्वर) और **'जब ईश्वर नंगा हो गया'** (शिव शर्मा) में दो जून की रोटी प्राप्त करने के लिए आम आदमी की नग्न और पिसती हुई विवशता, **'रिसता हुआ बिंदु'** (अंजनी चौहान) और **'तपती हुई जमीन'** (सुभाष पंत) में वर्तमान कुंठित वातावरण में अपनी निम्नस्तरीय और लुढ़कती हुई स्थिति को कायम रखने या उजागर करने की सफल-असफल चेष्टा, **'मजमेबाज'** (हबीब कैफी) और **'उल्टी करने वाला आदमी'** (ब्रह्मदत्त) में सामाजिक संदर्भ में सत्ता के खिलाफ अपने व्यक्तिगत अधिकार से वंचित आम आदमी का अकेलापन बहुत ही जीवंत और ज्वलंत अभिव्यक्त किया गया है.

आमुख पर सुख-सपनों की सेज पर बिलखता हुआ निरीह बालक आम आदमी के आस-पास की आज की कहानियों के संदर्भ में सही प्रतीत होता है. छायाकार दयाराम चावड़ा को बधाई.

☐ **सी. बी. बोरकर, बंबई.**

पांच वर्षों से भी अधिक समय से **'सारिका'** का पाठक हूं. कहानियों के ढांचे में नयी-नयी अलभ्य सामग्री प्रस्तुत करने के लिए **'सारिका'** को धन्यवाद. अक्तूबर अंक की सारी कहानियां मैंने पढ़ीं. सभी अकाट्य हैं, पर **'अंधेरे का सैलाब'** को अंगूठी का नग ही कहा जा सकता है. मध्यम वर्ग का मानव धनी वर्ग के स्तर से तालमेल बैठाने का किस प्रकार प्रयास करता है, और असफलता के कारण किस प्रकार अपने आप में घुटता हुआ जीता है, इसका यह सजीव चित्रण है. इस वर्ग के समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रस्तुत कहानी के नायक ने सत्य का नग्न रूप सामने रख दिया है. कहानी अपने साथ पाठक को ले कर चलती है. लगता है, पाठक भी पात्र की छाया है. ☐ **सभाजीत मौर्य, बंबई.**

समांतर कहानी के दोनों अंक मिले. आज के पाठक को **'सारिका'** सही कहानी दे रही है, निश्चय ही यह एक जिम्मेदारी भरा बड़ा काम है. अक्तूबर अंक में भीष्म साहनी (**'वाङ्‌ चू'**), हृदयेश (**'गुंजलक'**), आलम शाह खान (**'परायी प्यास का सफर'**) और श्रवणकुमार (**'नहीं, यह कोई कहानी नहीं'**) ने अत्यधिक प्रभावित किया. ईसप-कथाओं का नवरूप भी अच्छा लगा. छायाकार सुरेश शेठ भी तारीफ के हकदार हैं. समांतर—२ (नवंबर, ७४) की कथाएं और भी तल्ख हैं, विशेष रूप से **'शहादतनामा'** (जितेंद्र भाटिया), **'सूखा'** (विरदी), **'तमाशा'** (स्वदेश दीपक), **'हवा'** (दामोदर सदन) और **'एक और हत्या'** (मिथिलेश्वर). शिव शर्मा की कहानी **'जब ईश्वर नंगा हो गया'** लोकल संदर्भों और साफगोई के कारण बेहद पसंद आयी. कामतानाथ का लेख **'समांतर कथा यात्रा'** वाकई विशिष्टता लिये हुए है. **'मेरा पन्ना'** के लिए कमलेश्वर जी को किन शब्दों में सराहूं? अंत में छायाकार-द्वय (चावड़ा-गाथा) को विशिष्ट तस्वीरों के लिए बधाई. ☐ **शाहिद मिर्जा, उज्जैन**

'सारिका' का नवंबर, '७४ का अंक पढ़ा. इस अंक की समस्त कथाएं सामान्य जन की पीड़ा, आंतरिक घुटन व जीवन की विडंबनाओं को सही ढंग से पेश करने में समर्थ रहीं. इस अंक की **'शहादतनामा'** (जितेंद्र भाटिया) कारखानों में चल रहे वर्ग-संघर्ष की पूरी तस्वीर साफ कर देती है.

☐ **देवेंद्रकुमार पाठक, भुड़सा, जबलपुर.**

आम आदमी के आसपास आज की कहानियों में **'रिसता हुआ बिंदु'**, **'तमाशा'** **'सूखा'**, **'जब ईश्वर नंगा हो गया'** और मिथिलेश्वर जी की **'एक और हत्या'** मुख्य रूप से सराहनीय हैं. भगवतीचरण वर्मा की आठवीं कहानी **'गनेसीलाल का रामराज'** बहुत ही रोचक एवं हास्यमय लगी! **'तमाशा'** इस अंक की कहानियों में सबसे अच्छी लगी एवं हृदय को छू गयी. मीनाकुमारी की डायरी भी अपनी जगह पर ठीक थी.

☐ **अब्दुल बहराम, गढ़वा, पलामू**

नवंबर अंक मिला. आम आदमी के आस-पास आज की कहानियां पढ़ीं. वस्तुतः ये कहानियां न हो कर आम आदमी की जिंदगी के दस्तावेज हैं. उसके दुख-दर्द की करुण दास्तान हैं. इस अंक की सभी कहानियां काफी गहराई से मन को अभिभूत कर गयी. सभी एक-दूसरे से बढ़ कर थीं. लेकिन सबसे अधिक प्रभावित किया जितेंद्र भाटिया की **'शहादतनामा'** ने. यह कहानी मेरे मन-मस्तिष्क को झकझोर कर रख गयी. आज की दुनिया में न जाने कितने अमरजीतों को अपनी आवाज उठाने के लिए समाप्त कर दिया जायेगा. और कितनों को सच्चाई का गला घोंटते हुए अपनी जिंदगी के होठों पर सदा के लिए झूठ भर कर जीना होगा.

समूची **'सारिका'** पढ़ने की प्रक्रिया एक ऐसे अनुभवों के दौर से गुजरने की प्रक्रिया रही, जिसे शब्दों में व्यक्त कर पाना सहज नहीं.

'मेरा पन्ना' **'सारिका'** का सिरताज है. इसकी प्रशंसा में कुछ भी कहना कम होगा.

☐ **'मधु', गया (बिहार)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवंबर अंक में प्रकाशित जितेंद्र भाटिया की कहानी 'शहादतनामा' मुझे बेहद पसंद आयी. 'समांतर कहानी' को असली दिशा-बोध देने वाली 'सारिका' में प्रकाशित यह कहानी सर्वश्रेष्ठ है. समांतर कहानी-चर्चा चलाते हुए कमलेश्वर जी ने जीवन की अपेक्षाओं और शर्तों की बात उठायी है. जीवन की अपेक्षाएं सामान्य जन की अपेक्षाएं हुआ करती हैं. जितेंद्र भाटिया की कहानी का कोई दूसरा सानी मुझे कोई बता सकता है? शायद, मेरी समझ में जितेंद्र भाटिया और उनकी 'शहादतनामा' कहानी का पात्र 'अमरजीत', पूरे मजदूर वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं. उसकी जिंदगी वास्तविकता के धरातल पर टिकी है. क्या वास्तव में यह कहानी यथार्थ का चित्रांकन नहीं करती? जी हां, पूरे सवाल-जवाब के साथ करती है. इसी संदर्भ में मिथिलेश्वर की कहानी 'एक और हत्या' स्वतंत्रता के बाद भी गांव के आम मजदूर के जीवन की वास्तविकता को पूर्ण रूप से संकेतित करती है. बिहार के गांवों में अभी भी वही सामंती व्यवस्था का रूप चला आ रहा है. यह कहानी यथार्थ का संस्पर्श करती हुई ग्रामीण मजदूर वर्ग का पूर्ण प्रतिनिधित्व कर रही है.

□ **उमेशकुमार श्रीवास्तव, छिंदवाड़ा.**

'सारिका' के बहुप्रतीक्षित समांतर कहानी विशेषांक (अक्तूबर, नवंबर) देखे. पूर्व-घोषणा के अनुरूप इन समांतर विशेषांकों की कहानियां वास्तव में आम आदमी की जटिल समस्याओं, उफनते आक्रोश और जलते सवालों का दस्तावेज बन पायी हैं. वस्तुतः ये कहानियां न सिर्फ आम आदमी के आस-पास से गुजरती हैं, बल्कि उसकी आंतरिक टूटन, यातनादायी घुटन, भयावह पीड़ा और संपूर्ण मायूसी के प्रति खुली सड़क पर इजहार भी करती हैं.

दरअसल यह सब कुछ हिंदी कथा-साहित्य में बहुत पहले ही हो जाना चाहिए था. लेकिन साहित्य के महंतों ने इसे अब तक रोक रखा था, क्योंकि साहित्य उनके लिए कोई स्वर्गिक और कल्पनालोक की वस्तु थी. धरती के यथार्थ और खुरदरे सत्य को वे साहित्य के लिए वर्जित और दूषित मानते थे. उनकी परंपरा आज भी कायम है. आम आदमी के जलते सवालों और जूझते संदर्भों से टकराती आज की इन समांतर कहानियों को वे पचा नहीं पाते हैं. इन कहानियों पर राजनीतिकता का वे झूठा आरोप लगा देते हैं.

वस्तुतः उनके इस आरोप को विश्लेषित करके देखा जाये तो इसके पीछे उनकी सोच की दयनीयता है. चूंकि आज की कहानियों के सवाल साहित्येतर हो गये हैं, और समय से जुड़ गये हैं, इसीलिए इन पर राजनीतिकता का आरोप लगाया जा रहा है, क्योंकि अब तक लोगों ने ऐसा मान रखा है कि समय से जुड़ा सवाल राजनीतिक ही होता है. लेकिन मेरी दृष्टि में आज की कहानियों की यह सबसे बड़ी उपलब्धि और सार्थकता है कि वे साहित्य के कल्पनालोक से हट कर धरती की विकराल और भयावह स्थितियों को रूपायित करने लगी हैं तथा आम आदमी (देश के बहुसंख्यक जन समुदाय) की मुक्ति के लिए उसके शोषण के खिलाफ एक व्यापक फलक पर संघर्ष की भूमिका निभा रही हैं.

'सारिका' के अक्तूबर और नवंबर समांतर कहानी विशेषांकों से कुछ ऐसी कहानियां उदाहरणार्थ पेश की जा सकती हैं जो चौतरफे शोषणों से शोषित आज के आम आदमी की दारुण व्यथा को उजागर करती हैं और इसके खिलाफ अपना संघर्ष भी अनवरत रूप से जारी रखती हैं.

गरीब तमाशे वाला एक रुपये का आटा लाने बाजार जाता है तो दूकानदार राशन कार्ड मांगता है, मगर तमाशे वाला दूकानदार पर उबल पड़ता है कि एक रुपये का आटा तोल दे नहीं तो तू अस्पताल पहुंचेगा और मैं जेल (**'तमाशा' : स्वदेश दीपक**). जगेसर को कुत्ते द्वारा काट लेने के बावजूद उसे अपने मालिक हरपालसिंह के कार्यों में तल्लीन रहना पड़ता है. फिर भी हरपाल सिंह सुबह-शाम गालियां नहीं भूलते (**'एक और हत्या'**) मिथिलेश्वर : इतना ही अत्याचार और शोषण नहीं, यह तो घर और बाजार की बात है; अस्पताल में भी एक गरीब मास्टर की पत्नी दवा-दारू के अभाव में मर जाती है और मास्टर अस्पताल के विरोध में भूख-हड़ताल करता है और अंत में वह भी हमेशा के लिए सो जाता है (**'एक और निवेदन'** : गुरबचनसिंह) लोग समझते हैं होटल के बैरे साले खूब खाते-पीते होंगे. रोज नये-नये भोजन करके फूले रहते होंगे. मगर आलम शाह खान ने अपनी **'परायी प्यास का सफर'** में एक बेयरे की दर्दनाक कहानी प्रस्तुत की है, जो दूसरों को निरंतर खिलाता-पिलाता रहता है, लेकिन खुद प्यासा ही सो जाता है.

पहले लोग जेलों में नहीं जाना चाहते थे, अमीर हों या गरीब, क्योंकि इससे तौहीन होती थी. गांवों में पुलिस का आना बेइज्जती समझी जाती थी. मगर बेकारी की स्थिति में, रोटी-कपड़े की समस्या के चलते, मांगेराम जैसा इनसान गांव छोड़ कर शहर में नौकरी के लिए आया और उसे वहां भी कुछ हासिल नहीं हुआ और तब वह जेल जाने के उपाय सोचने लगा कि उसमें कम-से-कम दोनों जून खाना तो मिलेगा (**'नहीं, यह कोई कहानी नहीं'** : श्रवण कुमार.)

और ये तमाम कहानियां न सिर्फ आम आदमी की तकलीफ और आक्रोश को ही व्यक्त करती हैं, बल्कि आम आदमी के पक्ष में उसकी मुक्ति के लिए, देश के स्तर पर चल रही जनवादी लड़ाई को और अधिक तेज और प्रखर कर रही हैं. इन कहानियों के जुझारू तेवर को देखते हुए हमें यह कहना पड़ता है कि निश्चित रूप से ये कहानियां सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बदलाव में सफल भूमिका अदा करेंगी.

इन विशेषांकों में **'मेरा पन्ना'** के माध्यम से कमलेश्वर जी ने इन कहानियों के अंदर निहित सवालों और विचारों को समयगत यथार्थ के साथ जोड़ कर देखने का प्रयत्न किया है. कमलेश्वर जी की सतत, प्रगतिशील दृष्टि, गहन अध्ययन और प्रखर जनवादी चिंतन इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है— 'कितना विचित्र और विकराल है यह दृश्य जो कुछ ही वर्षों में इस देश में उपस्थित हो गया है! जहां जहर खा कर आदमी जीवित रह सकता है, पर एक कटोरी दाल पी कर मर सकता है! यह इसी देश में हो सकता है कि शाम को कानून पास हो तो सारा अनाज गायब हो जाये और दूसरे दिन कानून तोड़ दिया जाये तो मनमाने दामों पर बिक्री के लिए वही अनाज फिर निकल आये. . .'

□ **डॉ. बिध्येश्वरी, आरा**

नवंबर की सर्वश्रेष्ठ कहानी **'शहादतनामा'** (जितेंद्र भाटिया) रही. इसके अलावा मीनाजी की डायरी और अनीता औलक जी का **'चंद सतरें और'**—इन दोनों का मुझे हमेशा इंतजार रहता है. अनीता जी के ये संस्मरण पुस्तक के रूप में अवश्य प्रकाशित होने चाहिए ताकि सभी लोग उस 'जिंदा इनसान' की एक यादगार अपने पास रख सकें.

□ **शेखर बहुगुणा, नयी दिल्ली**

समांतर कहानी विशेषांक–३ पढ़ा. सभी कहानियां अपने अंदर आज के आम आदमी का दर्द समेटे हुए हैं. पर केशव दुबे की कहानी 'श्रमदान' वाकई अछूती है! एक दर्द भरा करारा व्यंग्य जिसकी पीड़ा कोई गरीब ही महसूस कर सकती है! बधाई!. . .

□ **के. पी. सक्सेना, लखनऊ**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरी सांस • कामतानाथ

मोबिल ऑयल में भीगे हुए जूट में उसने माचिस दिखायी तो वह गहरा काला धुंआं छोड़ता हुआ जलने लगा. लकड़ियों को उसने पहले ही जालीदार आकार में सजा दिया था. अब वह कोयले के छोटे-बड़े ठीकरों से अंगीठी पर पिरामिड बनाने लगा. एक क्षण उसने उसमें पंखे से हवा दी, तब उसे उठा कर बरामदे के बाहर रख दिया.

सामने फौलाद की पटरियां बिछी थीं, जो दोनों ओर दूर तक एक-दूसरे के समांतर चली गयी थीं. इन्हें वह रेल की आत्मा कहा करता था. पता नहीं, यह उपमा उसके दिमाग में कब और क्यों सूझी थी. उसने सुना था कि आत्मा अमर होती है. शरीर एक प्रकार से उसका वस्त्र होता है. जब वस्त्र जीर्ण-शीर्ण हो जाता है तो आत्मा उसे त्याग देती है. इसी प्रकार ये रेल की पटरियां हैं. अपने स्थान पर मजबूती से बिछी हुई. अनेकानेक डब्बे, इंजन तथा गाड़ियां इनके ऊपर से गुजरते रहते हैं. डब्बे टूटते-बदलते रहते हैं. इंजन भी मरम्मत के लिए जाते रहते हैं. परंतु पटरियां अपने स्थान पर निश्चित लेटी रहती हैं. अगर ये न हों तो सब-कुछ बिखर जाये. एक क्षण में रेलवे का सारा खेल धराशायी हो जाये.

हलका-हलका धुंधलका अभी भी आसमान में था. चार-साढ़े चार का समय होगा, उसने अनुमान लगाया, और लोटे में पानी ले कर सिग्नल की ओर चल दिया. सिग्नल की लाल बत्ती दूर से चमक रही थी. सवा पांच की डाक निकलने के कुछ देर बाद तक यह जलती रहती है. वह पटरी के किनारे-किनारे चलने लगा.

पटरी के किनारे लगे नरकुलों में हवा सीटी बजा रही थी. खजूर के पेड़ में बया के घोंसले लटक रहे थे. आज से दो-तीन वर्ष पहले कुल जमा एक घोंसला था. उसके देखते-देखते एक से पांच हो गये. अगर एक चिड़िया मर जाती है तो क्या दूसरी उसमें रहने लगती है या वह खाली पड़ा रहता है? उसने मन-ही-मन सोचा, परंतु बिना किसी निष्कर्ष पर पहुंचे आगे बढ़ गया.

गड्ढों का पानी लगभग सूख गया था. इस बार फिर बरसात को देर हो गयी थी. लगता है फिर सूखा पड़ेगा, उसने सोचा. पूरा कलयुग आ गया है. न पहले जैसी बरसात होती है, न जाड़ा, न गर्मी. असाढ़ लगभग समाप्त होने को आया, मगर पानी का कहीं नाम नहीं.

पटरी फलांग कर वह मंदिर की ओर आ गया, जिधर अब भी कुछ झाड़-झंखाड़ शेष थे. आज फिर मंदिर की दीवार पर उल्लू बैठा था. यह साला कहां से आ गया? उसने मन-ही-मन उसे गाली दी और झुक कर पटरी की बगल से एक बड़ा-सा पत्थर उठा कर उसने उसकी ओर फेंका. उल्लू दीवाल पर से उड़ कर सिग्नल पर जा बैठा.

पुजारी भी अजीब आदमी हैं! महीने भर के लिए कह गये थे और आज तीन महीने से ऊपर हो गये, उनका कहीं नाम-निशान नहीं. शुरू में वह उनके कहे अनुसार सुबह-शाम दोनों वक्त मंदिर में आ कर आरती-पूजा करता था. भगवान का भोग लगाता था. केवल एक महीने के लिए वह कह गये थे, जिस पर दो-ढाई महीनों तक वह ऐसा करता रहा. आखिर जब पुजारी जी नहीं लौटे, तो उसने आरती-पूजा बंद कर दी. उसके बस का यह सब होता, तो वह रेलवे का कैबिनमैन क्यों होता! किसी मंदिर में पुजारी होता और सुबह-शाम भगवान की आरती-पूजा करके दिन भर मौज में डंड पेलता. हां, शाम को भगवान की मूर्ति के पास दीया वह अब भी जला आता है.

लगता है पुजारी ने इस बार अच्छी आमदनी कर ली है. तभी इतने दिन लगा रहे हैं गांव में. शादी-ब्याह, रामलीला आदि में तो उनका हाथी चलता ही था, चुनाव में भी उसकी कोई उपयोगिता हो सकती है, यह पुजारी जी ने भी नहीं सोचा था. बात यह थी कि पिछले चुनाव में कोई राधेश्याम वैद्य खड़े हुए थे. उनका चुनाव-निशान हाथी था. पूरे एक महीने के लिए उन्होंने पुजारी जी का हाथी बुक करा लिया था. पुजारी जी सुबह-सुबह हाथी ले कर निकल जाते और रात देर से लौटते. उन दिनों में भी वही मंदिर में आरती-पूजा करता था. और अगर वह न होता तो क्या पुजारी जी हाथी का धंधा छोड़ कर पूजा में लगे रहते? पेट की पूजा से बढ़ कर भी कोई पूजा होती है? तभी तो लोग कहते हैं— 'भूखे भजन न होय गोपाला.' उसे अपनी ही बात पर हंसी आयी. आखिर जब पेट-पूजा ही सबसे बड़ी पूजा है, तो लोग यह सब ढोंग क्यों करते हैं? शायद यह भी पेट-पूजा का ही एक तरीका हो. खैर, राधेश्याम जी की तो जमानत जब्त हो गयी. परंतु पुजारी जी ने अच्छी रकम बना ली. तभी उसके बाद एक दिन वह हाथी पर सवार हो कर अपने गांव चले गये. जाते तो खैर वह हर वर्ष थे. परंतु इस बार कुछ ज्यादा ही समय लगा गये.

* *

पुजारी जी जब यहां थे, तो उसका समय अच्छा कट जाया करता था. शाम को तो नित्य प्रति ही. और वैसे भी जब कभी दिन में उसे समय मिलता, पुजारी जी के पास जा कर बैठ जाता. वह उसे ज्ञान की बातें बताते थे. श्रीमद्भागवत की कथाएं सुनाते थे, कि किस प्रकार राजा परीक्षित के मुकुट में कलयुग आ कर बैठ गया था, जो अभी तक बैठा हुआ है. या किस प्रकार भगवान ने गज को ग्राह के मुख से बचा लिया. या इसी प्रकार की अन्य पौराणिक कथाएं— कि किस प्रकार इंद्र ने छल करके अहिल्या का सतीत्व भंग किया और गौतम ऋषि के शाप से वह पत्थर बन गयी. अहिल्या तो बिल्कुल निर्दोष थी, वह कभी-कभी सोचता, फिर उसे क्यों सजा मिली? फिर वह टाल जाता. ऋषि-मुनियों का मामला, वही जानें. उसको क्या करना!

जब तक वह दिशा-मैदान से लौट कर आया, तब तक अंगीठी

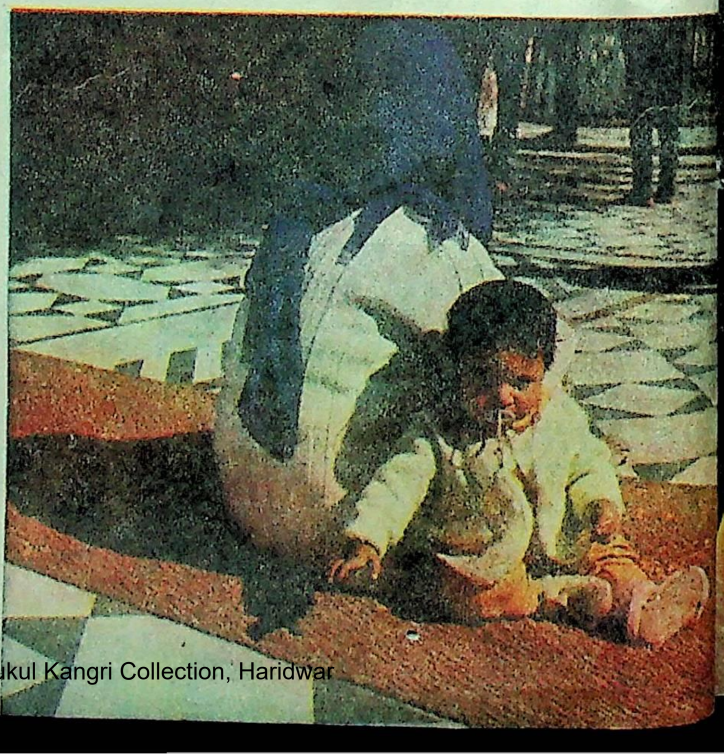

• मदन मेहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरी तरह सुलग चुकी थी. उसने मिट्टी से हाथ मले और लोटा मांज कर उसी में चाय के लिए पानी डाल कर अंगीठी पर चढ़ा दिया. पानी चढ़ा कर वह अंदर जा कर चाय और गुड़ का डिब्बा उठा लाया. गुड़ तोड़ कर उसे भी उसने लोटे में डाल दिया और पानी उबलने की प्रतीक्षा करने लगा. पानी उबल गया तो उसने उसमें चाय की पत्ती डाली और गिलास में छान कर पीने बैठ गया. चाय पी रहा था, तभी साढ़े पांच वाली डाक का सिग्नल आ गया. उसने चाय वहीं रख दी, और बोर्ड से कुंजी ले कर फाटक बंद करने चला गया.

उसके फाटक बंद करके लौटते-लौटते दो ट्रक, एक कार और एक स्कूटर दाहिने वाले फाटक पर पहुंच चुके थे. कार वाला ही सबसे पहले पहुंचा था. उसने उसे फाटक बंद करते देख कर हॉर्न भी बजाया था. परंतु उसने उसकी ओर कोई ध्यान दिये बिना फाटक बंद कर दिया था. शुरू में वह ऐसी स्थिति में प्रतीक्षा कर लिया करता था. परंतु, दो-एक बार उसके ऐसा करने में और ट्रैफिक भी वहां पहुंच गया था और तब उसे परेशानी हुई थी. वैसे भी कार वालों से उसे कुछ चिढ़-सी हो गयी थी. एक मिनट रुकना भी वे अपनी शान के खिलाफ समझते थे. गाड़ी निकल जाने के बाद यदि एक क्षण की देर भी उसे फाटक खोलने में होती, तो वे बिगड़ने लगते. खामख्वाह हॉर्न बजाने लगते. अकसर वे गालियां भी बकने लगते. और कार वाले ही क्यों, मोटरसाइकिल या स्कूटर वाले भी कभी-कभी उससे उलझ जाते. शुरू-शुरू में उसने दो-एक बार उनसे झख भी लड़ायी. परंतु, पिछले काफी दिनों से उसने अपना स्वभाव बना लिया था कि कोई कुछ भी कहे, उसे ध्यान नहीं देना है. वह चुपचाप कुंजी ले कर जाता और फाटक बंद करके वापस चला आता. लोग बकते तो बकते रहते. पहले वह दक्षिण वाला फाटक बंद करता,

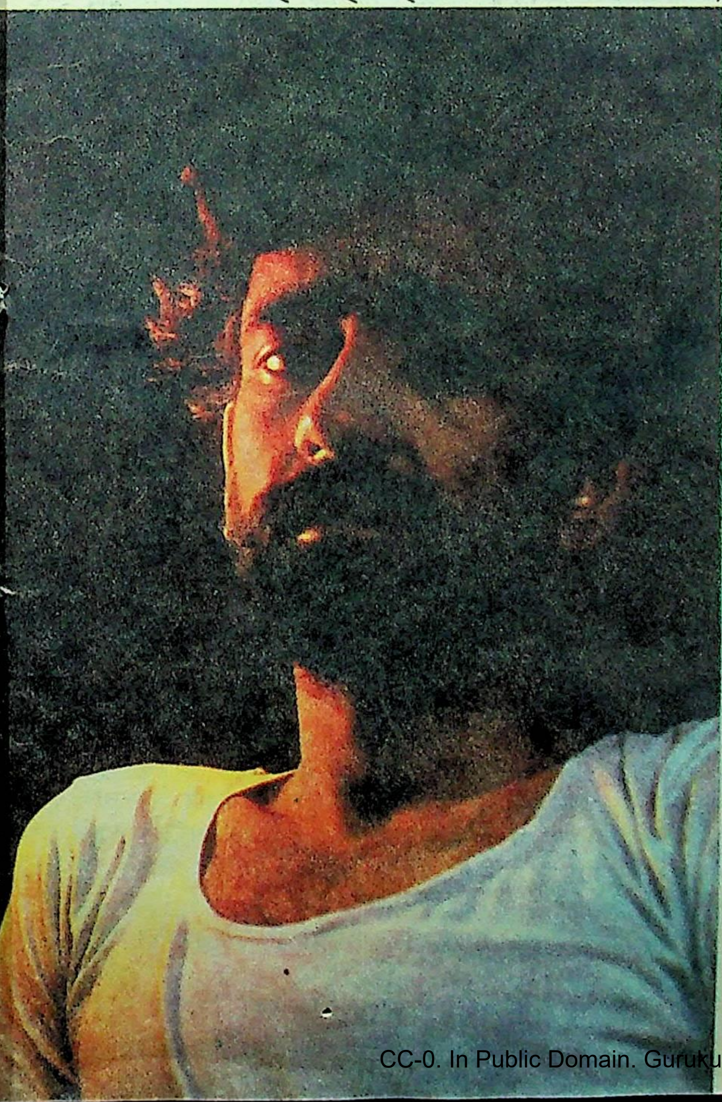

तब उत्तर वाला. वैसे ऐसा करने के पीछे कोई विशेष कारण नहीं था. महज उसकी एक आदत-सी बन गयी थी. कभी-कभी ऐसा भी होता कि जब तक वह दक्षिण वाला फाटक बंद करता होता, तब तक उत्तर की ओर से कोई स्कूटर या मोटरसाइकिल वाला अंदर घुस आता. परंतु, उन लोगों की ओर भी उसने ध्यान देना बंद कर दिया था. और जब-जब ऐसा होता, तब ऐसे दुस्साहसी लोगों के लिए अपना स्कूटर या मोटरसाइकिल ले कर गेट के अंदर ही एक ओर खड़ा करके गाड़ी निकल जाने की प्रतीक्षा करने के अलावा कोई चारा नहीं होता. कोई कितनी ही खुशामद करे, या गाली दे, उसने अपना नियम बना लिया था कि एक बार फाटक बंद करने के बाद तभी खोलता, जब गाड़ी निकल चुकी होती.

वैसे शुरू में यहां बहुत कम ट्रैफिक था. ट्रकों का तो आज से आठ-दस वर्ष पहले तक प्रश्न ही नहीं उठता था. कारें और स्कूटर भी कभी-कभी ही निकलते थे. हां, बैलगाड़ियां जरूर थीं उन दिनों. परंतु, जब से गंगा का नया पुल बना है, तब से सब काया पलट गयी है. सड़क की नये सिरे से मरम्मत हुई है और चौबीस घंटे उस पर ट्रैफिक चलने लगा है. अब यह सड़क गंगा के पुल को जी. टी. रोड से जोड़ती है और इस मायने में एक महत्वपूर्ण मार्ग बन गयी है. यही कारण है कि शहर ने अपने पंजे अब यहां तक फैला लिये हैं और धीरे-धीरे सारे गांव को अपने आधिपत्य में ले लिया है. अब यहां खेत, तालाब और खलिहानों की जगह ऊंची-ऊंची इमारतें बन गयी हैं. स्कूल और पार्क बन गये हैं. एक अस्पताल भी बन गया है, तथा दो-एक सरकारी दफ्तर भी खुल गये हैं. पुराने जमींदार और किसान अपनी-अपनी जमीनें बेच कर जाने कहां चले गये हैं. बस पुराने दिनों की यादगार की बतौर एक वह, और एक पुजारी जी रह गये हैं. बल्कि पुजारी जी भी पिछले दो-तीन महीनों से अब कहां हैं? अब तो केवल वह, उसकी यह गुमटी और फौलाद की ये पटरियां. इंजन और डब्बे. माल और डाक गाड़ियां. दूर से आवाज सुन कर ही वह बता सकता है कि डाकगाड़ी है, पैसिंजर या माल. खलीक के इंजन की तो वह सीटी तक पहचानता है. खलीक की ही बदौलत उसे जूट और कोयला मिल जाता है. उसे इशारा करने भर की देर होती है. बस, दस-बीस किलो कोयला पटरी पर गिरा देना खलीक के लिए कौन बड़ी बात है! और जूट तो वह उसके कहे बिना ही फेंक जाता है.

★ ★

आज से अट्ठारह-बीस बरस पहले जब वह यहां पहली बार आया था तो आसपास लगभग जंगल था. रात में नरकुलों में सियार बोलते थे. कभी-कभी भेड़िये भी नजर आ जाते थे. पास के गांव से बदलू सुनार की बकरी उठा कर भेड़िये ने उसकी गुमटी के पीछे ही खायी थी. रात के सन्नाटे में वह हड्डियों के चटखने की आवाज सुनता रहा था. सुबह वहां आधी खायी हुई बकरी मिली थी, जिसे दुखी चमार उठा ले गया था और घर में कलिया बनाया था. बदलू तो भगत थे. गले में कंठी पहनते थे.

बदलू के घर पर ही उसने पहली बार चांद को देखा था. यानी फजलू मनिहार की लड़की. गांव में तो वह पहले ही चक्कर लगाया करता था और पंचमसिंह के कोल्हू से गन्ने की फसल के दिनों में ढेरों रस पी आता था. गुड़ भी ले आता था वहां से. मगर जिस दिन बदलू की बकरी को भेड़िया उठा लाया था और सुबह आधी खायी हुई बकरी की लाश पर बदलू उसके सामने अपना सिर धुनता रहा था, उस दिन से उसका बदलू के यहां आना-जाना भी होने लगा था. अकसर फुर्सत में वह बदलू के पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठ कर चांदी और सोने को गला कर जेवरों के आकार में ढालते देखा करता. उन दिनों गाड़ियां भी इतनी नहीं थीं. मालगाड़ियां तो नहीं के बराबर थीं. डाक भी कम ही थीं. इसीलिए दिन में उसे रोज ही दो-चार घंटे का समय घूमने-फिरने के लिए मिल जाता था.

तभी एक दिन जब वह बदलू के यहां बैठा था, तो चांद वहां आयी थी. लहंगा और सलूका पहने. अल्हड़ और जवान. यह तो उसे बाद में पता चला कि वह विधवा है और एक बच्चे की मां है. उस समय तो उसे लगा था कि अभी उसकी शादी भी नहीं हुई. चांद बदलू के यहां अपने लच्छे गिरवी रखने आयी थी. पौने किलो के बीस लच्छे बदलू ने बीस रुपये में गिरवी रखे थे. चांद के चले जाने के बाद उसने बदलू से चांदी का मोल पूछा था, तो बदलू ने बताया था, डेढ़-दो सौ से कम नहीं होगा. पता नहीं क्यों, उसी दिन से उसके मन के किसी कोने में बदलू के प्रति घृणा पनप गयी थी.

इसी के कुछ दिनों बाद उसने चांद को रेल की पटरी के पास कोयला बीनते देखा था और चांद उसे देखते ही बीना हुआ कोयला वहीं छोड़ कर भागने लगी थी. उसने चांद को आवाज दे कर रोक लिया था और उसे कोयला ले जाने की अनुमति दे दी थी. बल्कि उसे गुमटी पर ला कर उसने अपने पास से भी कुछ कोयला दे दिया था. इस घटना के बाद से ही वह चांद के यहां आने-जाने लगा था. चांद, यानी फजलू के यहां. फजलू को वह 'काका' कहा करता था. वह दुबले शरीर के, ढलती उम्र के आदमी थे. उनके छोटी, खिचड़ी दाढ़ी थी और प्राय: चारखाने की तहमद और पूरी आस्तीन की बंडी पहनते थे. अपने बाहर के बरामदे में फूस के छप्पर के नीचे बैठे अंगीठी में कोयला सुलगाये वह लाख की चूड़ियां बनाया करते. कभी गांव के दो-एक लड़के आ जाते तो उनके लिए गोलियां या फिर लड़कियों के लिए गुट्टे भी बना देते.

* *

अब तो खैर उसे ठीक से याद नहीं कि यह सब कैसे हुआ था, परंतु, धीरे-धीरे वह चांद के निकट आता चला गया था. फजलू भी उसे अपने बेटे की तरह मानने लगे थे. बदलू के यहां बीस रुपये में गिरवी रखे चांद के लच्छे भी वह छुड़वा लाया था. चांद फजलू की अकेली लड़की थी. फजलू चाहते थे कि चांद दुबारा ब्याह कर ले. कभी-कभी वह उससे भी कहते कि वह चांद को इस बारे में समझाये. वह हंस कर टाल देता. चांद भी कभी-कभी उसके यहां आ जाती और घंटों वहीं बनी रहती. उसकी गुमटी के पीछे लगी साज-सब्जी में पानी देती रहती. उसकी अंगीठी सुलगा देती. उसे खाना बनाने में मदद करती. वह उसके बच्चों को गोद में लिये खिलाता रहता.

अकसर सांझ ढले देर तक चांद उसके यहां रह जाती और तब वह उसे उसके घर तक छोड़ने जाता. परंतु गांव वालों को यह अच्छा नहीं लगा और उन्होंने इस पर आपत्ति करना शुरू कर दिया. पहले तो उन लोगों ने फजलू से कहा कि वह अपनी बेटी को रोके और जब फजलू इसमें कामयाब नहीं हुए या जान-बूझ कर उन्होंने इसके लिए कोई प्रयत्न नहीं किया, तो बात यहां तक बढ़ी कि एक दिन पंचायत जुड़ी इसी बात पर. वैसे चांद उसके साथ हमेशा-हमेशा रहने के लिए तैयार थी, और उसे भी उन दिनों यही लगता था कि उसकी जिंदगी भी चांद के बिना अधूरी है. परंतु चांद से ब्याह करने की बात उन दिनों उसके मन में कभी आयी ही नहीं. शायद इसलिए कि उनके बीच धर्म की दीवार थी. जो भी हो, मामला पंचायत में पहुंचा और पंचों ने फैसला दिया कि यह गांव की इज्जत का सवाल है. फजलू इस बारे में अंतिम निर्णय लें और यदि वह कुछ नहीं करते तो गांव छोड़ कर चले जायें.

आखिर फजलू ने निर्णय लिया और चांद की मर्जी के खिलाफ उसका ब्याह हबीब बिसाती से कर दिया, जिसकी उम्र पचास के आस-पास थी. और हबीब ने चांद को ले जा कर अपने घर में बंद कर लिया. बाकायदा ताले-कुंजी में.

उसे यह सब अच्छा नहीं लगा था. परंतु कहीं कुछ गलत हो रहा है, यह बात भी उसके मन में नहीं आयी थी. और तभी एक रात चांद ने आ कर उसका दरवाजा खटखटाया. बच्चे को गोद में लिये हुए. दरवाजा खुलते ही उसने कहा कि वह उसे ले कर कहीं चला जाये. उसके बिना वह जिंदगी जीना नहीं चाहती. और तब पहली बार उसे लगा कि कहीं कुछ बहुत गलत हो गया है. हालांकि कोई निर्णय वह फिर भी नहीं ले सका. रात भर चांद उसकी बाहों में सिसकती रही, बच्चा अलग चारपाई पर सोता रहा और उसका मन अनेक दुविधाओं के बीच भटकता रहा.

आखिर जब सुबह उसने दरवाजा खोला तो हबीब, फजलू के साथ, उसकी गुमटी के सामने खड़ा था. अगर चांद तुरंत हबीब के पैरों पर न गिर पड़ती और फजलू बीच में न आ जाते, तो वह दिन शायद उसकी जिंदगी का आखिरी दिन होता.

इसी के तीसरे या शायद चौथे दिन सुबह साढ़े पांच वाली डाक, जो उन दिनों शायद छह बजे निकलती थी, अचानक ब्रेक लगा कर रुक गयी. गार्ड और कुछ मुसाफिर भी अपने डब्बों से उतर आये. वह भी दौड़ा-दौड़ा गया तो देखा, पटरी पर चांद की लाश पड़ी थी. खून से लथपथ.

* *

साढ़े पांच वाली डाक निकल गयी तो उसने जा कर फाटक खोल दिया और लौट कर अपनी गुमटी के पीछे बनी सब्जी की क्यारियों में पानी देने लगा. आम के पेड़ पर कोयल कूकने लगी थी. यह पेड़ उसकी गुमटी के पास कूड़े के ढेर पर अपने आप उग आया था. बाद में उसने उसकी देखभाल करके उसे इतना बड़ा किया था. पहली बार उसमें फल आया था. हरी-हरी, छोटी-छोटी अमियां डालों से लटक रही थीं. उसका सारा दिन अमियों की रखवाली में निकल जाता था. जरा-सा वह इधर-उधर हुआ नहीं कि आस-पास के लड़के आ कर ढेलेबाजी करने लगते.

क्यारियों में पानी दे कर वह फिर अपनी गुमटी में लौट आया और चारपाई बाहर निकाल कर उस पर बैठ कर बीड़ी पीने लगा. पश्चिम की तरफ सिग्नल की बत्ती बुझ गयी थी. सूर्य निकल आया था और उसके उजाले में रेल की पटरियां दूर-दूर तक चमकने लगी थीं. बया अपने घोंसलों से निकल कर अपने बच्चों को दाना चुगाने लगी थीं.

पूर्व की ओर बना नया पुल भी सूर्य के प्रकाश में चमक रहा था. यह पुल पिछले दो-तीन वर्षों में बन कर तैयार हुआ था. बीसियों मजदूर इस काम में लगे थे. परंतु, आज जब यह पुल बन कर तैयार हो गया था, वे मजदूर कहीं नहीं थे. शायद अब कहीं और किसी दूसरे पुल की तामीर में लगे होंगे, उसने सोचा.

इस पुल के बन जाने का अर्थ था कि अब उसकी गुमटी बंद कर दी जायेगी. सड़क को पुल से जोड़ दिया गया था और वह अब थोड़ी-सी घूम कर ऊपर से निकल जायेगी. अब ट्रैफिक को उसके फाटक पर रुकने की असुविधा नहीं उठानी होगी. पिछले कई महीनों से वह एक प्रकार से अपने दिन गिन रहा था. उसने सुना था कि कोई मंत्री जी इस पुल का उद्घाटन करने आने वाले हैं. तभी उसने देखा, पानी छिड़कने वाला इंजन पुल के ऊपर बनी सड़क पर पानी का छिड़काव कर रहा था. अभी तक इस पुल के दोनों ओर सड़क पर कोलतार के ड्रम रख कर पुल का रास्ता बंद कर दिया गया था. पानी छिड़कने वाले इंजन के पुल पर आने के मायने थे, कम-से-कम एक ओर के ड्रम हटा दिये गये होंगे.

अंगीठी बुझने लगी थी. उसने उसमें नये सिरे से कोयला डाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दो-चार हाथ पंखे की हवा दे कर पतीली में दाल डाल कर चढ़ा दी. दाल चढ़ा कर वह पीछे की ओर लगे हैंडपाइप पर नहाने चला गया. नहा कर उसने अपनी धोती निचोड़ी और उसे वहीं सब्जी की क्यारियों के पास घास पर ही फैला कर गुमटी में लौट आया. दाल में एक उबाल आ चुका था. वह दूसरे उबाल की प्रतीक्षा करने लगा. दूसरा उबाल आने पर उसने दाल उतार दी और चावल चढ़ा दिये. पीछे सब्जी की क्यारी से लौकी तोड़ कर, उसे काट कर एक बरतन में रखा और तब आटा निकाल कर तसले में गूंथने लगा.

खाना पका कर उसने गुमटी में ला कर ढक दिया और मंदिर की ओर निकल गया. काफी देर तक अब कोई गाड़ी आने वाली नहीं थी. आज वैसे ही उसका मन हो आया, अन्यथा दिन में उसने मंदिर जाना लगभग छोड़ दिया था. मंदिर में शंकर जी की मूर्ति पर किसी ने दो-चार कनेर के फूल चढ़ा दिये थे. हो सकता है, कोई भक्त इधर निकल आया हो, या फिर बच्चों ने ही यह हरकत की हो. कहीं पुजारी जी तो नहीं लौट आये? परंतु नहीं, वह आये होते तो उनका हाथी भी होता.

थोड़ी देर वह मंदिर के अहाते में इधर-उधर टहलता रहा. तब वहां से लौट कर साढ़े ग्यारह वाली पैसिंजर के निकलने की प्रतीक्षा करने लगा. पौने दस की डाक, वह खाना बना रहा था, तभी जा चुकी थी. साढ़े ग्यारह की गाड़ी निकलने के बाद उसने खाना खाया और तब आम के पेड़ के नीचे चारपाई डाल कर आराम करने लगा. गर्मियों में प्रायः उसकी यही दिनचर्या रहती थी. खाना खाने के बाद कम-से-कम दो घंटे सोना. वैसे हवा में काफी गर्मी थी. परंतु पेड़ के नीचे अब भी कुछ गनीमत थी.

★ ★

कोई तीन बजे वह सो कर उठा तो आसमान में हलके-हलके बादल जमा होने लगे थे. हो सकता है आज बारिश हो, उसने आसमान की ओर देख कर मन-ही-मन अनुमान लगाया. कल आंधी आयी थी, परंतु आज आंधी के कोई आसार नहीं थे. केवल हलके स्लेटी रंग के बादलों के टुकड़े आसमान में तैर रहे थे. एक टुकड़ा बिल्कुल पुजारी जी के हाथी की तरह लग रहा था. उसे मन-ही-मन हंसी आयी. क्या पुजारी जी ने अब अपना धंधा इस लोक से उस लोक तक बढ़ा लिया है?

उसने चारपाई वहीं पेड़ के नीचे पड़ी रहने दी और गुमटी में आ कर चाय बनाने के लिए दुबारा अंगीठी सुलगाने लगा. तभी उसने देखा, नये पुल पर एक ट्रैफिक कांस्टेबल खड़ा था. कुछ और लोग पुल को रंग-बिरंगी झंडियों से सजा रहे थे. इसके मायने आज ही उद्घाटन होगा, उसने सोचा. उसके उत्तर वाले फाटक पर भी एक ट्रैफिक कांस्टेबल तैनात था. यानी आज से उसका दाना-पानी यहां से खत्म! कल से अब जाने कहां ड्यूटी लगे.

साढ़े तीन पर फिर एक पैसिंजर थी. उसके निकल जाने के बाद वह वैसे ही इधर-उधर टहलने लगा. एक बार पुल तक भी हो आया. वहां उसे पता चला कि पांच बजे मंत्री जी आने वाले थे--पुल का उद्घाटन करने. साढ़े पांच पर एक डाक गुजरती थी. शायद अब उसे इस डाक के आने पर फाटक बंद करने की जरूरत न पड़े. खैर, फाटक तो उसे बंद करना ही पड़ेगा. परंतु अब इसकी कोई एहमियत नहीं रह गयी थी! दो-एक दिन में उसकी नयी पोस्टिंग का ऑर्डर आ जायेगा. और तब रेलवे के मजदूर आयेंगे और उसकी गुमटी के खिड़की, दरवाजे, टेलीफोन, कीबोर्ड--सब उखाड़ ले जायेंगे. अंग्रेजी के बड़े-बड़े अक्षरों में उसकी दीवाल पर एबंडंड लिख दिया जायेगा. जाड़ों में आवारा कुत्तों के सोने के लिए अच्छा प्रबंध हो जायेगा. तब कौन जानेगा कि उसने जिंदगी के अट्ठारह-बीस वर्ष इस गुमटी में गुजारे हैं! इस आम के पेड़ और सब्जी की क्यारियों का

कामतानाथ (जन्म : ४ अप्रैल, १९३५) ने आम आदमी की दारुण परिस्थितियों को बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया है. कामता की कहानियां ऊपर से बेहद सहज और खामोश लेकिन अपनी प्रकृति में बहुत विस्फोटक होती हैं. वस्तुतः कामता का संपूर्ण लेखन मानवीय संवेदना और अपने समय से संबद्धता का लेखन है.

क्या होगा? खैर, उसे क्या करना! उसका तो बस इतने ही दिनों का नाता था.

अचानक उसे चांद की याद हो आयी. आज चांद होती तो वह उसे ले कर कहीं भी चला जाता. शायद उनके दो-तीन बच्चे भी होते. चार-पांच हजार फंड तो उसका हो ही गया होगा. नौकरी छोड़ कर कोई दूकान कर लेता. मगर यह सब उसके भाग्य में नहीं था. उसकी किस्मत में तो बस ये रेल की पटरियां हैं. न ये पटरियां सही, दूसरी पटरियां सही. कभी-कभी तो उसे स्वप्न में भी ये पटरियां दिखायी देती हैं. धरती के एक सिरे से दूसरे सिरे तक बिछी हुई. एक-दूसरे को काटती, एक दूसरे के समानांतर. या फिर ऐसे ही कोई अकेली पटरी किसी अनजान दिशा की ओर क्षितिज तक जाती हुई.

★ ★

वह गुमटी में वापस आया तो उसका मन कुछ अजीब उचटा हुआ-सा था. एक निगाह उसने गुमटी में फैले हुए अपने सामान पर डाली. मिट्टी के तेल की कुप्पी, छोटे-मोटे डिब्बे और कनस्तर. एक कोने में लगा हुआ कोयले का ढेर. उसी के पास दफ्ती के एक डिब्बे में जूट का छोटा-सा अंबार. बांस की चारपाई पर लिपटा हुआ एक मुख्तसर-सा बिस्तर. उसी के नीचे पड़ा हुआ टीन का एक पुराना संदूक. खूंटी पर टंगा हुआ खाकी गर्म ओवरकोट, जिसे वह जाड़े के दिनों में पहनता है. इस वर्ष शायद नया मिले, उसने सोचा. दो-एक और खूंटियों पर कुछ और गंदे कपड़े. बस, यही गृहस्थी थी उसकी. हां, एक ताक पर जगन्नाथ जी के धुंआ खाये हुए पट, जिन्हें वह बरसों पहले कभी पुरी गया था, तब वहां से लाया था. उसी की बगल में गुटका रामायण और बियर की एक टूटी हुई बोतल, जिसे आज से चार-पांच वर्ष पहले, जब वह सड़क का फाटक बंद करके अपनी गुमटी के सामने खड़ा गाड़ी निकलने की प्रतीक्षा कर रहा था, फर्स्ट क्लास के किसी मुसाफिर ने अपने डब्बे से फेंका था, और वह उसके सिर में आ कर लगी थी. हफ्तों उसे पट्टी बांधनी पड़ी थी. टांके लगे थे, जिनका निशान आज तक उसके माथे पर है. एक और ताक पर किस्सा तोता-मैना और आल्हा की किताब. दो-एक पुरानी फिल्मों के गानों की किताबें, जो उसने बरसों पहले कभी खरीदी थीं. . .

एक बार उसके मन में आया कि वह सारा सामान समेटने का प्रबंध करे. परंतु फिर वह टाल गया और पेड़ के नीचे से चारपाई उठा कर अपनी गुमटी के सामने डाल कर उस पर बैठ कर बीड़ी पीने लगा. आसमान में बादल अभी भी टुकड़े-टुकड़े ही थे. परंतु हवा में गर्मी काफी कम हो गयी थी.

पुल पर चहल-पहल बढ़ गयी थी. दक्षिण वाले सिरे पर सड़क के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर-पार एक लाल फीता बांध दिया गया था. काफी लोग वहां जमा होने लगे थे. ल.उडस्पीकर भी लग गया था, जिस पर कोई 'हलो, एक, दो, तीन. . . टेस्टिंग, टेस्टिंग' चिल्ला रहा था. कुछ मोटरें भी रेल के फाटक से निकल कर पुल के उस ओर जमा होने लगी थीं. पांच बजने वाले होंगे, उसने मंदिर के कलश पर पड़ती हुई धूप की लाइन से अंदाज लगाया. यानी मंत्री जी अब आने ही वाले होंगे. सामने टेलीग्राफ के तार पर उल्लू बैठा था.

सड़क पर ट्रैफिक बढ़ने लगा था. दफ्तरों के छूटने का वक्त था यह और प्रायः इस समय तथा सुबह नौ और दस के बीच ट्रैफिक का जोर कुछ ज्यादा ही होता था. बल्कि, पिछले दो-चार वर्षों से हो गया था. शुरू में तो ट्रैफिक के नाम पर उसके लिए बस यही गाड़ियां थीं. डाक और पैसिंजर. फिर कभी कोई भूली-भटकी मालगाड़ी आ जाती थी.

सहसा उसे टेलीफोन की घंटी सुनायी दी, तो वह लपक कर गुमटी में गया. साढ़े पांच वाली पैसिंजर की सूचना थी. उसने बोर्ड से कुंजी उतारी और धीमे कदमों से फाटक बंद करने चला गया. उत्तर वाले फाटक पर ताला लगा रहा था, तभी उसने देखा, कोई दस गज की दूरी पर मंत्री जी की कार आ रही थी. वहां फाटक पर खड़े ट्रैफिक पुलिस वाले ने उससे हड़बड़ी में कुछ कहा भी था, परंतु वह दक्षिण वाला फाटक पहले ही बंद कर चुका था. गाड़ी किसी भी क्षण आ सकती थी. वह चुपचाप फाटक बंद करके अपनी गुमटी में लौट आया.

मंत्री जी की कार और उसके साथ आया हुआ सारा काफिला उत्तर वाले फाटक पर ही रुक गया. पुल पर जमा भीड़ में मंत्री जी की कार आते ही हलचल-सी मच गयी थी. लोग पुल से नीचे झांकने लगे. उनमें से कुछ के हाथों में फूलमालाएं थीं. लाउडस्पीकर पर लोगों से व्यवस्थित रहने के लिए अपील की जा रही थी. घोषणा हो रही थी कि मंत्री जी आ गये हैं, उनकी गाड़ी रेल के फाटक पर खड़ी है, लोग अपने-अपने स्थानों पर रहें. खबरदार कोई लाल फीते के पार न जाये! फिर भी कुछ लोग फीते के पार नजर आ रहे थे. हो सकता है, वे प्रबंध करने वालों में से हों.

उसे लगा, गाड़ी आने में कुछ अनावश्यक देर हो रही है. फाटक के दोनों ओर ट्रैफिक की लाइनें लंबी होती जा रही थीं. पुल पर जमा भीड़ में कुछ बेचैनी भी नजर आने लगी थी. मंत्री जी के साथ आये हुए पुलिस-अधिकारी आदि अपनी-अपनी गाड़ियों से उतर कर फाटक के पास खड़े हो गये और पटरी के दोनों ओर झांकने लगे थे. तभी उसके मन में एक बात आयी. अच्छा, अगर वह गाड़ी निकल जाने के बाद भी फाटक न खोले तो? मान लो, थोड़ी देर के लिए वह चाबी ले कर कहीं चला जाये? अचानक उसके बदन में एक सिह-रन-सी हुई. या उसे शक हुआ. परंतु नहीं, उसके दिल के हल्के में एक भयानक दर्द उठा और उसके दोनों हाथ अपने आप सीने पर पहुंच गये.

लड़खड़ाता हुआ-सा वह अपनी चारपाई पर बैठ गया. साथ ही डीजल इंजन की घहराती हुई आवाज उसके कान में पड़ी और एक क्षण में लोहे की पटरियों पर फौलाद के पहिये फिसलने लगे. उल्लू टेलीग्राफ के तार से उड़ कर उसकी गुमटी के ऊपर से गुजर गया.

उसने चाहा कि वह उठ कर खड़ा हो जाये. परंतु उसे लगा जैसे उसके शरीर की सारी शक्ति निचुड़ गयी हो और वह चुपचाप अपनी चारपाई पर लुढ़क गया. गाड़ी के डब्बे उसकी आंखों के सामने से गुजर रहे थे, परंतु उनका आकार उसकी दृष्टि में धुंधला-सा पड़ने लगा था. जैसे कोई वस्तु कैमरे के फोकस से हट जाये.

गाड़ी गुजरे बीस-पचीस सेकंड हो गये, परंतु वह अपनी चारपाई पर चुपचाप लेटा रहा. फाटक के दोनों ओर खासा ट्रैफिक पहले से ही जमा हो चुका था. लोग उतावले होने लगे थे. कुछ लोगों ने उसे आवाजें भी दीं, परंतु वह अपनी जगह से हिला तक नहीं. तभी दोनों ओर से कुछ लोग फाटक के बीच से या उसके बगल में पैदल चलने वाले लोगों के लिए बने रास्ते से निकल कर उसकी गुमटी की ओर बढ़ने लगे. उसमें मंत्री जी के साथ आये हुए पुलिस-अधिकारी भी थे. परंतु वह उनकी गालियों से बेखबर अपनी चारपाई पर शांत लेटा हुआ था.

उसके निकट पहुंचते-पहुंचते लोग खासा जोर से चिल्लाने लगे थे. जब वे उसके बिल्कुल निकट आ गये तो उसने एक बार आंखें खोल कर उनकी ओर देखा. दोनों हाथों से चारपाई की पट्टियां पकड़ कर उठने का प्रयत्न किया, परंतु दूसरे ही क्षण उसके दोनों हाथ चारपाई के नीचे हवा में झूल गये.

* *

लोग अपने-अपने स्थान पर रुक गये. केवल दो-एक पुलिस अधि-कारियों ने आगे बढ़ कर उसे हिलाया. परंतु दूसरे क्षण वे भी वापस लौट पड़े और मंत्री जी की गाड़ी के पास आ कर उसमें बैठे लोगों से बात करने लगे. और लोग भी अपनी गाड़ियों से उतर कर वहां आ गये.

सामने पुल पर जमा भीड़ में भी खलबली मचने लगी. लोग फीते को पार करते हुए या फिर ऊपर से ही सड़क के किनारे लगे मिट्टी के ढेर पर से उतरते हुए फाटक के पास जमा होने लगे. कुछ लोग फाटक फलांगते हुए उसकी चारपाई के निकट भी आ गये.

साथ ही फाटक के दोनों ओर ट्रैफिक की लाइनें लंबी होती जा रही थीं. कुछ लोग अपनी गाड़ियों को मोड़ने और हॉर्न बजाने लगे. नतीजा यह निकला कि दोनों ओर का ट्रैफिक जमा होने लगा. दो-एक पुलिस-अधिकारी आगे बढ़ कर ट्रैफिक कंट्रोल करने का प्रयत्न करने लगे. परंतु वे स्थिति संभाल सकने में सफल नहीं हो पा रहे थे.

तब तक दोनों ओर की ट्रैफिक लाइनों में से पीछे वाले लोगों ने अपनी गाड़ियों को मोड़ना शुरू कर दिया. उनमें से कुछ नये पुल पर निकल आये. एक-दो का उधर बढ़ना था कि दोनों ओर से पुल पर हो कर निकल जाने के लिए होड़-सी लग गयी, परंतु पुल पर खड़े ट्रैफिक पुलिस वाले ने उन्हें वापस भेजना शुरू कर दिया और इस सारी हड़बड़ी में पुल पर भी ट्रैफिक जमा हो गया.

मंत्री जी के स्वागत को आयी भीड़ भी तितर-बितर होने लगी. उनमें से कुछ फाटक की ओर बढ़ आये. जो ऐसा करने में सफल नहीं हो पाये, वे पुल पर से ही नीचे की ओर झांकने लगे. सारा इलाका ट्रैफिक और मनुष्यों का मिला-जुला समुद्र-सा हो गया, जिसमें दोनों फाटकों के बीच वाला हिस्सा एक वीरान टापू की तरह लग रहा था, जिसके एक किनारे उसकी गुमटी बनी हुई थी. सामने उसकी चारपाई पड़ी थी, जिस पर वह लेटा हुआ था. उसकी आंखें बंद थीं और दोनों हाथ चारपाई के दोनों ओर हवा में झूल रहे थे. दो-चार लोग आस-पास खड़े उसे देख रहे थे.

तभी अचानक जोर की बारिश आ गयी और वहां जमा लोगों में भगदड़-सी मच गयी. परंतु, वह उसी प्रकार अपनी चारपाई पर पड़ा हुआ था, निश्चल और निर्विकार. □□□

रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया स्टाफ क्वार्टर्स,
रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, कानपुर.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आम आदमी के आसपास—आज की कहानियां

आज कहानियां महज कहानियां ही नहीं रह गयी हैं, वे आसपास के जीवन से लेखक और पाठक की संबद्धता और संलग्नता का ज़रिया भी बन चुकी हैं. आज की 'समांतर' कहानी का लेखक खुद सामान्य आदमी है और उन्हीं तनावों—आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कारिक—को अभिव्यक्ति देता है, जिनके बीच वह जी रहा है.

आज की भारतीय स्थिति का संपूर्ण जायज़ा लेने वाली ये कहानियां जहां एक ओर आम आदमी की दारुण स्थितियों को अभिव्यक्ति देती हैं, वहीं दूसरी ओर उन मूर्त और अमूर्त शक्तियों की ओर भी इंगित करती हैं, जो इन स्थितियों के लिए जिम्मेदार हैं.

इन विशेषांकों की **सारिका** के लिए विशेष रूप से लिखी गयी विशिष्ट कहानियां आपकी अपनी कहानियां हैं—आपके अपने, नितांत निजी, फिर भी सामूहिक, अनुभवों की कहानियां!

समांतर कहानी विशेषांक–६

मार्च '७५ अंक के लेखक

गंगाप्रसाद विमल, राही मासूम रजा, रामसरूप अणखी आबिद सुरती, सुधा अरोड़ा, सुदीप, राजेंद्र किशोर, प्रेम कासलीवाल, कृष्ण भावुक, किशोर जाधव, राधेश्याम, बसंत कुमार, बल्लभ डोभाल, कमलेश्वर आदि.

साथ ही—

भगवतीचरण वर्मा द्वारा सारिका के लिए विशेष रूप से लिखी १२ कहानियों में से अंतिम कहानी.

और—

● मेरा पन्ना ● कबिरा खड़ा बजार में–हरिशंकर परसाई ● लघुकथाएं ● मीनाकुमारी की डायरी और गुलजार की काव्य रचना ● चंद सतरें और—अनीता औलक ● समांतर साहित्य पर दो विशेष टिप्पणियां ● नयी पौद ● **सारिका** कथा-पहेली.

तथा सभी स्थायी स्तंभ.

सारिका

पुस्तकालय ०५०५८२ गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्न और स्वप्न

• नवतेज सिंह

दारा छह वर्षों से गर्मी-सर्दी में निरंतर रिक्शा चलाता आ रहा था किंतु इसके पहले उसने इतनी घनी धुंध कभी नहीं देखी थी.

धुंध में रास्ते गुम थे. घंटाघर मले कब के नौ बज चुके थे, किंतु धुंध के कारण दूर खड़ा हो कर कोई मानव भी नजर नहीं आता था. दारा ने पायदान में पड़ी बोरी को उठाकर सीट के नीचे रख लिया. इसमें आटा डलवाना था.

मां ने घर से चलते समय यह बोरी तथा राशन कार्ड उसे दिया और साथ ही सचेत कर दिया— कहीं ऐसा न हो कि तुम काम में फंसे रहो और डिपो बंद हो जाए. घर में आटा बिल्कुल नहीं और मशीन वाला रुपये का डेढ़ सेर आटा देता है.

उसे नफरत-सी हो रही थी क्योंकि बदचलन पाशो अपने पैरों के नीचे इस बोरी को मसलती आयी थी. वह अपनी ऊंची एड़ी की गुर्गाबीर (ऊंचे पैरों वाली चप्पल) इसके ऊपर रखकर रिक्शा से उतरी थी. सुबह ही किसी ग्राहक के यहां से लौटी थी. पता नहीं उसकी ऊंची एंड़ियों में कैसा कीचड़ लगा होगा.

कैसी धुंध थी! और कैसी बोहनी थी! इसी कारण उसे सवारी नहीं मिल रही थी. पौन घंटे से वह एक ही स्थान पर खड़ा था.

रिक्शा से उतर कर, ऊंची एड़ी पर झूलती पाशो ने जब दारे को एक रुपये का नोट दिया था (पाशी के नाखूनों पर लाल रंग लगा हुआ था), तब हमेशा की भांति बोहनी की कमाई को चूमने के ख्याल से दारा यह नोट अपने होठों तक ले तो गया पर फिर किसी अज्ञातघृणा भाव से यह अपना हाथ नीचे ले आया.

और जितनी देर पाशो को खुदरा देने के लिए पैसे टटोलता रहा, उसे पाशों के रंगे होंठ नजर आते रहे. . .उसे लगा कि जैसे कोई आदमी यह नोट पाशो के होंठों पर रख रहा हो. . .और उस आदमी के होंठ पाशो के होंठों के साथ मिल गये हों. . . .

कम से कम आज के आटे के लिए उसे ऐसा ही एक नोट और चाहिए था. और अभी रिक्शा मालिक को महसूल भी देना था.

कैसी गंदी शक्ल थी रिक्शा मालिक की (अभी-अभी उसने ऐसी ही शक्ल देखी थी, पाशो के होंठों पर अपने होंठ रखने वाले की शक्ल) दारे ने अपन आपको कोसा, रात उसके यहां खाना नहीं बना था— शायद भूख उसे सता रही थी.

इनी घनी धुंध उसने कभी नहीं देखी थी— और इतनी महंगाई भी शायद कभी नहीं.

उसका दादा बताया करता था कि दूसरे विश्व युद्ध के दिनों में भी एक बार आटा राशन कार्डों पर मिलना शुरू हो गया था— पर दारे को उस समय की कोई बात याद नहीं. उस समय तो युद्ध छिड़ा हुआ था, संसार में पता नहीं कितनी जमीन यूं ही खाली पड़ी रही होती! कितनी जमीन मुर्दे दबाने के काम आयी होगी!... और फिर उस समय फिरंगियों का राज्य था, उन्हें हमारी क्या चिंता.

पर, अब तो कोई युद्ध नहीं था, शांति थी. जिस प्रकार सिनेमा घरों में सिगरेटों का विज्ञापन होता है, उसी प्रकार पिछले दिनों हमारी सरकार ने 'अधिक अन्न उपजाओ' का धड़ल्ले से प्रचार किया था, स्कूल के लड़कों ने इस संबंध में जुलूस निकाले थे. . . . अन्न. . . अधिक अन्न!

कल एक सवारी कहती थी, इस बार सर्दियों में चौमासा लगा रहा! पहले तो वर्षा बंद नहीं होती, फिर धुंध पल्ला नहीं छोड़ती. इन सभी बातों का कारण नये युद्ध की तैयारी है. एटम-बम के प्रयोग हो रहे हैं. इन बमों की गैसों ने तो प्रकृति के नियमों में परिवर्तन ला दिया है. पता नहीं युद्ध छिड़नेवाला हो. धुंध और महंगाई युद्ध का ही सबूत है. . . किंतु यहां कहां?. . .

दारे को एक औरत, एक मर्द और दो बच्चे अपनी ओर आते दिखाई दिये.

——भाई रिक्शावाले कंपनी बाग चलोगे, और फिर वह जोड़ा अपने बच्चों समेत दारे के रिक्शा में बैठ गया.

सूरज की रोशनी धुंध को चीर रही थी. जब रिक्शा कंपनी बाग पहुंचा— धुंध हट चुकी थी और बाग में दिन पूरी तरह खिल आया था. वहीं पर उसकी सवारियां उतर गयीं. उस आदमी ने उसे साधारण भाड़े से कुछ अधिक रकम दी. फिलहाल ये बोहनी के पैसे नहीं थे, किंतु फिर भी अनजाने ही उसने इन पैसों को चूमा. . . और उसे उन दो बच्चों की महक आयी, जो कि सारा रास्ता उसके रिक्शा में अपने मां-बाप की गोद में चुपचाप टिके रहे थे, और अभी-अभी उतर कर बाग में घूम रहे थे. . . दो फूल, दो तितलियां. . . वहां से जाने का जी नहीं किया.

जब सुबह उसकी पहली सवारी, वह पाशो, उतरी थी, तो दारे के मन में घृणा उत्पन्न हुई थी. तब एक नामुराद धुंध ने उसके सारे शरीर को ढांप लिया था और अब जब कि यह जोड़ा और ये बच्चे उतरे थे, उसे अनुभव हुआ था कि इनकी खुशी का सूर्य जैसे उसके अंदर की धुंध चीर रहा हो और उसका शरीर इसके उजले प्रकाश में खिलता जा रहा हो!

इस समय कंपनी बाग में घूमने का वक्त नहीं था— न ही आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई खास दिन था. उसने रिक्शा में बैठे इस जोड़े की बातें सुनी थीं. वह आदमी किसी दूसरे शहर में काम करता था. अपनी पत्नी और बच्चों समेत वह घर छुट्टी पर जा रहा था. रास्ते में यहां से गाड़ी बदलनी थी. तीन घंटे बाद दूसरी गाड़ी मिलनी थी. वे स्टेशन पर ही सामान रखकर कंपनी बाग में सैर के लिए आ गये थे.

उस आदमी ने रिक्शा में बैठी अपनी पत्नी से कहा था— याद है तुम्हें, इस कंपनी बाग में तुम मुझे पहली बार मिली थीं?

—हां, वह मिलाने वाली समा मुझे याद है,जैसे कल की बात हो.

—कल तो नहीं, उस मिलन के एक वर्ष बाद हमारा विवाह हुआ था, और अब छः वर्षों की तो हमारी हनी है.

मां ने बड़ी बच्ची को चूमा— बेशक कल नहीं था, किंतु मुझे तो वह गीत इस समय भी सुनायी दे रहा है, जिसे उस समय आपने जलसे में गाया था.

—बेशक कल नहीं था, किंतु तुम मुझे उसी रूप में नजर आ रही हो–जब कि नाटक में तुम लोक-स्वतंत्रता की देवी बनी थीं.

—और फिर पानी की बूंदें बरसी थीं.

—और नाटक समाप्त होने पर जब मैं तुम्हारे हॉस्टल तक पहुंचने गया था, रास्ते में आंधी के कारण आम हमारे ऊपर गिरते रहे थे.

—कितना मीठा था उनमें से एक आम, पहला आम जो हमने मिलकर चूसा था.

—कल ही तो था. . . मेरे मुंह में उस आम का स्वाद अब भी उसी तरह का है.

और उस आदमी ने दारे से कहा था— कंपनी बाग के बायीं ओर आम के झाड़ों के करीब.

और जब दारे ने आम के झाड़ों के समीप उन्हें उतारा तो उस समय उसने सुना— पत्नी पति से कह रही थी, कल नहीं, अब तो आज हो गया है.

दारे की आंखें उन बच्चों को देखती रहीं. वे आंख-मिचौनी खेल रहे थे. उन पति-पत्नी को देखती रहीं. (वे एक आम के पेड़ के साथ टेक लगाये बैठे थे) और उसके कानों में ये शब्द गूंज रहे थे. . . लोक-स्वतंत्रता की देवी. . . पहला आम. . .जो हमने मिल कर चूसा था.

पता नहीं कौन-सा आकर्षण उसे यहीं ठहरने के लिए बाध्य कर रहा था. उसे आटा लेने के लिए डिपो पर जाना था. वह यहां खड़े-खड़े सोच रहा था, डिपो पर कितनी भीड़ लग गयी होगी.

पर दारा वहीं खड़ा रहा. . . एक-दो बार उसने शराब पी थी, उस समय भी उसका अपने पर काबू नहीं रहा था. वह हैरान था कि परायी खुशी में भी किस तरह शराब का-सा नशा हो सकता है. और भूखे को तो कभी कोई नशा नहीं आता. अब भी दारा वहीं खड़ा था, मीठी-मीठी धूप में. अलसाकर अपने रिक्शे में ही उसकी आंख लग गयी.

—दारे आज तो तेरे विवाह की रात है. वह देखो 'सोहनी-महीवाल' चलचित्र की तस्वीर. कैसे दोनों प्रेम कर रहे हैं. ऐसे ही आज तुम अपनी नववधू से प्रेम करना. . . उस समय का प्रेम सच्चा होता था, तभी तो आज की इस युग की प्रेम-कहानियां लिखी जाती हैं, चलचित्र बनते हैं. आजकल तो हरेक चीज बनावटी है— नींद में ही वह बहुत दूर की सोचता रहा.

सारा दिन दारा रिक्शा के आगे जुता रहा. रात को कहीं अपनी नववधू के पास लौटा था.

एक किराये का कमरा था. एक गुलदस्ता था कागज के फूलों का. कमरे में दारा था—उसकी नववधू थी, दारे की मां थी, उसका बाप था, दो-चार मेहमान थे, रसोई थी, डिपो का आटा था, जो कि अभी फौरन दारे की मां लेकर आयी थी. नव-वधू को अकेला छोड़-

नवतेज सिंह : लेखन-कार्य इनके लिए नया नहीं, विरासत में मिला है. (पिता भी पंजाबी के वरिष्ठ लेखक रहे हैं) अब तक तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं. पंजाबी की सुप्रसिद्ध पत्रिका 'प्रीत लड़ी' के संपादक हैं.

कर दारे की मां डिपो पर आधा दिन इस आटे के लिए सर खपाती रही थी और अब गीली लकड़ियों के धुएं में कुढ़ रही थी. सर्दियों का मौसम था. ठंड हद से ज्यादा पड़ रही थी.

. . .दारे की सोहाग रात थी. चांदनी नहीं थी. चारों ओर धुआं ही धुआं था. सारी रात 'सोहनी महीवाल' चित्र का पोस्टर उसकी आंखों में घूमता रहा था. वह स्वप्न में पागलों की तरह हंसता रहा. कल ही उसकी पत्नी को ससुराल चला जाना था. फिर छः महीने के बाद कहीं उसे आना था. और दारा उसके रंगे होंठ देखा करेगा, पैसे लेते समय कभी-कभी पाशो की ऊंगलियां छू लिया करेगा, बस. . . उसकी अपनी पत्नी की अंगुलियों की पकड़ कैसी थी? उसने अपनी मां के अतिरिक्त केवल एक ही औरत की अंगुलियां छुई थी, और वह थी पाशो की अंगुलियां. . .

दारे को कंपकंपी-सी अनुभव हुई और उसकी नींद टूट गयी.

—रिक्शावाले भाई, जल्दी ही स्टेशन चलो,हमें गाड़ी पकड़नी है, वह जोड़ी अपने बच्चों समेत लौट रही थी. बच्चों ने दारे को पहचानते हुए कहा, यह तो वही रिक्शावाला है.

दारा स्टेशन की ओर जाने की बात सुन कर मन ही मन प्रसन्न हुआ, क्योंकि आटे का डिपो उधर ही था. दारे को भी जल्दी थी. वह जोर-जोर से पैडल मारने लगा, किंतु उसके कान उन दोनों की बातों की ओर लगे हुए थे.

—कल नहीं था. यह तो आज है.

—आम वैसे के वैसे ही हैं.

—ऐसी स्मृतियों के बाग सदा खिले रहें!

—लेकिन सब के पास ऐसी स्मृतियां नहीं.

—सब को ऐसी यादें नसीब हों.

दारा उन्हें स्टेशन पर उतार कर डिपो की ओर बढ़ गया. वहां पहले से ही भीड़ जमा थी. रिक्शा एक ओर खड़ा कर, बोरी निकाल-कर दारा कतार के अंतिम सिरे पर खड़ा हो गया. उसने खाली बोरी दबा कर पकड़ ली थी. उसका दिल पूछ रहा था. . . जिस धरती पर ऐसे बाग हैं, वहां ऐसे डिपो क्यों?. . .वहां यह पाशो क्यों?

. . .वहां दो होंठों के बीच नोट क्यों?

. . .वहां केवल तस्वीर में ही प्यार क्यों?

. . .वहां धुएं वाले कमरे में विवाह की पहली रात क्यों?

. . .कैसा युद्ध है, यह जिसके कारण बम बनते हैं, धुंध फैलती है, अन्न गायब हो जाता है. . .

डिपो पर खड़ी कतार धीरे-धीरे कम हो रही थी. दारे की पारी आने के पूर्व ही डिपो का आटा खत्म हो गया.

वह जब शाम को खाली बोरी लेकर लौटा. उस समय फिर धुंध में रास्ते गुम थे. □□□

(अनुवाद : तरनजीत)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्द की मछली • ओम गोस्वामी

हलकी-सी बूंदाबांदी हुई थी. सड़क का काला, धूमिल रंग निखर आया था. दलदल से निकला मानो अजगर लेटा था, काला-कलूटा, कीचड़-सना. फिसलन भरे गोले से हट कर उस तंग और बल खाती गली की ओर मुड़ते ही बदबू का भभका नासापुटों में घुस गया था. बदबू, जिसका संबंध गलियों के जाल वाली बस्ती में रहने वाले हर व्यक्ति से था. अजीब जाल था यह. प्रत्येक व्यक्ति के तालु में कांटा चुभा हुआ था और वह छटपटा रहा था. पर इससे भी अजीब बात यह है कि उनमें मुक्ति की चाह न थी. तंग गलियों से और-और तंग गलियां निकलतीं और सिकुड़ते-सिकुड़ते वे धागे की तरह बारीक हो आतीं. इन धागों के सिरों पर विवश आदमी टंके हुए थे.

मानस-चक्षुओं के सामने सड़क के मध्य चिथी हुई वह ज़िंदा लोथ घूमने लगी है, जिसके गिर्द राहगीरों का घेरा था.

. . . लहू की खाड़ी-सी बनी हुई थी. और वह दुर्भाग्यग्रस्त जहाज की तरह इसमें डूब रहा था.जिज्ञासावश जब मैं घेरे में दाखिल हुआ था,मेरे ख्वाब-खयालों में भी यह बात नहीं थी कि हादसे का शिकार वह आदमी होगा जो मेरा सुपरिचित है. आज से नहीं, वर्षों से.

दिन दहाड़े फटने से उसके मुंह-सिर पर टिंक्चर आयोडिन के फाहे चिपके रहते. हरे जख्मों के पीले-पीले दाग थे और उनसे कपास के सफेद रेशे— बिजली की तारों-से लटकते, मरे हुए चमगादड़ों की तरह झूलते रहते. फिल्मी खलनायकों-सा खतरनाक चेहरा था. अनजान व्यक्ति साहब के कमरे में दाखिल होने से पहले उसका चेहरा देख कर दहशतजदा हो जाता. बेखयाली में सांप की केंचुल दिखायी पड़ जाने जैसा भय.

मुझे उससे अपनत्व भरी सहानुभूति होने लगती. पर इसे मैंने कभी प्रकट न होने दिया, क्योंकि मैं नहीं चाहता दो सहानुभूति-परक शब्द निकलते ही किसीकी याचक आंखें मेरी जेबों की तलाशी लेने लगें. यह मेरी अपनी मजबूरी थी. मैं सोचा करता,नौकरी छूटने पर इसका क्या होगा? उस वक्त यह नौशादरी भट्ठी को छोड़ कर स्पिरिट और बहोशी के कैपसूलों के सस्ते नशों पर उतर आयेगा. तब यह पूरा-पूरा दिन बेहोशी के कुएं में बेजान लकड़ी की तरह पड़ा रहेगा. शारीरिक हरकतें रुक जाना चाहेंगी. इतना नाकारा, एक मानव अस्तित्व! सिर से पैरों तक ठंडे पसीने में डूबा हुआ. . .

बड़े साहब 'टेबल बेल' पर हाथ रखते हैं. एक गुंजायमान यांत्रिक चीत्कार. धर्मू हड़बड़ाहट में पैर साधता अंदर आता है. दहशत भरा प्रश्न-अंकित चेहरा हुक्म ले कर, बाहर से पानी ले जाने लगता है. गिलास को यत्न से पकड़ने पर भी ऊपर रखी प्लेट ठल. . . ठल ध्वनि करती कांप रही है. मैं हस्ताक्षर करवाने लायी फाइलें आगे सरकाता हूं. साहब ने आंखें धर्मू पर गड़ा रखी हैं. टक-टकी बंधी है. इस दुरूह पुस्तक को पढ़ना चाहता हूं साहब. धर्मू जिस्म तना कर खड़ा होने का प्रयास करता है. माथे पर पसीने के छोटे-छोटे कतरे उग आते हैं. नाचती प्लेट की ध्वनि बढ़ती है. ढीली वर्दी के अंदर शरीर का कांपना छिपता नहीं. साहब एक आंख दबा कर गिलास थाम लेते हैं.—समज गिया साब. धर्मू सलाम के लिए हाथ ऊपर उठाता है—जो नाक की चोंच से जा लगता है.—अब फीर लाक में दर्द हौता साब? साहब के समतल माथे पर उभरी ऊबड़-खाबड़ लकीरें धर्मू को वरज देती हैं. चेहरे की भंगिमाओं की गुफ्तगू अधूरे प्रसंगों पर असमंजस का कोहरा जमा देती हैं. नजर चुराता धर्मू कमरे से बाहर हो गया है. साहब उसके कदमों की आखरी आहट तक दरवाजे पर हिलते परदे की ओर देखते रहते हैं. द्वंद्वयुक्त एकाग्रता के टूटते ही साहब मुझे आंखों से तौलते हैं. . . —सफाई यह देता है कि मुझे हाथ कांपने की बीमारी है.डाक्टर ने पौआ पीने की सिफारिश कर रखी है. जानता हूं यह सिर्फ बहानेबाजी है. पर इसलिए कुछ नहीं कहता कि समझाने पर भी शराब से कोताही तो करनी नहीं इसे. ऐसे लोग बेवक्त की मौत मरते हैं. एक्शन लूं तो यह चार रोज पहले ही मर जायेगा.उस हालत में सजा इसकी औरत और बच्चों को मिलेगी. दिलचस्पी न होते हुए भी, साहब के उदार भावों की कद्रदानी में मैं अपनी गरदन हिलाता रहा. अनमांगे स्पष्टीकरण से जाहिर हो चला था कि इशारों और अधूरे वाक्यों में कोई महत्वपूर्ण संदर्भ छिपा पड़ा था.

बेहोश और लहू में तरबतर शरीर के चौगिर्द खड़े मेले में प्रत्येक चेहरा 'साहब' से मिलने-जुलने लगा है. साहब अपनी भविष्यवाणी के पूरा उतरने पर एक कसैली मुसकान भर रहे हैं.—मैं न कहता था?

—अरे! यह आदमी घड़ी भर पहले 'रसमंजरी' पर एक लखपति से झगड़ रहा था! एक अपरिचित चेहरे ने गिरे हुए जिस्म को तीखी नजरों से देखते हुए कहा.

—किस लखपति से?

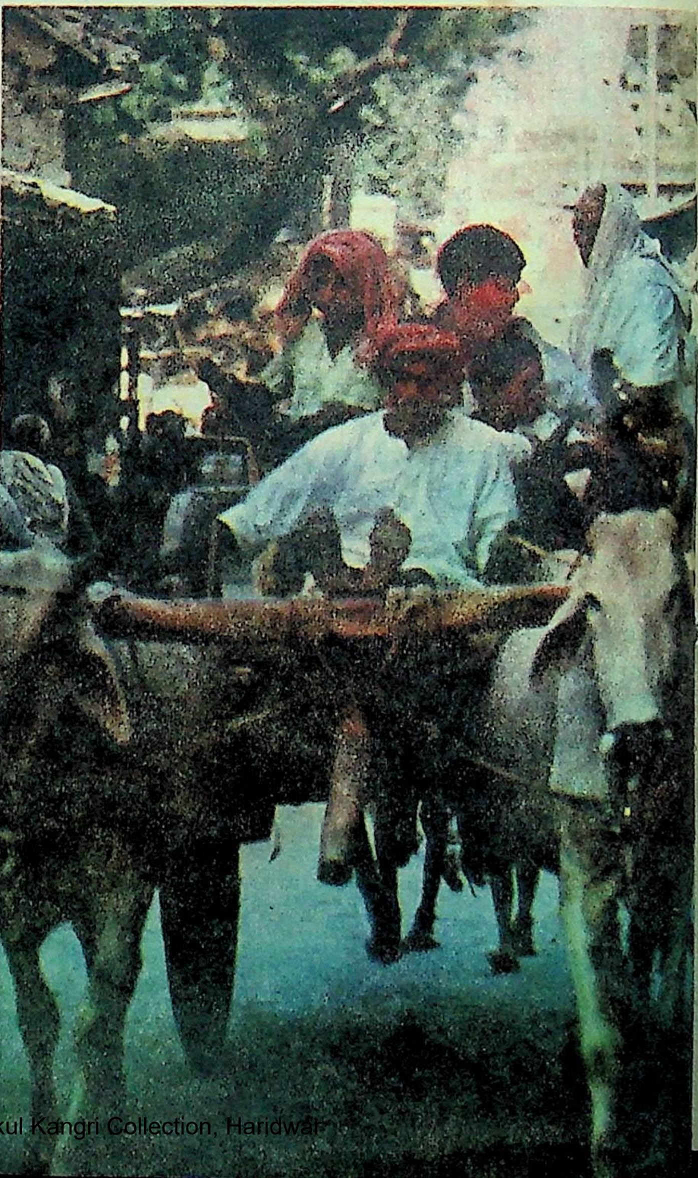

एस. के. उपाध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—घसीटाराम शाह से.

—उसीकी कार तो गिरा कर नहीं चली गयी?

—सुना है कोई ट्रक-ड्राइवर था.

—घसीटाराम से झगड़ा किस बात पर हुआ?

—उसने व्हिस्की और अनन्नास-रस के डिब्बे खरीदे थे. पैसे चुकाने लगा कि इसने फुर्ती से सौ का नोट झपट लिया. ऊपर से सीनाजोरी देखो कि डट कर खड़ा हो गया. एक इंच भी हिला नहीं.

—भागता कैसे? पी रखी थी.

—कहने लगा, तुम लोग कारों में घूमते हो. शराब में फलों का रस मिला कर पीते हो, चलो, देखो, मेरे घर में बच्चे भूखे मर रहे हैं.

—अब ऐसा ही हुआ करेगा, भाई! जिंदा रहने के लिए हक छीन कर लेना होगा. एक दाढ़ी वाले व्यक्ति ने गहरी शिनाख्त करते हुए कहा—सांसें चल रही हैं, लेकिन बचेगा नहीं.

—कोई आदमी इसे अस्पताल क्यों नहीं पहुंचाता? मैंने उनकी मनुष्यता को लानत भेजते हुए पूछा.—अगर आप लोग इस हादसे का शिकार हुए होते?...

दो व्यक्तियों ने तुरंत अपनी जाग्रत चेतना को उछाला. एक ने कहा— जो थाने में खबर पहुंचाने जायेगा, उसीको वे बदबूदार कोठरी के एक कोने में बिठा देंगे. दूसरे ने मनुष्यता की सतह से ही पूछा—आप स्वयं ही क्यों नहीं यह नेक काम करते? पहले वाला कह रहा था—कौन फालतू मुसीबतें गले लगाये! आवाज में जो तल्खी है, वह अनुभव के बाद ही आती है.—इसे अस्पताल पहुंचाने जाओगे तो भी पुलिस आपको ही बांधेगी. अपने बीस काम छोड़ कर पड़े रहो थाने और कचहरी के चक्कर में. . कौन भड़भूंजा आपको अक्लमंद कहेगा. . ? इस बात पर एकाएक बहुत-से लोग मजमे से खिसकने लगे. मैं भी धर्मू से परे जाने लगा तो मन को तसल्ली दी कि जिस धर्मू के प्रति तेरे परिचय की जवाबदारी थी, वह छुटपन वाला क्लास-मॉनीटर था—यह वाला शराब पर न्योछावर व्यक्ति नहीं. जब भी मन किसी कटु सत्य का सामना नहीं कर पाता तब बुद्धि कुछ बेपर की गढ़ कर प्रत्येक कर्तव्य से सुर्खरू हो लेती है. परिचय कच्चे सूत की तरह छोटी-छोटी बातों पर टूटता रहता है.

* *

धर्मू कभी बीते दिनों की याद कराता तो मेरा सिर शर्म से जमीन में गड़ने लगता. ऐसे व्यक्ति का हम-जमाती होना लोगों के लिए क्या मायने रखेगा, यह सोच कर ही तमाम कुंठाएं मेरे आस-पास सिमट आतीं. उन दिनों धर्मू स्कूल का सबसे लड़ाकू लड़का था. नेता की तसवीर मात्र से प्रभावित होने वाले मुझ जैसे लड़के वैसे ही उससे खौफजदा रहते.

वह मेरे बचपन की स्मृतियों में रावण की तरह खलनायक बन बैठा है. मेरे संस्कार उसके अस्तित्व को अनदेखा नहीं कर पाते. लाख नकारों के बाद भी भावनाएं कहीं अवांछित व्यक्ति से अवश्य जुड़ी रहती हैं.

यदि साहब जैसे कारोबारी व्यक्ति को उसके बीवी-बच्चों पर रहम आ सकता है, तो क्या मैं ही इतना गया गुजरा हूं कि उसके घर वालों को इसकी खबर तक न दूं! वहां कानून के यांत्रिक जबड़ों का भय नहीं. यही सोच कर मैं उसके घर की ओर चला था.

उससे संबद्ध प्रत्येक बात को मैं अंधेरे में पड़ा रहने देना चाहता हूं ताकि उस हौलनाक पसमंजर पर सिर तोड़ती स्मृतियों की लहरें तकलीफ का कारण न बनें. लेकिन सर्पिल गली के उस मोड़ पर बदबू की लहर पर सवार वह पुनः मेरे अंग-संग चला आता है. दफ्तर में भी जब कभी खाली वक्त में वह मेरे पास आता तो ऐसी ही दुर्गंध उसके अस्तित्व से हवा में झरने लगती.

—पता नहीं तू किस बदबू की बात करता है! यहां इतनी बड़ी बस्ती के निवासियों में किसीको भी मैंने बदबू की बात करते नहीं सुना! वह कहता.

मेरे मस्तिष्क में कील-सी धंसने लगी है. जैसे-जैसे आगे बढ़ो, चुभन असह्य होती जाती है.

—एक वह भी दिन थे. ये भी दिन हैं. . .वह मेरे साथ बैठ कर अपने स्कूल के दिनों की याद ताजा करना चाहता. पर मैं अपनी ही चिंता में खोया हुआ कहता—यदि कभी इस शहर में प्लेग पड़ी तो सबसे पहले इस बस्ती से उसकी शुरुआत होगी. . .

जब वह नशे में धुत हो कर दफ्तर में ही ढह गया था, तब पहली दफा उसके घर आया था. मजदूरों ने स्ट्रेचर उठा रखा था. दूसरा चपरासी घर का रास्ता दिखाता आगे-आगे चल रहा था. उस दिन गली में इतनी दुर्गंध महसूस नहीं हुई थी. संभवतः वह धर्मू के अंदर से फूटती, सड़ी हुई बदबू के नीचे दब गयी थी.

आज नालियों में कूड़ा, कीचड़ तीखी दुर्गंध छोड़ रहा है. डीजल की तरह गाढ़े पानी में बुलबुले फटते हैं—जैसे सड़े अंडों की बदबू हवा में घुल जाती है. उस स्थान पर जहां नाली के किनारों के पत्थर टूट गये हैं—और जहां कच्ची नाली शुरू होती है—गंदे पानी का ठहराव तालाब की शक्ल अख्तियार करने लगा है. वहां सफेद बत्तखें तैर रही हैं. छोकरे-छोकरियां उनके पीछे छपाक्-छपाक् करते दौड़ रहे हैं. बनने से ले कर आज तक उनकी कमीजें धोयी नहीं गयीं. बनाते वक्त उन्हें कफ, काज या बटन भी नहीं लगाये. जिस्म पर जहां कहीं कीचड़ सूखता है, वहीं राख की रंगत उभर आती है. छोटे-छोटे बच्चे पिंडलियां, बगलें, शिश्न, बाहें खुजलाये जा रहे हैं. चमड़ी से बुरादे-सा कुछ उतरता है. दुर्गंधयुक्त दलदल को अनेक छोटे-छोटे पैर मथ रहे हैं. किसी-किसीके हाथ में गोल की हुई रोटी का टुकड़ा है. इनमें धर्मू के बच्चे भी होंगे, सोचता हूं, अब वे दलदल से निकल कर असमय रस्सी कंधे पर धरे मजदूरी के लिए सड़कों पर दरबदर होंगे. मेरी सूचना इनके भाग्य की पुश्त ही पलट देगी.

चाहता हूं इन्हें हाइजीन की बिना पर रोकूं. पर क्या मैं जो कुछ कहूंगा, वह इनकी समझ में आ जायेगा? अब नियति को बदलने का कौन-सा साधन है मेरे पास? मैं स्वयं क्षुद्र हूं.

कीचड़ की मछलियों को जिंदगी भर अपनी छोटी-छोटी वेदनाओं के संग, सुविधा भोगी लोगों के दस्तरखानों पर कांटों से बिंधना है. इससे छुटकारा नहीं. पर क्यों? जरूर कहीं गड़बड़ है. जाल में फंसी मछलियों के लिए मेरे पास मुक्ति की कोई युक्ति नहीं. फिर भी मैं चला आया हूं—हादसे की खबर देने!

बिना संदर्भ की गंभीरता को समझे मैं कितनी मनहूस मुहिम पर चढ़ आया हूं! पर इतनी दूर आ कर दिमाग पर वही बोझ लादे वापस लौटना और भी दुःसाध्य होगा. सोचता हूं नाली में खेल रहे लड़के इधर देखें तो हादसे की खबर दे कर पीछे लौट जाऊं. थोड़ा आगे कुछ बड़े लड़के नाली में से ढूंढ़ कर कुछ निकाल रहे हैं. गंदगी के कीड़ों के अलावा और क्या होगा यहां? उनकी तत्परता जाने किस चीज के लिए है?

पास आने पर देखता हूं, ठोस-ठोस वस्तुएं निकाल कर बाहर रख रहे हैं. कंकड़, जंग लगी कीलें, तारें, कांच की किरचें, बिल्लौरें, चमड़े, तांबे और पीतल के टुकड़े. सभी ढेरियां अलग पड़ी हैं. सोचता हूं इन्हें बेखटके खबर दी जा सकती है. मेरे सफेद-सुर्ख कपड़े भी लड़कों का ध्यान अपनी ओर नहीं खींच पा रहे. प्रसंग से जुड़ने के लिए कुछ देर मैं हैरानी से उनके माहौल में खड़ा रहता हूं. फिर पूछता हूं—कुछ खो गया है?

उनकी व्यंग्यमयी नजरों की ताब लाना कठिन हो जाता है.

—हां, मेहरबान! चांदी का चम्मच था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

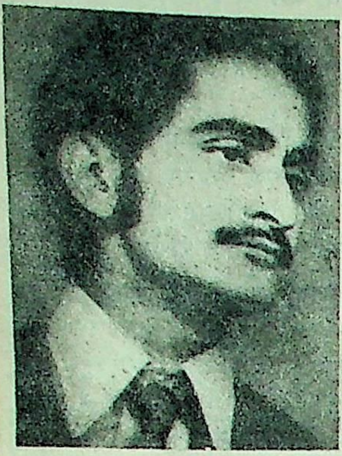

ओम गोस्वामी (जन्म : १९४८) की डोगरी में अनेक कहानियां छप चुकी हैं. इन्होंने हिंदी की नयी कहानी का विशेष अध्ययन किया है. इन्हें स्वतंत्रता और समानता के खोखले नारों में विश्वास नहीं है क्योंकि इनके अनुसार स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी आम हिंदुस्तानी दिमागी तौर पर गुलाम है, इन्हें डोगरी का युवा विद्रोही लेखक माना जाता है.

—कहां गिरा था? सोचता हूं यदि यहां होता तो जरूर निकल आया होता.

—यह राज क्यों पूछ रहे हो? तुम्हारा इरादा भी निकालने का तो नहीं? बड़े गुस्ताख लड़के हैं. शायद इस गंदगी के टब में रह कर इनका चिंतन भी दूषित हो चला है. बिजली जैसे एक ही झटके में दोबारा हाथ न लगाने के लिए खबरदार करदे, बेवजह अपमानित हो कर मैं वहां से खिसक आता हूं. बुद्धि तर्क रखती है—यह इनका नहीं अशिक्षा का दोष है. लेकिन मन कहता है—लंगड़ी दलीलें न दिया कर. पढ़े-लिखे लड़के हुल्लड़ करें तो वह शिक्षा के कारण. अपढ़ करें तो अशिक्षा. . .

अब स्वयं खबर पहुंचाने के अतिरिक्त और चारा नहीं.

★ ★

मैं चिर परिचित कोठरी के भीतर चला आया हूं. धर्मू के पिता पहचाने नहीं जाते. बड़े दुबले हो गये हैं. जिस्म से सिकड़ी-सी उतर रही है. मुझे वह निरीह आंखों से देखते हैं. अपरिचित को अपने छप्पर के नीचे देख कर उनका कुछ न बोलना मुझे खलने लगता है. स्थिर आंखों का खालीपन मानो सारे कमरे में व्याप गया है. बात शुरू कैसे की जाये? उम्र की अंतिम सीढ़ी पर बैठे व्यक्ति को कैसे कहा जाये कि उसका बेटा गाड़ी के नीचे आ गया था. . .?

मुझे तसल्ली होती है कि इस अंधियारे कमरे में वह दुर्घटना की खबर सुनाने वाले की सूरत अच्छी तरह न देख सकेगा.

पता नहीं क्योंकर दिन दोपहरी, इस कुटिया में अंधियारा पसरा पड़ा है? अंधेरे से अभ्यस्त होने के लिए कुछ समय लगता है—आंखें चारों ओर कमरे के आयाम तलाशती घूमती रहती हैं. जैसे एक अतल कुआं है, जहां कुछ सुझायी नहीं देता.

सहसा बाहर से आवाज आयी—'बाबा! कोई चार किलो शीशियां और दो किलो कीलें हो गये हैं. डेढ़ रुपये की तार हो गयी है. तांबे की तारों की मैंने खील लेली थी, खोमचे वाले से. मैं जा कर बेच आऊं? बूढ़ा उत्तर नहीं देता पर मेरा जेहन बाहर की आवाज को तुरंत पहचान लेता है. वही कड़वी तीखी आवाज वाला लड़का, जिसने बिना उम्र या रुतबे का लिहाज किये क्षण भर में तमाम औपचारिकताओं का फासला बराबर कर डाला था.

—बोल नहीं रहे. नशा खत्म हो गया है क्या? लड़का अंदर आ कर खिड़की खोल देता है. बूढ़ा रोशनी की ओर देखता है—जैसे युगों की बैरिन हो! रोशनी की कुछ किरणें दीवार पर टंगी ग्रुप फोटो पर पड़ रही हैं, पांचवें दरजे की यादगार है यह. वर्षों से जमी धूल ने चेहरों को धुंधला कर डाला है. लगता है कुछ चेहरों से धर्मू बराबर धूल हटाता रहा है. तभी उनकी पहचान कठिन नहीं. नीचे वाली पंक्ति में मैं और ऊपर वाली में धर्मू खड़ा है. मेरी आंखों के सामने वो मंजर चला आता है जब स्कूल में कोई नेता भाषण देने आये थे. भाषण के बाद उन्होंने धर्मू को खादी भंडार के कपड़ों का जोड़ा और गांधी टोपी दी थी. यह भी ताकीद की थी सभी लड़कों को उससे बराबरी का व्यवहार करना चाहिए. उस समय मन में आया था कहूं—आप ही इससे कहिए कि दूसरों के साथ मार-पिटाई न किया करे.

उनके जाने के बाद फारम मास्टर ने समझाया था, हरिजनों का सप्ताह मनाया जा रहा है. धर्मू हरिजन है, यह सुन कर उसमें मेरी श्रद्धा-सी बन गयी थी. मैंने उससे पूछा था—तू हरिजन है—यह कितनी अच्छी बात है, फिर तू दूसरे लड़कों पर रौब क्यों डाला करता है? उत्तर में उसने कस कर एक तमाचा मेरे गाल पर जड़ दिया था. बोला—बड़े हिंदू के बच्चे! एक बार हरिजन कहा है, दोबारा कहा तो गटर में डाल आऊंगा.

मैं रोने को हो आया था. सोचता रहा, मुझसे क्या भूल हुई है. हरिजन, मतलब परमात्मा का जन—पर इसे उसने गाली के समतुल्य क्यों समझा है. मास्टरजी ने उस सप्ताह के लिए धर्मू को क्लास मॉनीटर नियुक्त किया था. फिर वह पूरा वर्ष जबरी मॉनीटर बना रहा. वही धर्मू खादी भंडार के नये कपड़े पहन कर नाली में उतर गया है. लकड़ी का एक अनघड़ तोंदा किनारे से फिसलता-फिसलता उसपर आ पड़ा है. लकड़ी भारी भरकम वाहन में बदल गयी है. मौत के पास कारण नहीं होता, बहाना होता है—बड़ा लचर बहाना! धर्मू अचेत पड़ा है. फटी रगों से लहू नहीं काला कीचड़ बह रहा है. मैं कांप उठता हूं. स्वप्न-तंद्रा टूटती है. हर चीज अपनी जगह ठहरी हुई है.

—ले आना रत्ती भर. काफी देर बाद बूढ़ा बोलता है. स्वर ऐसे हैं जैसे जीभ को लकवा पड़ा हो. उसे कंपकंपी छूटी हुई है.

—बड़े चालाक! चार किलो शीशियां और दो किलो कील! सवा दो रुपये नहीं बने? एक स्त्रैण स्वर कुटिया के साथ वाले दरवाजे से निकला. लड़के ने भौंचक हो मेरी ओर देखा. वह थोड़ा-सा झुकता है. फिर दहलीज के पास चला जाता है—हां, भराविये! पर मांझे वाला सवा किलो का एक किलो तौल लेता है. मैं क्या करूं, लुहार भी कुछ पल्ले नहीं डालता. पत्तियों के अच्छे दाम मिल जाते थे पर आजकल उन्हें कोई कूड़े में फेंकता ही नहीं.

—चुप करके नमक आटा ले आना नासपिटे! बहाने बड़े बनाता है. रात मुझसे मोहन भोग न मांगना.

—और बाबे की अफीम?

—मरे! ऐसा करना, ज्यादा ले आना. सभी फांक लेंगे?

—मैं जरा देर से आ पाऊंगा. नयी फिल्म लगी है. चार टिकटें निकल गयीं तो दाल की जुगाड़ हो जायेगी.

वो चला जाता है. पर वह बड़बड़ाती रहती है—मेरे भाग फूट गये इनसे माथा लगा कर. घड़ी भर में बंदर सेना रोटी के लिए चिल्लायेगी. अंदर आटे की एक छटांक नहीं. वह शराबी जाने किस भट्टी पर ओक लगाये बैठा होगा. नौकरी छूटेगी तो मुझे साब के सामने थाली बना कर हाजिर करेगा. . . बेईमान मर्द. . .

—रांड, अभी तेरा वो यार गया कि नहीं? बूढ़ा जैसे किसी यंत्र में कसा जा कर बोल रहा हो.

—तेरे हाथ जोड़ती हूं, बूढ़े! धीरे बोल, सैनटरी साब ने सुन लिया तो नाराज होगा.

—शक्ल न दिखाया करे. कहदे मैन के यार से. हलवाइयों, ठेलेवालों से मुफ्तखोरी करके खाते हैं और मांस भी बिना दाम नोंचने चले आते हैं—हरामखोर! बाप का सरमाया समझ रखा है सालों ने. . . बूढ़ा हांफता है. वह और कितना बोल पायेगा इसका अनुमान करता मैं कोठरी के गुम कोनों में किसी अन्य वजूद की तलाश करता हूं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—कौन मुफ्तखोरी करता है? पंदरा-पंदरा रोज डियूटी पर न जाओ तो नौकरी क्या बहाल रहेगी? इलाके की पूरी गंदगी दूसरे लोगों से उठवाता है. किसके लिए? क्या मेरे बाप के टके देने हैं उसने. महीने में एक बार खुस कर देती हूं. . . उसका भी पीठ-दर्द हट जाता है. क्या बुरा होता है?

—जबान दराजी न कर रांड. . . बूढ़ा रोशनी की ओर देख कर चिल्लाता है. पर आवाज कच्चे सूत की तरह अधबीच ही टूट जाती है. गुस्से में उसके दांत कटकटाने लगते हैं.

साथ की खोली से एक मर्दाना आवाज गूंजती है—नसीबो, मैं जा रहा हूं. सुबह झाड़ू लगाओगी तो हाजरी लगेगी. कदमों की चाप उठती है और परे-परे जाने लगती है. . .

—सुन तो सैनटरी बाबू! वह कहती है. . . कांपता हुआ सन्नाटा. . . मोटर साईकल स्टार्ट होती है. —तू जहां कहेगा, मैं आ जाऊंगी बाबू. अब गुस्सा थूक दे. . . मोटर साईकल का फटा हुआ शोर निरंतर दूर-दूर होने लगा है.

मेरी मौजूदगी से बेखबर बूढ़ा अपने आप में कुछ भुनभुनाये जा रहा है. अचानक वह दहलीज के निकट चली आती है. देखता हूं, निचुड़ा हुआ निःसत्व चेहरा, जिस पर केवल एक जोड़ी आंखों की सत्ता निःशेष है. . .

आंखें. . . प्रश्न. . . निमंत्रण.

—इन बाबूजी से निपट ले. बूढ़ा बड़े कारोबारी लहजे में नसीबो को हुक्म देता है.

मैं कहना चाहता हूं कुछ. लेकिन दहलीज के परे, नसीबो के पीछे उभरे चेहरे को देख कर चौंक उठता हूं. वह भी झेंप जाता है. निरर्थक मुस्कान उसके होंठों पर उतर आयी है. —क्या आपको भी पीठ-दर्द का रोग लग गया मिस्टर? वह कहता है—मुझे तो खोखला कर दिया रेंगते दर्द ने.

नसीबो पीछे देखती है. अब मेरा खबर देना जरूरी हो गया है—धर्मू का एक्सिडेंट हो गया है. बूढ़े पर असर देखने के लिए मैं शब्दों को तोड़-तोड़ कर बोलता हूं. बूढ़ा निडोल आंखों से गोबर लिपी धरती देख जा रहा है. बड़ी देर तक मैं उसके कुछ बोलने की प्रतीक्षा में रहता हूं. पर वह अझिप आखों को जमीन पर गढ़ाये रखता है. मच्छर कब से मेरे कानों के गिर्द 'रिट्रीट-वादन' कर रहे हैं. अब और बठना कठिन हो चला है. बूढ़े के किसी दुविधा से बाहिर आने तक की प्रतीक्षा है. एक मच्छर बूढ़े की पांडुरोग का दिखावा करती नग्न बांह पर आ बैठा है. मैं इंतजार करता हूं कब वह इस लहू के प्यासे को हाथ मार कर खत्म करेगा. पर वह मच्छर का पेट लहू से फूलते देखता रहता है. मच्छर उड़ गया है—एक कतरा खून ले कर. मेरी हथेलियों में तिलमिलाहट होने लगी है.अब तक धर्मू के शरीर से खून की आखरी बूंद भी बह कर सड़क के होंठों पर पपड़ी बन जम चुकी होगी?

बूढ़े का शरीर डगडग कांप रहा है. सीलन भरी गुदड़ी उसने लपेट ली है. शीत से जैसे ठिठुर रहा हो. उसके दांत बज रहे हैं. मुंह से सी-सी निकल रही है. पर मुझसे कमरे की उमस अब सही नहीं जा रही. बड़ी गर्मी है. उसके होंठों की कोरों में फेन इकट्ठी होने लगी है.

—रांड, जा अफीम ला दे! वो व्लेकिया जाने कब वापिस मरेगा. नसीबो उत्तर नहीं देती. बूढ़ा रोने लगता है. . . रोता है. . दहाड़ें मारता है. उत्तर आने तक काफी अंतराल पसर चुका है.

—एक वो गाड़ी के नीचे आ मरा. अब तू मरे या मैं मर जाऊं. बच्चों की तरह रो रहा है. . . घर में रोटी नहीं है. . . बता, तेरे नसे के लिए रुपये कहां से लाऊं. . .

—रांड, जल्दी कर, निपट ले उन सेठजी से.

मुझे लगता है एक पल भी और मैं यहां ठहरा तो कोठरी की कांपती दीवारें मुझ पर गिर पड़ेंगी. मैं तेजी से बाहर निकल आता हूं. नसीबो उस व्यक्ति के साथ खोली के भीतर चली जाती है.

—उस दिन आया था उस नामुराद को स्ट्रेचर पर डलवा कर. आज उसकी मौत की खबर ही ले आया. नसीबो का स्वर मेरा पीछा करता है.

इस बस्ती से जितनी जल्दी हो मैं बाहर चला जाना चाहता हूं. पर दर्द से बिंधी मछलियों की मौन वेदना मेरे हर कदम पर अंकुश लगा रही है. □□□

१८१, पहाड़ियां स्ट्रीट, जम्मू तवी.

सारिका के वरिष्ठ सहयोगी को विदाई

इस अंक से 'सारिका परिवार' के वरिष्ठ सदस्य श्री नरेंद्र मालवीय सेवा-निवृत्त हो रहे हैं. मालवीयजी बचपन से ही हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य करते रहे हैं. इनके पत्रकार-जीवन का विधिवत प्रारंभ बनारस से प्रकाशित होने वाले 'आज' दैनिक से हुआ था. उस समय मालवीयजी पराड़कर जी के सहयोगी थे. पराड़कर जी से इन्होंने हिंदी पत्रकारिता के विषय में बहुत कुछ सीखा. वहीं इनमें भाषा की शुद्धता के प्रति मोह पैदा हुआ, जो अभी तक बना हुआ है.

बनारस छोड़ने के बाद मालवीयजी ने पंजाब, दिल्ली और मध्य प्रदेश के पत्रों में कार्य किया. आप पिछले २३ वर्षों से टाइम्स आफ इंडिया बंबई के हिंदी प्रकाशनों से संबद्ध थे. कई वर्षों तक आप 'नवभारत टाइम्स' के संपादकीय विभाग में रहे. जब बच्चों की पत्रिका 'पराग' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ तब मालवीयजी को वरिष्ठतम सहयोगी के रूप में उससे संबद्ध कर दिया गया. और गत १४ वर्षों से आप 'सारिका परिवार' के सदस्य थे. 'सारिका' ने अब तक वैचारिक स्तर पर कई मोड़ पार किये हैं और मालवीयजी हर मोड़ पर उसके साथ पूरी तरह जुड़े रहे हैं. हिंदी पत्रकारिता की सेवा इन्होंने जिस लगन, ईमानदारी और मेहनत से की हैं वह निश्चय ही सराहनीय है.

गत माह सारिका परिवार ने अपने साथी को भाव-भीनी विदाई दी. उस समय पर नवभारत टाइम्स के इनके कुछ साथी भी उपस्थित थे. सभी ने मालवीयजी के प्रति शुभकामनाएं प्रकट कीं और आशा की कि सेवा-निवृत्त होने के बाद भी एक स्वतंत्र पत्रकार के रूप में वह हमें अपना विशिष्ट सहयोग देते रहेंगे.

सारिका परिवार के सदस्य—बायीं ओर से—सर्वश्री सुबोध, श्रीनाथ पांडेय, आनंदप्रकाश सिंह, कमलेश्वर जी, मालवीय जी, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के और अवधनारायण मुद्गल.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी तलाश

• अभिमन्यु अनत

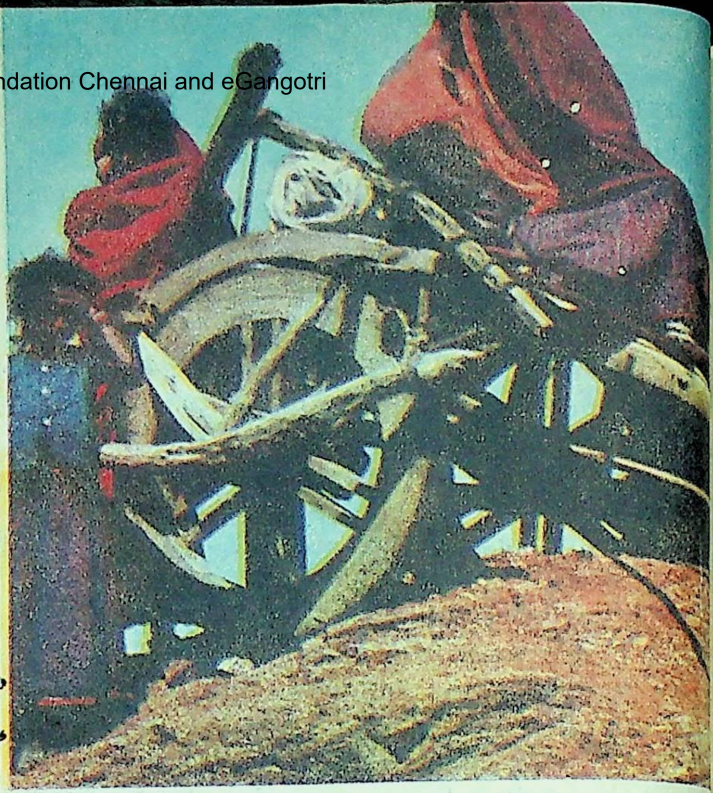

• छा. गोस्वामी

सूरज झिलमिला रहा था उसके सांवले शरीर के ऊपर. वह हेमंत की शांत सुबह थी और सूरज के ताप में वह शक्ति नहीं थी जिससे त्वचा जलती-सी प्रतीत होने लगे. गरमी जो ऊपर नहीं थी, वह उसके भीतर थी. ऊपर की हल्की गरमी में सुख का अनुभव था जबकि भीतर की गंरमी उसे भीतर ही भीतर झुलसती जा रही थी. अपनी मुट्ठी की बालू के कणों को जोर से दबाते हुए वह उन्हें नीचे बिखेरने को मजबूर कर रहा था. उस काली चट्टान पर शांत बैठा हुआ वह समुद्र की प्रवालरेखा की ओर एक टक देख रहा था जहां ज्वारभाटा प्रलयंकर था. वहां की उफनती लहरों को वह अपने भीतर महसूस रहा था. उसकी आंखें कुछ भी नहीं देख रही थीं. वह जो कुछ भी देख रहा था, अपने खयालों से देख रहा था. वह जानता था कि शाम तक अगर उसकी धमनियों की उष्णता कम न हुई तो रात को सर के असह्य दर्द से वह झपकियां तक नहीं ले सकेगा. सुहानी किरणों के सुहाने ताप से उसकी पलकों में शिथिलता-सी आने लगी थी पर उसके खयालों की सक्रियता बनी रही.

समुद्र तट सुहाना था. वह केवल लहरों के कराहने की आवाज थी जो सन्नाटे को खंडित किये जा रही थी. चांदी की तरह चमचम करती बालू पर कोई भी तैरने के हलके कपड़ों में नहीं था. वह भलीभांति जानता था कि तैरने के लिए अभी कुछ सबेरा था पर उसके अपने भीतर के जो भाव थे, वे समय से पहले पैदा हो गये थे. विद्रोही लहरें उसके पैरों तक पहुंची थीं. वह पानी भी उसके भीतर के पानी को धो न सका. वह बैठा रहा.

पीछे चंद कदमों पर जो होटल था, वह इस वक्त लगभग खाली था. दो कमरों में केवल जापानी मछुए टिके हुए थे. उनके शरीर से कभी न मिटने वाली बिसाइन गंध से समूचा शरीर समुद्री गंध का था. तीन दिन पहले होटल में भारी रौनक थी. उस समय बंदरगाह में अंग्रेजी लड़ाकू जहाज का लंगर था. होटल के सभी कमरे नाविकों से भरे हुए थे. सभी के साथ (उन्हीं के शब्दों में) मनोरंजन का कोई-न-कोई साधन था. वे लोलुप नाविक कोई चालीस-पचास दिन बाद जमीन पर पहुंचे थे और जमीन पर पहुंच कर अपने को जमीन की चीजों से अलग बनाये रखना उनके लिए बेवकूफी होती इसलिए उन्हें अपनी शक्ति, पैसे और स्वास्थ्य की बहुत कम परवाह थी.

उन शारीरिक लावण्य वाली औरतों के लिए भी इन अवसरों को चूक जाना पछतावे की बात हो जाती इसलिए उन नाविकों को इस सुंदर द्वीप में अकेले भटकने को उन्होंने नहीं छोड़ा था. एमिल का बाप कोई तीन वर्ष से इस होटल का रसोईया था. तीन वर्ष से एमिल इस होटल के कमरों को झाड़ देता आ रहा था लेकिन इधर कुछ महीनों से उसने अपने को भी अन्य मर्दों की तरह मर्द महसूस किया था. इस होटल में उसने तरह-तरह के लोगों को टिकते देखा था. वे धनीमानी लोग भी यहां टिक जाते थे जिन्हें कमरे की कीमत अधिक देना गवारा नहीं था. एमिल यह भी जानता था कि इस होटल में टिकने वाले रजिस्टर पर कभी भी अपने असली नाम और पते नहीं लिख जाते. इसका कारण जब उसने अपने आपसे पूछा था, तभी उसके भीतर अजीब-सी जिज्ञासा जगी थी. उस समय उसकी उम्र कच्ची थी, फिर भी होटल के एक विशेष ग्राहक को हर बार एक नयी औरत के साथ पहुंच कर होटल के किसी कमरे में तीन-चार घंटे बिता कर जाते देख उसने अपने आपसे कई तरह के प्रश्न किये थे. लेकिन उन प्रश्नों का धुंधला-सा उत्तर उसे उस वक्त मिला था जब कि एक कमरे के हार्डबोर्ड की दीवार में उसने छोटे-से कीले से एक छोटा-सा छेद बना दिया था.

उसके सामने अथाह सागर था. उस खुले हुए माहौल में भी अपने को चार दीवारों के बीच से एक छिद्र के द्वारा तीन दिन पहले के उसी दृश्य को देखता हुआ पा रहा था जिसकी उष्णता से उसका बदन अब भी झुलस रहा था. कुछ दूरी पर तीन बच्चे रेत पर रेत से घिरौंदे बना रहे थे. एमिल अपने भीतर के खयालों पर खयालों से खयाल पैदा कर रहा था. होटल के इस उष्ण वातावरण से ऊब कर कई बार वह नौकरी की तलाश में शहर की सड़कों पर निकल पड़ा था.

वह चुनाव का मौसम था. राजनीति की सरगर्मी थी. बरसाती मेंढ़कों का बोलबाला था. हर ठौर पर लाऊड स्पीकरों से आती हुई बिन शब्दों की अस्पष्ट आवाजें थीं.

वह आवाज अब भी उसके कानों में बज रही थी.

—बहुत सारी नौकरियां! सभी के लिए नौकरी! सभी बेकारों को नौकरी मिलेगी! शीघ्र मिलेगी! नौकरी! नौकरी!! नौकरी ! ! !

एमिल की नौकरी नहीं थी. नौकरी की तरह वह जो कुछ करता था, वह दिन भर में आठ आने की कीमत भर ही थी. दूसरे शब्दों में, वह अपने बाप के कामों में हाथ बंटा दिया करता था. होटल का मालिक जब कुछ अधिक खुश होता तो अठन्नी की बजाय हथेली पर रुपया रख देता. बेकारों की सूची में उसके नाम लिखवाये महीने होने को आये थे. शीघ्र ही मिलने वाली नौकरी अपनी सभी रफ्तार के साथ दौड़ कर पहुंचने के प्रयास में खुदगर्जी की दीवार से टकरा गयी थी. एमिल ने तो ऐसा ही सोचा था. वह पढ़ा-लिखा नहीं था मगर कभी-कभार परिस्थिति उसे बहुत कुछ सोचने को विवश कर जाती है. यही कारण था कि एमिल भी कभी-कभी लंबी-चौड़ी बात सोच जाया करता था. अपने भीतर की अकुलाहट को अपने आप में दबाये हुए वह होटल को लौट आया. नंगे डांसिंग हाल में उसने होसेन को तन्हा बैठे पाया. उसका सिर झुका हुआ था और दोनों हाथों की अंगुलियां परस्पर सक्रिय थीं. एमिल को समझते देर न लगी कि होसेन गांजे के पत्तों को अपनी एक पैसे की सिगरेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ मिला रहा था. एमिल होसेन की [illegible] वह बहुत ही दिलेर था. एमिल के बाप का तो बात-बात पर यही कहना था. उसकी उन बातों से एमिल को यकीन हो गया था कि होसेन बहुत ही साहसी आदमी है. तभी तो पुलिस को हर चौराहे पर चकमा देकर वह गांजे का व्यापार करता आ रहा था. कुछ लोग कहते कि होसेन की पुलिस वालों से काफी पटती थी, कुछ कहते कि पुलिस उससे डरती है. बात कुछ भी हो, एमिल मन ही मन उसकी सराहे बिना नहीं रह सकता था. वही भी अपने को उसी तरह निडर बनाने की सोचता. पिछले दिनों जब शहर के मुसलमानों और क्रिओलों के बीच दंगा-फसाद शुरू हुआ था और खून-खराबे हो रहे थे, उस समय एमिल के बाप ने होसेन को अपने घर में छिपा रखा था. बाद में एमिल के बाप ने उसे बताया कि कभी होसेन ने शराबखाने में अपनी जान की परवाह न करके उसकी जान बचायी थी. यह जानकर उसकी नजरों में तो होसेन की इज्जत और भी बढ़ गयी थी. उसको चाहने का यह भी एक कारण था कि वही एक व्यक्ति ठहरा जो एमिल को कुछ न कुछ दे दिया करता था.

★ ★

उसके पास पहुंच कर एमिल खाली कुर्सी पर बैठ गया. रेडियोग्राम से एक अश्लील गाना आ रहा था. होसेन कभी कंघी न करनेवाला अपना सिर झुकाये उसी के साथ झूम रहा था, उसके कपड़ों से सस्ती सिगरेट की गंध आ रही थी. उधर रसोईघर की कड़ाही में आमलेट तैयार हो रहा था. उसकी गंध भी एमिल की नाक तक पहुंची. वह जान गया कि दोनों जापानी मछुए जाग गये होंगे. आमलेट उन्हें छोड़ किसी दूसरे का आर्डर नहीं हो सकता था. एमिल ने चारों ओर देखकर होसेन से धीरे से पूछा—तो होसेन वे तस्वीरें?

—चलो हटो! तुम्हारे लिए वे चीजें देखना ठीक नहीं. बगल में थूकते हुए होसेन बोला. उसके चेहरे पर चाकू के जो दाग थे, वे [illegible] निडरता के प्रमाण थे.

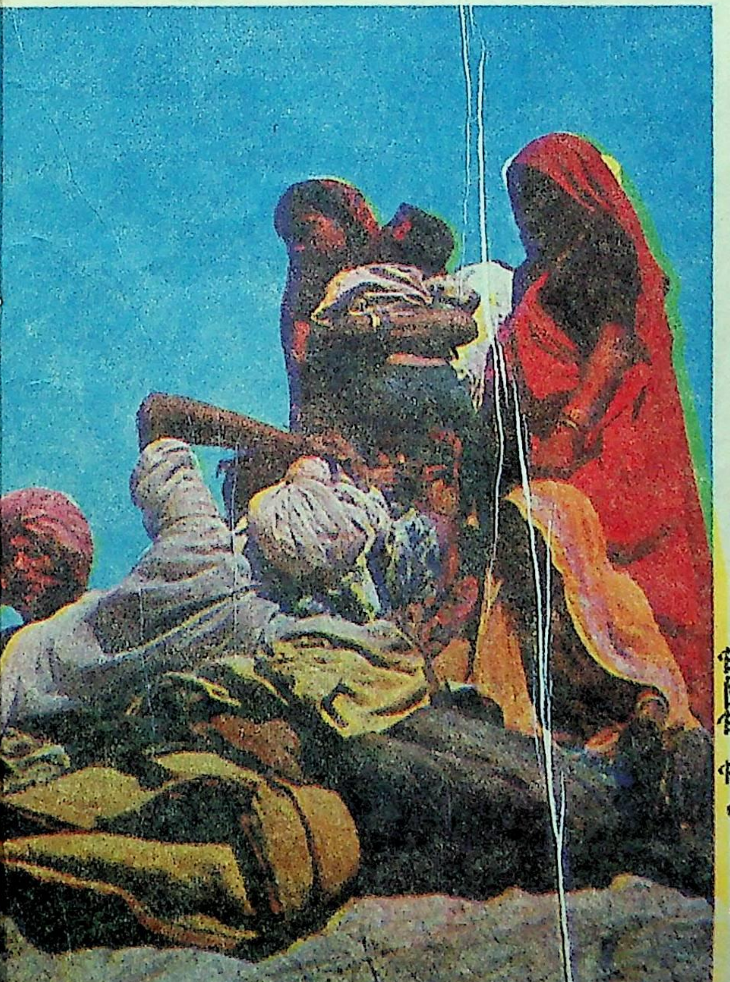

बी. गोस्वामी

—पर तो... उस दिन तो तुम्हीं ने... उसकी बात को काटते हुए होसेन ने झट कह दिया.

—उस दिन बता दिया था, इसका यह मतलब नहीं कि रोज तुम्हें बताता रहूं. और उसने अपने मैले कोट की आस्तीन से नाक पोंछ ली.

—एक आखिरी बार तो!

होसेन ने सिगरेट में गांजा भर चुकने के बाद उसे होंठों तक पहुंचाया और सुलगाते हुए मुस्करा दिया—एक शर्त पर देने को तैयार हूं.

—तुम उन तस्वीरों को लिये गुसलखाने की ओर न झपट पड़ो तब.

—इधर पापा आ सकता है.

—तो फिर हटो यहां से.

—खैर, यहीं देख लेता हूं.

—दूसरी शर्त है.

—वह क्या?

—उन्हें अपने मैले हाथों से मैला न करना वरना खरीदने वाला इन्हें जूठा समझ बैठेगा. ये आंखों से खाने वाली चीजें हैं. यह कहते हुए कोट की भीतरी जेब से उसने नीले रंग का एक मैला लिफाफा बाहर निकाला और एमिल की ओर बढ़ा दिया.

एमिल ने लिफाफे को इस तेजी से ले लिया गोया सचमुच वह कोई रखने की चीज हो और वह खुद बहुत भूखा हो उन तस्वीरों को एक-एक करके मिनटों तक देखता हुआ वह चाहता रहा कि उनमें जो चीजें थीं, वे देखते ही देखते सजीव हो जायें. होसेन के पहले ही कश के बाद हवा गांजे की गंध से भारी हो चली थी. उसी तरह का नशीला भारीपन एमिल ने अपने भीतर पाया. उसकी धमनियों में अजीब गरमी दौड़ने लगी थी. उसके अपने भीतर उन तस्वीरों को जीने की चाह पैदा हो गयी थी. उनमें बिजली की झनझनाहट थी. होसेन ने उसे बताया था कि ये तस्वीरें उसे जापानी नाविकों से मिलती हैं और एक तस्वीर वह दो से पांच रुपये के बीच बेचने का आदी था. एमिल की नजरों में इन तस्वीरों की कीमत इससे भी अधिक थी. उन पच्चीस तस्वीरों को वह पूरे आध घंटे तक देखता रहा. उसके शरीर में सख्ती आ गयी थी. उसकी अपनी ही कठोरता उसे चुभने लगी थी. अपनी ही गरमी में वह जलने, झुलसने लगा था.

बाहर पुलिस जीप के रुकने की आवाज आयी. होसेन ने झट एमिल के हाथों से तस्वीरें ले लीं. एमिल को हैरत हुई क्योंकि वह जानता था कि होसेन ने पुलिस से डर कर तो ऐसा नहीं किया था. उसे अपनी ओर हैरत से ताकते पाकर होसेन ने कहा—अरे, तुम नहीं जानते. ये लोग देखते ही बनावटी डांट-डपट के साथ इन तस्वीरों को मुफ्त में ले लेंगे.

अधखुले गेट से प्रवेश करते हुए दोनों पुलिस सिपाही रिसेपशन की ओर बढ़ गये. गांजे की वह गंध उनकी नाकों तक नहीं पहुंची क्योंकि उनकी नाकों में पहले ही से कोई दूसरी गंध थी. वह उन दो बंडलों की भीनी-भीनी गंध जिन्हें एमिल ने इन महानुभावों के फोन के बाद होटल के मालिक के कहने पर तैयार किया था. इन बंडलों की बदौलत ही होटल के मालिक को भी कभी पुलिस से डरने की नौबत नहीं आयी. और फिर पुलिस तो हिफाजत के लिए थी. यहां जो कुछ होता रहा है, कानून के लिहाज से ही होता रहा है.

★ ★

एमिल उस खाली कमरे में पहुंच कर उस चारपाई पर लेट गया जिस पर तीन दिन पहले उसने होसेन की उन तस्वीरों को सजीव पाया था. वह दीवार के उस पार से छेद के रास्ते अपनी सांसों को रोके सभी कुछ देख रहा था. उस समय उसके अपने भीतर खलबली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिमन्यु अनत : मॉरिशस के उत्साही हिंदी कहानीकार जिनका उपनाम 'शबनम' है. इनकी कहानियों में मॉरिशस के प्रवासी भारतीयों की समस्याओं का सुंदर चित्रण देखने को मिलता है. इससे पहले भी 'सारिका' में लिखते रहे हैं.

मच गयी थी. उस गरमी से उसके शरीर के कीटाणु खौल उठे थे. वह आदमी जितना सांवला था, उतनी ही गोरी थी वह औरत, उतनी ही मांसल उतनी ही उत्तेजित. . .उसी क्षण एमिल ने अनुभव किया था कि वह केवल नौकरी की तलाश में नहीं था, उसे और भी किसी खास चीज का अभाव था.

उसी चारपाई पर अपने को पाकर उसने ऐसा एहसास किया कि अभी-अभी एक गहरी नींद से उसकी आंखें खुली हैं. उस गहरी नींद में उसने जो सपना देखा था, वह इस वक्त भी उसकी आंखों के सामने अपना धुंधलापन लिये झिलमिला रहा था. उसने अपनी कल्पना पर जोर दिया ताकि वे धूमिल चित्र कुछ अधिक स्पष्ट हो जायें. उसके अपने मस्तिष्क का कोई दरवाजा हौले-हौले खुलता गया. एक यथार्थ को सपने में और एक सपने को यथार्थ में परिवर्तित करने के लिए उसने आंखें खोलीं पर यथार्थ और सपने दोनों का वही हुआ जो नींद के बाद सपने का होता है.

* *

कमरे में उमस थी. उसे सांस लेने में मुश्किल हो रही थी. वह चुपके से समुद्र की ओर चल पड़ा. इने-गिने बंगलों से कुछ लोग बाहर आने लगे थे. तट पर धीरे-धीरे रौनक आने लगी थी. कोई तो चार रंगों की बिकिनी नजर आयी. वह झाबे के पेड़ के नीचे बैठ गया. बगल के उस लाल बंगले से एक जोड़ी दौड़ती हुई आयी और बालू पर खड़ी हो गयी.

मर्द ने औरत को अपने अंक में कस लिया. औरत की बांहे मर्द के गले में जा लिपटीं. दोनों एक दूसरे को चूमते रहे. औरत की पीठ एमिल की ओर होने के कारण एमिल उस शरीर की बनावट को अपनी लोलुप नजरों से देखता रहा. उसकी अपनी भाषा में वह देखना न होकर, पीना था. वह पीता रहा. तभी उसे आभास हुआ कि वह जो पी रहा था, वह समुद्र का खारा पानी था. वह जितना अधिक पीता गया, उतनी अधिक बढ़ती गयी उसकी वह प्यास. समुद्र की विद्रोही फेनिल लहरों की तरह वह भीतर ही भीतर कराहता और चीत्कारता रहा. वह प्रभाव रेखा के उस पार के सागर की तरह था जो ऊपर से शांत होते हुए भी न जाने कितने बवंडर अपने भीतर छिपाये हुए था.

तभी उसके सामने से समुद्र के हलके लिबास में एक अधेड़ औरत गुजरी. उसके पीछे कोई तीन वर्ष का एक लड़का था. बच्चे की नजर एमिल पर पड़ जाने से वह 'मम्मी-मम्मी' पुकारता हुआ उस औरत से जा लिपटा एक झटके से एमिल के शरीर की सभी उष्णता काफूर हो चली. उसे अपनी मां की याद आ गयी.

उसने भी कोई आठ नौ वर्ष होने को था, अपनी मां से लिपट कर गिड़गिड़ा उठा था. —मां-मां पा कित कवां!

लेकिन उसकी मां ने उसकी वह बात नहीं मानी थी और उसे छोड़ कर चली गयी थी. तीन ही महीने बाद एमिल के बाप को जो खबर मिली थी, उसे उसने एमिल को आज तक नहीं बताया था. एमिल आज भी यही सोचता था कि उसकी मां कहीं न कहीं जी रही होगी. उसके बाप ने उसे यह बताना चाह कर भी नहीं बता पाया था कि उसकी मां जिस ड्राइवर के साथ भागी थी, उसी के हाथ मारी जा चुकी थी.

बहुत कम अवसरों पर एमिल का बाप एमिल से बातें करता था. एमिल कभी-कभार एकदम भूल जाता कि इस होटल में वह अपने बाप के साथ रहते आ रहा है. अपने इर्द गिर्द की बहुत भारी तन्हाई को महसूस करके वह अपने आप से ऊब जाता. कई मौकों पर उसने एक ऐसा एहसास किया है कि वह हर नाते से अलग था.

मां ने बच्चे का हाथ थाम लिया था. दोनों आगे निकल चुके थे पर एमिल बालू पर छूटे उन दोनों के पदचिह्नों को देखता रहा. वे छोटे-बड़े पदचिह्न जितने स्पष्ट बालू पर थे, उतने ही स्पष्ट एमिल के मस्तिष्क में भी थे. उसकी अपनी मां उससे दूर जा कर इसी तरह का पदचिह्न उसके जीवन में छोड़ गयी थी.

* *

जिस जोड़ी को कुछ ही क्षण पहले उसने बिकिनी में देखा था, इस समय वह समुद्र की तरंगों के बीच थी. दोनों एक दूसरे से सटे हुए तैर रहे थे. उनकी आवाजें साफ सुनाई पड़ जाती थीं. उन पर से नजरें हटा कर एमिल ने अपने अतीत की ओर देखा. वे दृश्य उसे अच्छे नहीं लगे इसलिए उधर से भी उसने नजरें फेर लीं. अपने भविष्य की ओर देखने का प्रयास किया. . . . उस घटाटोप अंधेरे में उसे कुछ भी दिखाई न पड़ा अंधेरे के सिवाय. उसने एक आवाज सुनी. वह उसके वर्तमान की आवाज थी. उसकी जिंदगी की एकमात्र हकीकत. वर्तमान की आवाज सुनने के लिए उसे पीछे की ओर मुड़ना पड़ा. सामने होसन खड़ा था। अपने मैले फटे कपड़ों में. गांजे की खुमारी का बोझ था उसकी आंखों और चेहरे पर—तुम्हें ढूंढा जा रहा है. जल्दी करो. कई ग्राहक आये हैं.

एमिल अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ. अपने बोझिल शरीर को लिये वह होटल पहुंचा. होटल का मालिक उसे देखते ही बरस पड़ा.

—तुम हर वक्त कहां गायब हो जाते हो? क्या हर वक्त तुम्हें ढूंढ़ निकालने के लिए मुझे एक नौकर रखना होगा? कमरे नंबर सात और दस अब तक साफ नहीं हुए है. पहले जाकर नंबर पांच का आर्डर ले लो.

—जल्दी करो यों आंखें फाड़े मुझे क्यों घूर रहे हो?

एमिल चल पड़ा. नंबर पांच के सामने पहुंच कर ठिठका फिर दरवाजे पर धीरे से दस्तक दिया

भीतर से आवाज आयी.

—ठहरो!

वह खड़ा रहा. पूरे तीन मिनट बाद दरवाजा खुला जब तक कि रेडियो ग्राम का झींगो समाप्त न हो गया.

झिझकते हुए भीतर पहुंच कर उसने सभी व्यापारी शिष्टाचार के साथ पूछा···—आप का आर्डर?

पूछते-पूछते उसकी नजर चारपाई पर लोट गयी थी जहां एक औरत अपने अस्तव्यस्त कपड़ों में सिर झुकाये बैठी थी.

—एक बोतल मार्टिनी, साथ में मेनू भी लेते आना.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकलने से पहले भी एमिल ने छिपी नजरों से चारपाई पर की औरत की ओर देखा. कोई पांच मिनट बाद ट्रे में मार्टिनी की बोतल दो गिलास, तौलिया और दूसरे प्लेट पर मेनू की पुस्तिका लिये दोबारा भीतर पहुंचा. इस बार और मेज के सामने की कुर्सी पर थी. उसकी आंखों की वह झिझक भी इस समय कुछ कम थी, फिर भी एमिल इसी नतीजे पर पहुंचा कि इस औरत का यहां पहुंचने का यह पहला अवसर रहा होगा.

हाथ में मेनू की किताब लेकर उस व्यक्ति ने औरत की राय ली और एमिल से पूछा —आपके यहां भेड़ हलाल होते हैं?

—दोनों तरह के हैं, आप जो चाहें. एमिल ने कहा.

—हलाल ही अधिक अच्छा रहेगा पर देखना अभी तुरंत नहीं पूरे दो घंटे बाद.

—जैसी आपकी मर्जी.

यह होटल के मालिक का सबसे कपट उसूल था कि हर चीज ग्राहक की मर्जी से सही.अपने मालिक का आर्डर निभा कर ग्राहक का आर्डर निभाने के लिए एमिल कमरे से बाहर होकर सीधे रसोई में पहुंचा जहां उसका बाप दो औरतों के बीच उबले हुए लाबस्टर को पकाने में लगा हुआ था. उनके सामने आर्डर रखकर एमिल बाहर आ गया.

होटल की खुली जगह में एक मिनट बैठा. सभी की नजरें बचाकर चार नंबर के कमरे में पहुंचा और भीतर से दरवाजा बंद कर लिया. बगल के पांच नंबर के कमरे की फुसफुसाहट अस्पष्ट थी लेकिन जो स्पष्ट था, वह था रह-रह कर उधर से आता हुआ सीत्कारने का स्वर.

चारपाई पर बैठा-बैठा एमिल सोचता रहा. तय करता रहा. सोचना जितना आसान था, तय करना उतना ही कठिन.

वह अपने आपसे झगड़ता रहा. उस ओर से आती आवाजों के साथ उसने उधर के दृश्य की.कल्पना की उसके समूचे शरीर में आग-सी दौड़ने लगी थी. उसके शरीर में उष्णता भी थी, कठोरता भी और थोड़ा बहुत गीलापन भी. अपनी जगह से उठ कर वह दीवार की ओर बढ़ा. दीवार के उस छोटे से छिद्र से उधर के दृश्य को देखने के खयाल से वह कुछ झुका पर फिर एकाएक न जाने क्या सोच कर वह सीधा खड़ा हो गया.

उसने एक क्षण सोचा और दूसरे ही क्षण दरवाजा खोल कर कमरे से बाहर हो गया. होटल से बाहर हो कर उसने समुद्र की ओर देखा और फिर दूर तक फैली हुई पीछे की उस दुनियां की ओर जिससे वह दूर था, अपने ढंग की सीमित-सी दुनियां में.

होटल की घिरावट से बाहर होकर उसने एक लंबी सांस ली. अपने को कैद से बाहर महसूस किया और बिना किसी को कुछ बताये वह अपने सामने के विस्तृत संसार की ओर दौड़ पड़ा.

वह होटल और उसके माहौल से बहुत दूर निकल आया था, फिर भी उसका भागना बंद नहीं हुआ था.

वह अपने आप से भाग कर अपने आप को खो देना चाहता था. अपने आप को खो कर वह नये सिरे से अपने को पाना चाहता था.

वह बेतहाशा दौड़ता रहा, एक नये क्षितिज की तलाश में. □□□

त्रियोले,
मॉरिशस

एक लघुकथा

समानांतर

• सुभाष उपाध्याय

आंगन में मैंने लेटे हुए ही फुसफुसाहट को सुनकर पीछे गर्दन घुमा कर देखा तो मुन्नो और माया मेंहदी का घोल चिकना करने में संलग्न.

माया से कहता हूं—अच्छा ला, मैं तेरे मेंहदी लगाता हूं. चिकनी मेंहदी के घोल में से माचिस की तीली से छोटी-सी हथेली पर दो समानांतर रेखाएं खींच देता हूं—ऐसे ही रेखाएं. . .रेखाएं. . .कभी रंग न लानेवाली रेखाएं.

वही बाढ़. . . सूखा और फिर सहायता के लिए झिक-झिक. पंच, सरपंच, नगर परिषद के सदस्यों की ठप्पावेही. ऐसे ही दोपट्टी के लोग तीनपट्टी के लोगों को अपने जोर से अधभूखा-भूखा मरने पर विवश कर रहे होंगे.

. . .खटीकों को साढ़े तीन सेर, बामणों को साढ़े तीन सेर और कोलियों को दो सेर—बहन. . .लूट है लूट. . . हमारे बच्चा भूखे नहीं मर रहे हैं. . .जाने बिनो के बच्चा हैं. . .

मैं चिल्लाकर कहना चाहता हूं कि यहां क्यूं चिल्लाते हो. . .उखाड़ दो इन सब के झंडे. .मरना ही है तो लड़ के मरो—सड़ के नहीं. . .लेकिन चिल्ला नहीं पाता और मेरे चेहरे के सामने हाथ में लट्ठ लिये इस शहर के सरगना पहाड़ियाजी की जै के नारे लगाते गुजर जाते हैं.

तभी मेरी तर्जनी होठों तक जाकर रुक जाती है अनायास ही. . .और मुझे नंगा कर देती है—अंदर से अंदर तक. मार्केट की तरफ बाजार के पास वाली गली में सैकड़ों लोग थैला, चद्दरें लिये हुए होते हैं—एक दुकान पर. भीड़ में से पीछे खड़े एक आदमी से पूछने पर मालूम होता है, वार्ड मेंबर मुंशी गेहूं बांट रहा है. चारों ओर शोर है दुकान में. इस शोर के मध्य एक कड़कती तीखी टिटहरी-सी आवाज आती है—पच्चीस बोरी आयी हैं अभी से इतेक जल्दी कैसे खतमहो गयीं? 'बंटी नहीं हैं का' प्रति उत्तर में कई स्वर उभरते हैं—हां. . . हां. . .जा जा नहीं है हमारे पास तेरे जंचे जो कर लीजो. . .

—कर का लीजो. . .मैं हूं, तेरे का बाप को है!

भीड़ कम होने पर देखा कि मुंशी से झगड़नेवाला केशव है. सुनते ही मुंशीजी की मुट्ठियां कस जाती हैं—ऐसो ही भूख्यो मरयो जाय तो मांग खा ससुरे. . .

—पच्चीस बोरी कैसी देर में खतम हैं गयी?

केशव का अभी वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि मुंशी के छोटे भाई ने थप्पड़-घूंसा शुरू कर दिया. एक धक्के से गिरा केशव गली के कीचड़ में.

केशव उठा और गर्दन झुका कर चुपचाप एक ओर चल दिया, लेकिन इस आज के एक ओर जाने में व उस रोज के एक ओर जाने में बड़ा फर्क है. उस रोज हरिकीर्तन हो रहा था, इंद्रदेव की प्रसन्नता के लिए. मैंने इससे पूछा कि तुझे क्या मिलेगा? वर्षा होने से तेरी तो मजूरी मारी जायेगी.

केशव ने ऐसे देखा मानो मैंने मूर्खतापूर्ण प्रश्न पूछ लिया है.

मैंने माया की हथेली पर देखा. एक लाइन को बड़ी दिखाने हेतु उसके समानांतर एक छोटी लाइन खींच दी है. एक सूरज उन दो समानांतर रेखाओं के ऊपर ज्यामितिय शैली में बन गया है और उनके नीचे कटोरे-सी आंख है. माया के प्रश्न के उत्तर में मैं सिर हिला देता हूं. वह गुस्सा खाकर नल की टोंटी खोल हाथ नीचे धार के कर देती है. □□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलते हुए डैने • हिमांशु जोशी

खबर पढ़ कर सन्न रह गया! सच नहीं लगा कि शिव 'दा चल बसे!

बेड़ियों से जकड़ी उनकी दुर्बल देह; और सीमा भाभी का आंसुओं से भरा चेहरा बार-बार आंखों के आगे घूमने-सा लगता.

अभी कुछ ही दिन पहले की तो बात है, जब पुलिस का दस्ता अकस्मात हमारे कस्बे में आया था. . .शिव 'दा को पकड़ कर ले जाने लगा तो जमघट-सा लग गया था. आतंकित औरतें, मरद, बच्चे, बूढ़े घरों से निकल-निकल कर बाहर आये और भयत्रस्त-से चारों ओर देखने लगे थे.

सेंवार की तरह शिव 'दा के बाल बढ़े थे, वैसे ही दाढ़ी! खादी के अस्त-व्यस्त, फटे कपड़े. कंधे पर तौलिये का काला चीथड़ा डाले नहाने जा रहे थे कि सीढ़ियों पर ही पुलिस ने घर दबोचा. वह कुछ कहें, कुछ बोलें, इससे पहले ही उनकी सूखी, पतली कलाइयों को लोहे की भारी-भारी हथकड़ियों में जकड़ दिया और पिल्ले की तरह उनके पिंजर को घसीट कर नीचे ले आये थे.

लोहे के टोप ओढ़े, संगीनधारी लंबे-तगड़े पुलिस के सिपाहियों के बीच घिरे कृशकाय शिव 'दा कैसे लग रहे थे. . .अवश भाव से चारों ओर देखते हुए!

गीले आटे से सने हाथ लिये सीमा भाभी खड़ी थीं—रो रही थीं. नन्हीं रूही खड़ी थी—रो रही थी. . .

पुलिस की गाड़ी चलने लगी तो शिव 'दा की देह कांपने लगी. मुट्ठियां भिचने लगीं. अजीब-से तनाव को चीरते हुए चीख पड़े सहसा—वं. . .दे. . .मा. . .त. . .र. . .! शब्द पूरा भी कह न पाये कि किसीके फौलादी पंजे ने उनका मुंह भींच लिया और गाड़ी धूल का गुबार उड़ाती हुई ओझल हो गयी.

सब सकते में आ गये थे. डरे हुए लोगों का आक्रोश अब उमड़ रहा था. वे तरह-तरह की बातें कर रहे थे. क्रुद्ध बच्चे धूल के गुबार की तरह दौड़ कर ढेले फेंक रहे थे. . .

रमाकांत शहीदाना अंदाज में जम कर खड़ा, आसमान की ओर अंगुली उठाये, भाषण दे रहा था—अंधेर है, अंधेर! ऐसा तो अंग्रेजों के राज में भी नहीं हुआ था. मैं पूछता हूं—इस भले आदमी का कसूर क्या है? इसने ऐसी क्या गलती की है? फिर इस निरपराध को इतनी बड़ी सजा क्यों दी जा रही है?. . .बोलो, देख क्या रहे हो—जवाब दो! शिवदास रोगी हैं—तपेदिक के. डाइबिटीज के. शिवदास जेल में मर गये तो उनके अबोध बच्चों का क्या होगा?. . .

पुलिस का खाकी ट्रक कस्बे की सीमा से दूर चला गया था. फिर भी सर्वत्र दहशत छायी हुई थी—पता नहीं पुलिस कब, किसे पकड़ कर ले जाये!

रमाकांत पागलों की तरह देर तक बड़बड़ाता रहा तो न जाने कब उसके वृद्ध पिता उसे घसीट कर ले गये. भीतर से कुंडी चढ़ा कर बोले—शिवदास की तरह क्या तू भी पगला गया है? सरकारी गल्ले की दूकान है मेरी. किसीने रपट कर दी तो लाइसेंस छिन जायेगा. बता, फिर इतने बच्चों का पेट कैसे भरेगा?

आवेश में रमाकांत चिल्लाया—मैं पूछता हूं, अब आपकी दुकान में गल्ला ही क्या है? क्या अब भी अपने बच्चों का पेट आप भर पा रहे हैं, जो व्यर्थ में चीखे जा रहे हैं. . .?

—अरे, तू तो सचमुच पगला गया है रे रमा! पिता हताश हो कर बोले—अब नहीं है तो फिर कभी तो होगा ही! आशा पर दुनिया जीती है!

रमाकांत ने अजीब-सा कड़वा मुंह बनाया—आशा पर दुनिया जीती है. . .! हुं! और जमीन पर थूक दिया—पुच्च् से.

शिव 'दा के टूटे घर में फिर कभी दीया न जला. सारी-सारी रात किसीके रोने-सिसकने की आवाजें आती रहीं. अंधेरे में काले चमगादड़-से उड़ते दीखते तो भय लगता.

लोग कहते, दूर किसी अंधी जेल में शिव 'दा को ठूंस दिया है; जहां ऐसे हजारों कैदी हैं, जो पशुओं से भी बदतर जिंदगी जी रहे हैं; जानवरों के बाड़े की तरह औरतों को रखा गया है. तन ढकने के लिए पूरे वस्त्र तक नहीं. औरतों के पूरे वार्ड में केवल एक धोती! कभी बाहर से किसी का कोई रिश्तेदार मिलने आता है, तब वही धोती वह तन पर लपेट लेती है. और वापस आ कर उसीको फिर खूंटी पर टांग देती है.

अपना ही देश!

अपने ही लोग

जगह-जगह फटी हुई धरती, लाशों को नोचते हुए गिद्ध और सियार!

मेरा सिर घूमने लगता है. शिव 'दा का वह मासूम मुखड़ा आंखों के आगे तैरने लगता है, जब वह सुबह-सुबह इन वीरान खेतों में भटकते हुए बंकिम बाबू का गीत गुनगुनाया करते थे—

'सुजलाम् सुफलाम्. . .शिव 'दा की आंखों से रक्त की बूंदें झरने लगती थीं. . .

उस साल भी अकाल पड़ा था. पूरे तीन महीने तक शिव 'दा भटकते रहे. घर-घर, द्वार-द्वार, घूम-फिर कर अकाल-पीड़ितों के लिए अन्न जुटाते रहे.

दुर्बल तन पर चीथड़े टंगे रहते. पांवों में जूते तक नहीं! जब जो मिला, खा लिया, जहां रात हुई, सो गये.

सीमा भाभी रोती रहतीं. रूही जंगले पर खड़ी—मम्मी ओऽ पापा तो नहीं! फटे चीथड़े पहने जो भी भिखारी आता, उसीकी ओर चहकती हुई लपक पड़ती.

* *

कहते हैं—शिव 'दा के पिता सेमुअल रामदास यहां के आदिवासी क्षेत्र में बने मिशन अस्पताल में डाक्टर थे कभी. खादी के कपड़े पहनते थे. चर्खा कातते थे. इसलिए विदेशी सहायता से चलने वाले इस अस्पताल से संबंधित गोरे, अधगोरे अफसर और पादरी उनसे क्रुद्ध थे. उनका वश चलता तो कब का उन्हें हटा देते. किंतु इस पूरे इलाके में उनकी बड़ी धाक थी. उनके एक इशारे पर सारे आदिवासी सदैव मर मिटने को तैयार रहते.

ऐसा कोई आदमी न था, जिसकी उन्होंने सहायता न की हो. जाड़े में, पश्मीना ओढ़ कर किसी मरीज को देखने गये तो उसके शीत से ठिठुरते गात पर अपना पश्मीना डाल दिया. किसी रोगी के घर में राशन नहीं तो दवा के साथ-साथ राशन भी पहुंचा दिया. कितने ही आदिवासी बच्चों को उन्होंने पाठशाला भिजवाया. कितनों की किताबों और कापियों के लिए पैसे जुटाये.

अंत में सन् ४२ का आंदोलन शुरू हुआ. करो या मरो का नारा लगा तो, उन्होंने भी अस्पताल छोड़ दिया. तिरंगे झंडे के नीचे आदिवासी-क्षेत्र में नये आंदोलन का सूत्रपात किया. सरकार के पिट्ठुओं ने आदिवासियों के झोंपड़े गिरा डाले. स्कूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की इमारतें तोड़ डालीं. कई पशु और आदमी जिंदा जला दिये. और उसी दमन-चक्र में शहीद हो गये—सेमुअल रामदास भी.

आज भी बाबा भीखनचंद उस दिन का आंखों देखा हाल सुनाते हैं तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं.

सेमुअल रामदास की लहूलुहान देह जमीन पर कुचले हुए केंचुए की तरह छटपटा रही थी. उनकी कांपती हुई मुट्ठियों में झंडा जकड़ा हुआ था. ओठ कांप रहे थे. फुसफुसाहट की-सी कांपती आवाज आ रही थी— इ-न-क-ला-ब!

यही उनके अंतिम शब्द थे शायद.

लोग कहते हैं—उस दिन मैदान में फैला बरसात का पानी तक लाल हो गया था.

जहां पर सेमुअल रामदास शहीद हुए थे, वहां अब बाजार बन गया है. 'शहीद चौक' के नाम से एक चबूतरा है (जिसमें कभी-कभी कस्बे के गुंडे ताश खेलते हैं.)

वही 'शहीद-चौक' अब सराय बनी शिव 'दा की.

वैसी ही कद-काठी, वैसा ही रूप-रंग. शिव' दा जब खादी के कपड़े पहनते, लोग कहते—हू-ब-हू पिता की प्रतिमूर्ति लगते हैं. बोलने का लहजा, चलने का ढंग—कहीं रत्ती-भर भी तो अंतर नहीं...

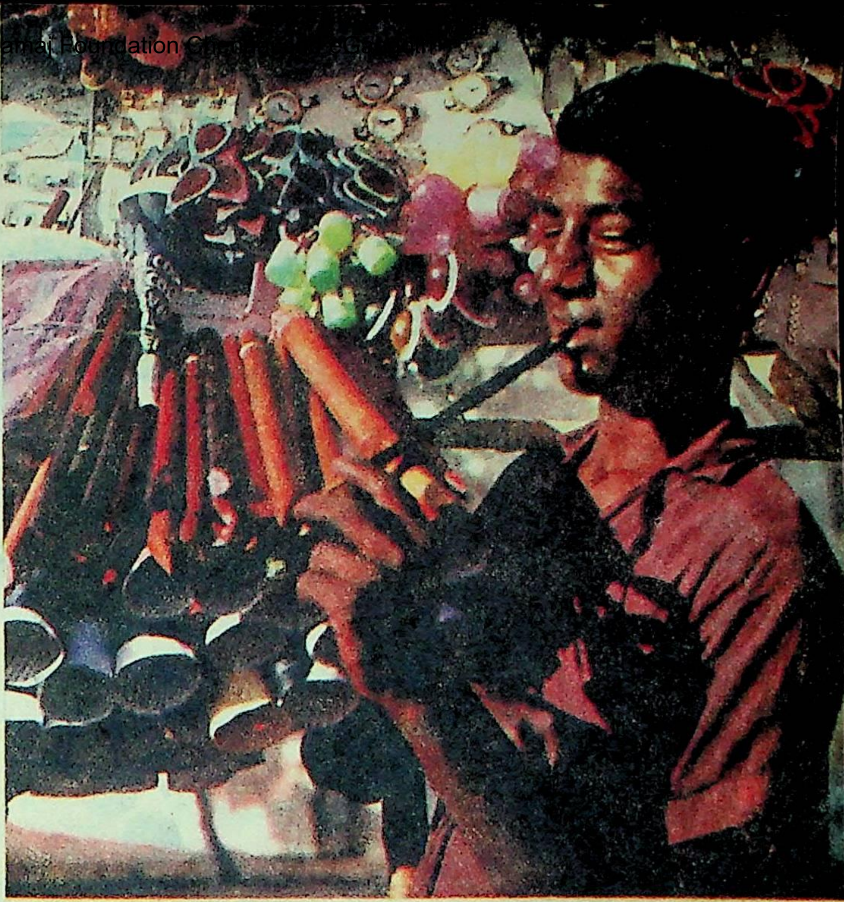

● भगवानदास रूपानी

मां जनते ही मर गयी थीं. कुछ समय बाद पिता भी यों अनाथ छोड़ गये तो मौसी के घर पले... दूसरों के सहारे पढ़-लिख कर शिव 'दा एक दिन अध्यापक हो गये थे—आलमगंज के इसी प्राइवेट स्कूल में.

रूप-रंग, चाल-ढाल ही नहीं, आदतें भी उन्हें विरासत में मिली थीं— पिता से. रात में प्रौढ़ पाठशाला चलाते. दिन में स्कूल से लौट आने पर गरीब बच्चों को घर पर बुला कर पढ़ाते.

सीमा भाभी कुढ़ती रहतीं, लेकिन परमहंस की तरह शिव 'दा मौन साधे रहते.

कभी-कभी हंसी में कहतीं—याद है, आपका जन्म २५ दिसंबर को हुआ था—ईसा की तरह...

शिव' दा सीमा भाभी के चेहरे की ओर अबोध बालक की तरह ताकते रहते. उनकी बात काटते हुए चट बोल पड़ते—हां, तब तो मुझे भी एक दिन सलीब पर लटकना होगा ...देखना, जरूर लगेगी फांसी.

—चुप, चुप! सीमा भाभी उनके होठों पर हथेली रख देतीं— ऐसा क्यों कहते हैं? आपको क्यों लगेगी फांसी? आपने क्या गुनाह किया है ऐसा...?

यों ही व्यंग्य भाव से हंस देते शिव 'दा—तू तो निरी भोली है. फांसी पर झूलने के लिए क्या गुनाह करना जरूरी है? बता, ईसा ने क्या गुनाह किया था? सुकरात को क्यों जहर दिया गया था..?

सीमा भाभी प्रत्युत्तर में चुप हो जातीं और शिव ' दा भी.

★ ★

आधी-आधी रात तक वह चर्खा कातते, पुस्तकें पढ़ते और पत्नी को समझाते—जिंदगी तो एक दिन खतम होनी ही है, पर इसे किसी अच्छे काम पर क्यों न लगायें? अपना पेट तो चौपाया भी भरता है. आदमी और पशु में कुछ तो अंतर है...

सीमा भाभी चुपचाप सुनती रहतीं और मौन हो जातीं. कभी-कभी यह सब असह्य हो उठता तो तुनक पड़तीं—मुझे अपने लिए कुछ नहीं चाहिए. मैं आधे पेट खा कर, फटे कपड़े पहन कर भी रह लूंगी, पर इस रूही का तो कुछ खयाल करो. इसके भविष्य के बारे में भी तो सोचो.

—ये जो सड़क पर टूटा कटोरा लिये भीख मांगते, नंगे बच्चे देखती हो—क्या इनमें कहीं कभी तुम्हें रूही की शक्ल नजर नहीं आती? ऐसी कितनी ही रूहियां हैं—तुम नहीं जानतीं. . तुम नहीं जान सकतीं...

शिव 'दा पता नहीं किस समाधि में लीन हो जाते. और सीमा भाभी आसमान की ओर देखने लगतीं—जैसे कुछ खोजती हुई निगाहों से.

★ ★

एक दिन शिव ' दा की नौकरी छूट गयी. प्राइवेट स्कूल था—सरकारी सहायता से चलता था. मैनेजिंग कमेटी के चेयरमैन लाला सुखनप्रसाद का आरोप था कि शिवदास विद्यार्थियों को भड़का रहे हैं. सरकार के खिलाफ आंदोलन में भाग ले रहे हैं. अगर शिवदास इस स्कूल में बने रहे तो सरकारी सहायता नहीं मिलेगी... अगर सरकारी सहायता नहीं मिलेगी तो स्कूल नहीं चलेगा. अतः सरकार बंद करवाये, उससे पहले ही हमें स्कूल बंद कर देना चाहिए.

उन्हें डर था कि शिवदास को जबर्दस्ती हटाने पर विद्यार्थी स्कूल की इमारत जला डालेंगे.

—पर स्कूल बंद कैसे हो सकता है? इस देश में तो अभी करोड़ों लोग हैं—निरक्षर, जिन्हें शिक्षा की जरूरत है—ज्ञान की. शिव 'दा ने कहा और स्वयं ही हट गये रास्ते से.

★ ★

जहां-जहां बाढ़ आती, जहां-जहां अकाल पड़ता, महामारी फैलती—शिव 'दा वहां पहुंच जाते.

इस वर्ष चेचक से कितने ही लोग मर गये, पर अखबारों में यों ही लीपा-पोती होती रही. हजारों लोग मरते, पर सरकारी आंकड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी सुन्दरता का रहस्य ही
ऐटेक्स् सौंदर्य प्रसाधन

ARAVIND LABORATORIES MADRAS-33

ताक़त
मर्द की शान मर्द की पहचान

इस ताक़त को बनाये रखनें के लिए, सदाबहार चुस्ती, फुर्ती और नौजवानी की सी उमंग के लिए ओकासा स्वास्थ्यदायक टॉनिक टिकियाँ लीजिये। ओकासा टॉनिक टिकियों की अनोखी शक्ति से आपके शरीर और दिमाग़ को लगातार नयी ताक़त मिलती है।
ओकासा की टिकियों पर चाँदी चढ़ी रहती है।

ओकासा
टॉनिक टिकियाँ
पुरुषों के लिए चांदी वाली
हार्मो-फ़ार्मा लिमिटेड लंदन-बर्लिन का उत्पादन
सभी बड़े-बड़े केमिस्टों के यहां मिलता है।

OKASA CO. PVT. LTD.
12A Gunbow Street, P.B.No.396,
Bombay-400001.

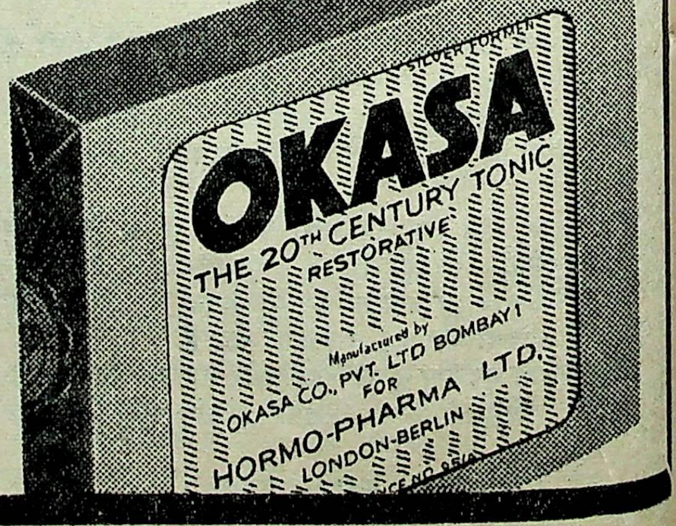

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

दस-बीस से ऊपर न पहुंच पाये [illegible] हाहाकार मचा था. चींटियों की मौत मर रहे थे लोग. लावारिश लाशों के अंबार लगे थे. पर कोई पूछने वाला तक न था...

शिव'दा प्राणों की परवाह न कर अपने कुछ साथियों के साथ निकल पड़े. लोग कहते--शिवदास वहां से बच कर नहीं लौटेंगे. पर शिवदास कुछ महीनों बाद फिर सामने खड़े थे --जीते-जागते !

और इस अकाल में तो उन्होंने हद ही कर दी. जब कहीं कुछ न बना तो सरकारी दफ्तरों के आगे धरना दिया. अफसरों की कारों के आगे लेट गये.

बड़े-बड़े मंत्रियों को, नेताओं को लिखा, तब भी पूरी सहायता न मिली तो शिव'दा अपने साथियों के साथ घर-घर, द्वार-द्वार घूम कर अन्न के दाने और फटे चीथड़े इकट्ठा करते.

सरकारी अफसर कहते कि लोग भूख से नहीं, पौष्टिक तत्वों की कमी के कारण मर रहे हैं. तो शिव'दा भूख से मरे लोगों के अस्थिपिंजर अपने दुर्बल कंधों पर लाद-लाद कर थाने के सामने पटकते-- यह देखो, अब भी कह सकते हो कि ये भूख से नहीं मरे? शिव'दा के दांत भिंच जाते. आंखों में लाल डोरे उभर पड़ते.

लोग पागल समझते उन्हें और हंस देते.

कुछ आत्मीय लोगों ने कहा--शिवदास, तुम्हारे पिता स्वाधीनता-संग्राम में शहीद हुए थे. यह फार्म भर दो . तुम्हारे बच्चों को कुछ सहायता मिल जायेगी.

शिव'दा ने फार्म के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और 'हां-हा-हा !' पागलों की तरह अट्टहास करते हुए हंसने लगे.

★ ★

इस आदिवासी क्षेत्र में भूख से नौ सौ पंद्रह लोग मरे... सरकारी अनाज चोरबाजारी में बिकता रहा--शहरों में.

दवाएं देखने तक को न मिलीं...दुर्भिक्ष-पीड़ितों ने जुलूस निकाले तो उन पर गोलियां बरसायी गयीं. उन्हें देशद्रोही करार किया गया...नेता लोग आये और फोटो खींचवा कर चले गये....थाने के आगे धरना देने वालों को चौराहों पर घसीटा गया. आदिवासी औरतों के साथ बलात्कार किया गया...

वह रात-रात भर जाग कर कागज के टुकड़ों पर पता नहीं क्या-क्या लिखते और उन्हें किसी डिब्बे में जतन से सहेज कर गड्डे में डाल देते---ऊपर से मिट्टी आदि से ढक कर.

कहते---ये 'कालपात्र' हैं. कभी कोई जमाना आयेगा, जब लोग देखेंगे कि जनतंत्र और समाजवाद के नाम पर इस देश में क्या-क्या नहीं हुआ ?

'शिव'दा सचमुच पागल-से हो गये थे. पत्थरों पर कोयले से लिखते, बड़ी-बड़ी दीवारें रंग देते. चौराहों पर खड़े हो कर भाषण देने लगते.

उनकी इन हरकतों से परेशान हो कर पुलिस उन्हें स्वयं पीटती, गुंडों से पिटवाती. न जाने कितने इल्जाम लगा कर उन्हें कितने दिनों तक थाने में बंद रखती---भूखा, प्यासा!

★ ★

इस बार लगान की वसूली के प्रश्न पर जो आंदोलन छिड़ा उससे काननी-व्यवस्था ही खतरे में पड़ गयी थी. आंदोलनकारियों की धर-पकड़ शुरू हुई तो सबसे पहले पुलिस की निगाह शिव'दा पर ही पड़ी. बेचारों को मेमने की तरह घर से घसीट कर ले गयी..

अदालत में मुकदमा चला तो शिव'दा ने केवल इतना ही कहा था, अपनी सफाई में---मैंने जो कुछ भी कहा, सच कहा था. सच बोलने की सजा अगर मृत्यु-दंड है तो मुझे वह भी मंजूर है. . .

शिव'दा का सारा शरीर लहूलुहान था. कपड़े तार-तार फटे हुए थे!

फिर पता नहीं किस काल-कोठरी में ठूंस दिया था उन्हें, तड़प-तड़प कर मरने के लिए. जहां से एक दिन बाहर निकला था केवल उनका अस्थिपंजर!

सूखा हुआ शरीर---हड्डियों का ढांचा मात्र! बढ़ी हुई दाढ़ी! कैदियों के फटे कपड़े! खुली हुई निष्प्राण आंखों में विचित्र-सी वेदना !

★ ★

शव आलमगंज लाया गया तो एक भी आदमी बाहर न निकला---पुलिस के आतंक से. पादरी समेत केवल चार-पांच लोग थे.

शव को ताबूत पर रखते समय मैंने देखा---उनके सारे शरीर पर जगह-जगह नीले निशान थे. लगता था अब भी जख्म कराह रहे हैं. . .सूखे हुए होंठ कुछ कहने के लिए अब भी फड़फड़ा रहे हैं. . .

मैं निर्निमेष उनकी ओर ताकता रहा...

उन्हें दफनाये आज कितने दिन हो गये ! पर लोग कहते हैं--- रात के अंधियारे में 'शहीद-चौक' पर शिव'दा आज भी बैठे दिखलाई देते हैं. आज भी अकाल-पीड़ितों के लिए भीख मांगते हुए भटकते हैं. रात के अंधकार में आज भी अपने खंडहर के द्वार खटखटाते हैं तो सीमा भाभी दहाड़ मार कर रोती हैं. रूही चीख पड़ती है , पर उस वीरान खंडहर में सारी आवाजें विलीन हो जाती हैं और फिर छा जाता है ---मौत का-सा सन्नाटा ! □□□

६०६, नेता जी नगर,
नई दिल्ली-११००२३

हिमांशु जोशी (जन्म: ४ मई, १९३५) ने अपने समय की सच्चाइयों को समझा और परखा है. इन्होंने मानवीय संवेदना और नयी मानसिकता का सूक्ष्म निरूपण किया है और भ्रष्ट व्यवस्था के घृणित पक्ष को उजागर किया है. इनकी कहानियां जिंदगी के यथार्थ की कहानियां हैं. इन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से जीने की अनिवार्य शर्त के रूप में आम आदमी के संघर्ष को अभिव्यक्त दी है. इनके पात्र समाज में व्याप्त छल के खिलाफ लड़ाई जारी रखने वाले लोग हैं.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुस्ताखियां

• प्रकाश पंडित

एक जमाने में दिल्ली में उर्दू के चार अदीबों की चंडाल चौकड़ी बड़ी मशहूर थी. जगन्नाथ 'आजाद', पद्मश्री गुलाम रब्बानी तांबां, प्रकाश पंडित और रवि चोपड़ा (जो अदीब नहीं अदब-नवाज थे). अदब-नवाज रवि चोपड़ा हर शनिवार की शाम को अपने तीनों दोस्तों को अपने यहां खाने पर आमंत्रित करके खूब डट के व्हिस्की पिलाते थे और हर बार व्हिस्की में सोडा डालने के बाद उसे चम्मच से खूब अच्छी तरह घोंटते हुए दोस्तों को भी वैसा करने की हिदायत करते थे और बताते थे कि ऐसा करने से बुढ़ापे में हाथों में रा'शा (कंपन रोग) नहीं आयेगा.

संयोग की बात! एक बार सोडा न मिला और पानी से काम चलाना पड़ा. चम्मच नियमानुसार मेज पर पड़े थे. गिलास में व्हिस्की और फिर पानी पड़ते ही आजाद साहब ने नियमानुसार गिलास में चम्मच चलाना शुरू कर दिया. इस पर उन सबने उनकी ओर आश्चर्य से देखा और तांबां साहब ने, जो उस समय तक पद्मश्री नहीं बने थे, उनसे कहा--यह तो पानी है आजाद! इसे क्यों चला रहे हो?

--चला लेना अच्छा होता है, व्हिस्की के मामले में नये पापी होने के कारण आजाद साहब ने बड़े सरल भाव से कहा, उससे बुढ़ापे में रा' शा नहीं आयेगा.

शक्कर में चाय

जगन्नाथ आजाद साहब के स्वर्गीय पिता जनाब तिलोकचंद 'महरूम' उस जमाने की पैदावार थे जब पंजाब में चाय पीने का कतई रिवाज नहीं था. चाय सख्त जाड़े के दिनों में कभी-कभार ही घरों में बनती थी जिसमें सौंफ, मोटी इलायची और ढेर सारी शक्कर डाल कर जाड़ा दूर करने की औषधि के रूप में घर के छोटे-बड़े सभी लोगों को गिलास भर-भर कर दी जाती थी.

भारत-विभाजन के बाद उन्हें भी विवश हो भारत में और फिर राजधानी दिल्ली में आना पड़ा. और उस समय दिल्ली की साहित्यिक गतिविधियों की संचालिका हमीदा सुल्तान साहिबा (सेक्रेटरी अंजुमन तरक्की-ए-उर्दू) द्वारा बुलायी गयी एक साहित्यिक गोष्ठी में शामिल होना पड़ा, जहां जीवन में पहली बार उन्होंने देखा और सुना कि चायदानी को रुई की रजाई ओढ़ायी जाती है और उसे टीकोजी कहते हैं.

टीकोजी उठा कर हमीदा सुल्तान साहिबा ने प्यालों में चाय उंडेली. फिर दूध डाला और शक्करदानी उठा कर सबसे पहले पड़ने वाले 'महरूम' साहब से पूछा---आप कितनी शक्कर लेंगे?

--शक्कर! महरूम साहब बौखलाये क्योंकि पंजाब में शक्कर गुड़ के चूरे को कहते हैं जिसमें असली घी डाल कर मकई की रोटी के साथ खाया जाता है-- आप औरों को दीजिए, मैं बाद में ले लूंगा.

जगन्नाथ 'आजाद'

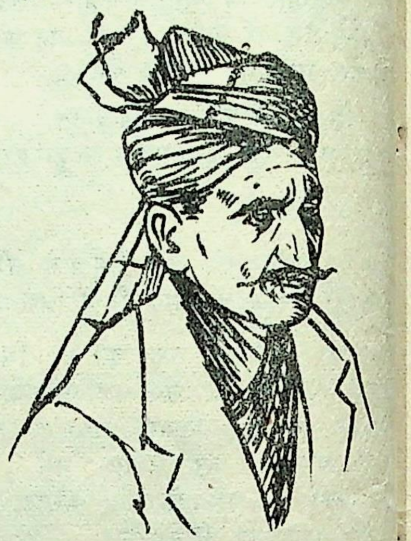

तिलोकचंद 'महरूम'

और जब उन्होंने देखा कि वह शक्कर नहीं चीनी थी तो वह संतुष्ट हो गये. सबके प्यालों में चीनी या शक्कर डालने के बाद हमीदा सुल्तान साहिबा ने पुनः उनकी ओर शक्करदानी और चम्मच बढ़ाया तो बुजुर्गवार ने उनके हाथ से शक्करदानी लेते हुए कहा-- आप क्यों जहमत फर्माती हैं, मैं खुद ही लिये लेता हूं. और यह कह कर अपने प्याले की चाय शक्करदानी में उडेल कर और चम्मच से हिला कर अपनी लंबी-लंबूतरी मूंछों को बचाते हुए सुड़क-सुड़क कर वह काढ़ा पीने लगे.

प्रतीक्षा

चाय, शक्कर, दूध के जिक्र से एक बड़ी पुरानी घटना ताजा हो गयी है. प्रकाश पंडित उन दिनों शाह आलमी दरवाजा (लाहौर) के इलाका वच्छोवाली की एक संकरी गली में रहते थे और चालीस रुपये मासिक वेतन पर अमृतधारा फार्मेसी में नौकरी करते थे कि उन्हीं की तरह के एक खस्ता हाल अदीब उनसे मिलने आये. बीवी से चाय बनाने के लिए कहा तो उस भागभरी ने बताया कि घर में दूध नहीं है.

--दूध मैं ले आता हूं. सम्मानित अतिथि ने अपनी विशालहृदयता का प्रमाण देते हुए कहा, बशर्ते कि आप दूध के पैसे दे दें.

चार आने से भी कम में सेर भर दूध मिलने वाले उस जमाने में पाव भर दूध लाने के लिए घर में रेजगारी नहीं थी इसलिए किसी अत्यंत आवश्यक काम के लिए संभाल कर रखा हुआ एक रुपये का सालम नोट सम्मानित अतिथि को दे दिया गया.

वह दिन और आज का दिन--प्रकाश पंडित की बीवी आज तक चाय के लिए दूध लाने वाले उस सम्मानित अतिथि की प्रतीक्षा कर रही है जो उन भले दिनों में उससे पूरा एक एक रुपया हथिया ले गया था.

—और वह सम्मानित अतिथि थे उस समय के उभरते कहानीकार और आज के प्रसिद्ध फिल्म-निर्माता --रामानंद सागर!

प्रतिकूल

अब जब कि खाने-पीने का जिक्र चल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकला है तो चलिए आपको गुड़गांव (हरियाणा) में कृश्नचंदर के एक अभिन्न मित्र डॉक्टर गरेवाल के यहां ले चलें, जो कृश्नचंदर के परामर्श पर फिल्म बनाने के बावजूद आज भी अदब-दोस्त और अदीबनवाज हैं.

गुड़गांव में बड़ा सुंदर बंगला बनवाया है उन्होंने और मौका-बेमौका शायरों और अदीबों को घेर-घार कर वह उन्हें अपने यहां ले जाते हैं.

उन्हें व्हिस्की पिलाते हैं. उम्दा खाना खिलाते हैं और अपने सामाजिक स्तर को नये सिरे से ऊंचा उठाने के लिए उन महफिलों में क्षेत्र के सम्मानित व्यक्तिओं को आमंत्रित करते हैं.

ऐसी ही एक महफिल में इन पंक्तियों का लेखक भी उनका मेहमान था. और अन्य कई शायरों के साथ जवांमर्द नरेश कुमार 'शाद' भी थे. घुत हो लड़खड़ाते हुए वह सम्मानित आतिथ्यकर्ता के बेडरूम

रामानंद सागर

में जा घुसे और अश्लील गालियां बकते हुए बोले—हुस्न और जवानी को कैद करने के लिए मा. . . शानदार बंगले बनवा कर उनकी नुमाइश करते हैं. न जाने उनके भीतर से क्या चीज बोल रही थी—आज रात मैं यहां सोऊंगा.

लेकिन उन्हें वहां नहीं सोने दिया गया. कार में लाद कर उन्हें उनकी मोटी-फुसक्कड़ लेकिन ब्याहता हिंदू पत्नी के पास पहुंचा दिया गया.

और यह सब कुछ देख कर इन पंक्तियों के लेखक को आत्महत्या करने वाले रूस के क्रांतिकारी कवि मायकोवस्की के जीवन की वह घटना याद आ गयी जब एक अत्यंत सुंदर अमीरजादी ने मायकोवस्की से कहा था—मायकोवस्की, तुम्हारी कविता इतनी कर्कश क्यों है? यह तो कानों के पर्दे फाड़ती है.

—यह अत्यंत कोमल हो सकती है प्रिये ! मायकोवस्की ने उत्तर दिया था—अगर तुम एक रात मेरे साथ रह जाओ.

नेक मशविरा

खाने-पीने की एक और महफिल जमी थी—स्टंट फिल्मों के हीरो चंद्रशेखर के अंधेरी स्थित बंबई के मकान में. चंद्रशेखर साहब के हिसाब से तो वह काम के सिलसिले की मीटिंग थी क्योंकि अपने मित्र भारतभूषण के मशविरे से उन्होंने स्वयं एक सामाजिक फिल्म बनाने और उसमें हीरो बनने का प्रोग्राम बनाया था. फिल्म के कहानीकार और निर्देशक तय हो चुके थे—कुंदनकुमार. और भारत भूषण साहब के सेक्रेटरी पाराशर साहब को एक हजार एक रुपये का चेक इस निर्देश के साथ दिया गया था कि जब फिल्म की कहानी सुन कर प्रकाश पंडित उसके संवाद लिखने पर सहमत हो जायें तो वह चेक

नरेशकुमार 'शाद'

उन्हें अग्रिम राशि के रूप में दे दिया जाये.

कहानी सुनाने के लिए रात के आठ बजे का समय निश्चित हुआ और उस जमाने में चूंकि बंबई में पूर्ण नशाबंदी थी इसलिए व्हिस्की की एकाध असली और अनगिनत नकली बोतलें जुटाने के बाद कहानी सुनाने का प्रोग्राम प्रारंभ हुआ.

और रात के न जाने कितने बजे जब कहानी का अंत हुआ तो उस समय तक प्रकाश पंडित बिलकुल 'सत्य की स्थिति' में पहुंच चुके थे. और जब उनसे पूछा गया कि उन्हें वह कहानी कैसी लगी थी तो उन्होंने मशविरा दिया कि वह उस कहानी पर फिल्म न बनायें.

—क्यों? प्रत्यक्ष है कि इतनी तैयारी के बाद जब कि उन्हें वह कहानी पसंद थी, वह यही पूछ सकते थे.

—क्योंकि यह फिल्म बनेगी नहीं, प्रकाश पंडित ने अपने एक हजार एक रुपये के चेक को नजरअंदाज करते हुए उन्हें समझाया—किसी तरह बन गयी तो बिकेगी नहीं. बिक गयी तो लगेगी नहीं. लग गयी तो चलेगी नहीं. चलेगी तो केवल कुर्सियां और दूसरे शो में आने वाले लोग जब सिनेमा के मैनेजर से पूछेंगे कि हाल की आधी कुर्सियां कहां गयीं, तो उन्हें जवाब मिलेगा कि पहला शो देखने वाले तोड़ गये हैं.

किस्मत

उन्हीं दिनों संगीतकार ऊषा खन्ना फिल्मालय की फिल्म 'हम हिंदुस्तानी' का संगीत दे रही थीं और उनके पूज्य पिताजी यह टोह लगा लेने के बाद कि प्रकाश पंडित स्टुडियो के मालिकान से अपने संबंधों के आधार पर उनकी बेटी को अगली फिल्म का संगीत भी दिलवा सकते हैं, प्रायः प्रकाश पंडित के कमरे में पहुंच कर बंबई की भाषा में उन्हें मसका लगाते, ऊषा खन्ना से दिलीपकुमार के इश्क की अफवाह फैलाते.

एक दिन इसी प्रकार की बातों के दौरान वह प्रकाश पंडित का हाथ पकड़ कर बैठ गये और कभी सीधा और कभी उलटा करके, कभी यहां से और कभी वहां से दबा कर फर्माने लगे—अगरचे आप किस्मत को नहीं मानते लेकिन आपका हाथ बता रहा है कि आप किस्मत के धनी हैं. किस्मत ! किस्मत ही तो सब कुछ है. किस्मत न हो तो कोई मेहनत, कोई तदबीर कारगर नहीं होती. आप खुद ही सोचिए कि यह किस्मत ही तो है जिसने फिल्मी दुनिया में आते ही आपको मुकर्जी ऐसे प्रोड्यूसर से मिला दिया.

—लेकिन इस किस्मत का नाम तो साहिर लुधियानवी है.

—यह भी तो किस्मत ही है कि साहिर लुधियानवी आपके दोस्त थे और उन्होंने आपको मुकर्जी से मिलवा दिया. वर्ना मुझ ऐसे राइटर (किसी जमाने में वह राइटर भी थे) बरसों फिल्मी दुनिया में जूतियां चटखाते रहे और किसी ने 'फिट्टे मुंह' तक न कहा. और इसीलिए मैं आपसे कहता हूं कि आप किस्मत को मान जाइए.

—अच्छी बात है, प्रकाश पंडित ने किस्मत को मानते हुए कहा, आखिर यह मेरी किस्मत ही तो है जो पिछले डेढ़ घंटे से मैं आपकी यह बकवास सुन रहा हूं. □□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बिछा हुआ आदमी • विभु कुमार

मुझे उनसे कोफ्त होने लगी थी. मैं आज तक भी नहीं जान पाया कि यह स्थिति मेरे साथ कब से शुरू हुई. बस अचानक ही मुझे महसूस हुआ कि अब तक मैं इस आदमी को कुछ और समझ रहा था, जबकि वह कुछ और ही है. मुझे दुख हुआ था कि इस आदमी के बारे में मेरा असेसमेंट गलत निकला. यूं मेरे साथ ऐसा अकसर ही होता है— कोई नयी बात नहीं थी. बल्कि बाबूजी की मुझसे अकसर यही शिकायत रही है कि मैं आदमी नहीं पहचान पाता. जिसे देखो वही मुझे मूर्ख बना जाता है. इसलिए मुझे दुख नहीं होना चाहिए था. क्योंकि मेरा विश्वास था कि जिंदगी में मैंने पहली बार सही चुनाव किया है. और अपनी इस खुशफहमी को मैं काफी दिनों तक बनाये रहा. इसीलिए मुझे पहली बार दुख हुआ— और मुझे लगा कि मैं सचमुच चुगद हूं.

वे मेरे जीवन के अजीब-से दिन थे. आज सोचता हूं तो हंसी आती है. उस वक्त मैं हर आदमी का विश्वास प्राप्त करना चाहता था और हर आदमी का प्यार पाना चाहता था. यही वजह थी कि जहां भी कहीं मैं ढलान देखता, फिसल जाता. ऐसे वक्त वह मेरे लिए एक सहरा बन कर आये थे. मैंने फौरन उन्हें पकड़ लिया. आज लगता है कि मैंने रस्सी के धोखे में सांप पकड़ लिया था.

मुझे सांप से डर लगता है, इसलिए नहीं कि वह काट लेता है, कि उसमें जहर होता है, जिससे आदमी मर जाता है, बल्कि इसलिए कि वह लिजलिजा होता है— और मुझे हर लिजलिजी चीज से कोफ्त होती है, घिनोनापन लगता है और इसलिए नफरत है. उनका व्यक्तित्व भी बेहद की हद तक लिजलिजा है, बिल्कुल सांप की तरह. यही कारण है कि वह अब मुझसे बरदाश्त नहीं होते. एक कदम आगे बढ़ कर कहूं कि मैं उन्हें बरदाश्त नहीं करना चाहता. उनका लिजलिजापन मुझमें अजीब-सी घिनौनी अनुभूति भर देता है.

मुझे मालूम है कि आपको नहीं लग रहा होगा कि यह कहानी है. लेकिन कहानी होती क्या है. शायद आपके लिए कहानी मनोरंजन का दूसरा नाम है. लेकिन मैं आपसे साफ-साफ कह दूं कि इस कहानी से आपका मनोरंजन नहीं होगा. आप चाहें तो इसे पढ़ना या सुनना बंद कर सकते हैं. मैं क्या करूं, मुझे मनोरंजन के लिए लिखना जो नहीं आता. मैं तो अनुभवों को लिखता हूं. अनुभव, जो तल्ख सच्चाइयां होते हैं और मनोरंजन नहीं देते. अतः आप मुझे माफ करेंगे— अगर आपको लगे कि मैंने आपका समय नष्ट किया हो. चूंकि अब मैं कहानी शुरू कर चुका हूं— इसलिए खत्म तो करूंगा ही.

वह अच्छे खासे आदमी हैं. बिछे-बिछे-से, यानी समर्पित किस्म के. उनकी यही खूबी है कि वह बिछना जानते हैं और इसी बिछने के बल पर वह एक सफल-दुनियादार आदमी हैं. हर आदमी उनके गुण गाता है (यूं मैंने उनकी पीठ पीछे उन्हें गालियां खाते भी सुना है) कई अवसरों पर मैंने देखा है, कि जहां उन्हें आपे से बाहर हो जाना चाहिए था— वह हंसते रहे, मुसकराते रहे. सच मानिए, अगर मैं या आप भी होते तो आपे से बाहर हो जाते.

मैं समझ गया कि आप बोर हो रहे हैं. अब बताइए मैं क्या करूं. मेरे साथ यही तो दिक्कत है कि मैं वैसा नहीं कर सकता जैसा सब करते हैं— मेरी समझ में नहीं आता कि आप मेरी मजबूरी क्यों नहीं समझते. मैं, आजकल का, तथाकथित 'पाकिट बुकी' कथाकार नहीं हूं, जो हर कहानी प्यार-मोहब्बत की चासनी में डुबा कर लिखते हैं.

लीजिए मैं फिर से उनकी बात पर आता हूं. अब कुछ दूसरी तरह से.

—सर, मैं आपके घर गया था. आप नहीं थे. भाभीजी मिली थीं.

(सर चुप हैं और होठों में मुसकरा रहे हैं.)

—सर, कुछ भी कहिए, भाभीजी से मिल कर तबियत प्रसन्न हो गयी.अन्नपूर्णा हैं, साक्षात् अन्नपूर्णा. उस दिन जो जो चीजें आपके घर खायीं, आहा! क्या बात थी. क्या स्वाद था. सच जानिए सर, तब से आज तक घर में भर पेट नहीं खाया. दरअसल खाना ही नहीं चाहता. कम-से-कम इसी बहाने स्वाद तो बना रहेगा.

(सर अब कुछ और मुसकरा देते हैं.)

—सर, वो आपसे कहा था न, सब ठीक हो जायेगा. मैंने कर दिया है. आप चिंता न करें— एकदम. (सर पीठ पर हाथ रख कर फेर देते हैं. उनका मुंह कुत्ते-सा हो जाता है. पीछे दुम-सी निकल आती है. और सारा शरीर कदमों में बिछ जाता है.)

* *

—गीताजी, आप भी क्या बात करती हैं. आप बुलायें और हम न आयें. आपने कह दिया यही बस है— हमारे लिए? (गीताजी बहूत खुश.)

—गीताजी, कमाल का लिखती हैं आप भी. चकित हूं आपकी प्रतिभा से. घर-गृहस्थी, बाल-बच्चों की झंझट के बावजूद आप लिख लेती हैं— और इतना अच्छा. वाह कमाल है. क्या बात है आपकी. (तभी गीताजी की बेटी आ जाती है) आओ बेटी, आओ. (उठ कर अपने बाजू में बैठा लेते हैं. बेटी के कंधे पर हाथ रखते हुए) और सुनाओ बेटी, कैसा चल रहा है? सब ठीक है न? (बेटी मुसकरा कर संकोच से 'ठीक चल रहा है' के भाव में सर हिला देती है.) बेटी के कंधे पर रखा उनका हाथ वैसे ही रखा है. स्पर्श सुख से वह रोमांचित हैं. गीताजी मुसकरा रही हैं.

—गीताजी, आपकी बेटी बिल्कुल आप ही की तरह होनहार है. हो भी क्यों न, आपकी बेटी है न. इतने में घर का नौकर

— सिद्धार्थ पटेल

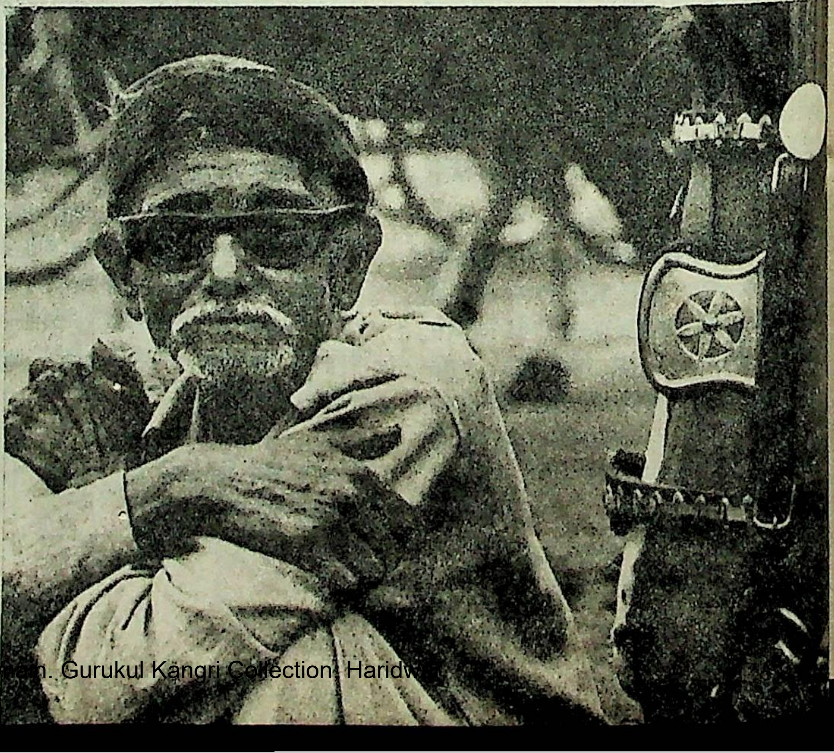

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाश्ता और चाय ले आता हूं. वह तृप्त भाव से उसे पाते हैं. बेटी और गीताजी उन्हें साग्रह खिलाती हैं.

—गीताजी, अब आप हमारे घर कब आ रही हैं? वह मुसकरा कर गीताजी और बेटी दोनों की ओर देखते हैं. दोनों अपने-अपने ढंग से भाव ग्रहण करती हैं.

—आना बेटी मम्मी के साथ. बेटी के कंधे पर एक बार फिर हाथ रखते हुए वह कहते हैं. बेटी और गीताजी अपने-अपने ढंग से मुसकराती हैं. वह गुलामों की तरह बिछ जाते हैं.

★ ★

—आपके जैसा नाकारा और काहिल आदमी मैंने नहीं देखा.

(वह चुप हैं. सिर झुकाये हुए.)

—आपसे पचासों बार कहा है, आप सुनते-समझते ही नहीं.

(वह फिर भी चुप हैं.)

—आपको अपनी इज्जत का खयाल न सही, मेरी इज्जत का खयाल तो रखिए.

(वह अब भी चुप हैं)

—जाइए और जैसा कहा है कर के लाइए. जाहिल कहीं के. जाने कहां-कहां से आ जाते हैं. यही एक जगह मिली है कमबख्तों को आ कर मरने के लिए.

(उनके चेहरे से दयनीयता चू रही है. उन्हें इसकी चिंता नहीं है. वह हाथ बांध उसी एक मुद्रा में खड़े हैं. जानते हुए भी कि गलती उनकी नहीं है.)

—लेकिन सर. . .

—फर्माइए.

—(स्निग्ध भाव से) सर, क्रोध करना भी कोई आपसे सीखे. डांटते भी हैं तो सामने वाले की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए. सर, आपका क्रोध भी आपका साथ नहीं देता. कितने स्नेहिल हैं आप. क्रोध तो आपकी रगों में जैसे है ही नहीं. मैं तो ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूं कि आप जैसा बास सभी को मिले. क्या व्यक्तित्व है आपका, बिल्कुल मक्खन की तरह— स्निग्ध और केवल स्निग्ध. (बास मुसकरा देता है. वह धन्य हो जाते हैं.) उनका समूचा व्यक्तित्व बिस्तर हो गया है — और बास उस पर लेट गया है.

★ ★

—क्या कर रहे हो आजकल?

(गद-गद होते हुए)

—बस, आपकी कृपा है.

—कहां हो आजकल?

(समर्पित मुद्रा में)

—जी, आपके चरणों में.

—सब कुछ ठीक चल रहा है न?

(दयनीय-सी मुद्रा में शब्दों को थोड़ा लंबा खींचते हुए)

—जी. . . हां ऽ आं ऽ ऽ ठीक ही चल रहा है. आपका आशीर्वाद चाहिए बस.

—और कुछ?

—(वे) बस आशीर्वाद.

—शरमाओ नहीं, निःसंकोच कहो. जो तुम चाहते हो, जैसा चाहते हो, वैसा ही होगा. (एक क्षण उनके चेहरे को देखते हुए) मैंने कहा न, निःसंकोच कहो—जो तुम चाहोगे, जैसा तुम चाहोगे, वैसा ही हो जायेगा.

(भक्ति की मुद्रा में)

—इसीलिए तो कह रहा हूं—बस आपका आशीर्वाद, आपकी चरण धूलि चाहिए.

—अच्छी बात है, आश्वस्त रहो, सब हो जायेगा. परसों किसी भी वक्त आ जाना. उनका मुंह 'प्रणाम' कह रहा था और शरीर का रोम-रोम दंडवत की मुद्रा अख्तियार किये हुए था.

विभुकुमार (जन्म : १३ मार्च, १९४२) ने आज के मध्यम वर्ग की कुंठाओं, आस्थाओं और परंपराओं से चिपके रहने की मजबूरी को सहज ढंग से अभिव्यक्ति दी है. इनकी कहानियां व्यवस्था की मार से पिटे और त्रस्त आदमी की कहानियां हैं और वे समय-सत्य से पूरी तरह जुड़ी हुई हैं.

★ ★

—हो सकता है (वह कह रहे थे) आई मे बी रांग. लेकिन, व्हाट आई फील, कि यह प्रश्न और इसका संदर्भ यूं न हो कर, यूं होना चाहिए. क्योंकि मेरे विचार में जीवन के वृहत्तर संबंधों से जब कोई चीज जुड़ती है, तो वह कुछ और ही शक्ल अख्त्यार कर लेती है. लेकिन मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि. . .

—(कोई एक टोक कर) लेकिन आप जो कह रहे हैं. . . उसमें. . .

—(उसे बीच में ही टोक कर) मैंने आप लोगों से पहले ही कहा न कि आई मे बी रांग, और जैसा कि, व्हाट आई फील. . .

(और अपने सारे वक्तव्य के दरम्यान या तो वे कमीज के बटन को घुमाते रहे या फिर एड़ियों के बल पर उचकते रहे. मुझे उनकी इस मुद्रा पर अकसर हंसी आती रही)

(किसीने फिर टोका)

—(हलके से दुखी भाव से) अच्छी बात है अगर आप लोगों को नहीं पसंद ये सब तो मैं अपने शब्द वापस लेता हूं. पर जैसा कि मैंने पहले ही कहा था, आई मे बी रांग, बट व्हाट आई फील. . .

और वह अपनी कुर्सी पर बैठ गये. चेहरे पर हलके से पराजय के भाव थे. थोड़ी देर में उठ कर वह बाहर चले गये. इसके बावजूद उनकी लंबी छाया कमरे में बिछी हुई थी.

★ ★

और मैं फिर वहीं आ गया हूं. मुझे नहीं मालूम कि आप सुधी और विज्ञ जन इसे कहानी मानेंगे भी या नहीं. वैसे न मानें तो ही अच्छा है. कहीं आपने इसे कहानी मान लिया तो आप इसमें भोगा हुआ यथार्थ, परिवेश की प्रामाणिकता, और न जाने क्या-क्या खोजने लगेंगे. इसीलिए मैं आपसे साग्रह-आग्रह कर रहा हूं— इसे आप कहानी न ही मानें तो अच्छा है.

लेकिन मैं जानता हूं. आप नहीं मानेंगे. क्योंकि अगर इसे आप कहानी नहीं मानेंगे, तो आपका मनोरंजन तो नहीं होगा— जबकि आप जानते हैं, मैं मनोरंजन के लिए नहीं लिखता.

मुझे मालूम है आप फिर भी नहीं मानेंगे. इसलिए मैं आपको बता दूं कि इसका संपूर्ण परिवेश, घटना और पात्र काल्पनिक हैं. किसी भी जीवित अथवा मृत आदमी से इसका कोई संबंध नहीं. . . बस. □□□

संपादक हस्ताक्षर, तात्यापाड़ा, रायपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

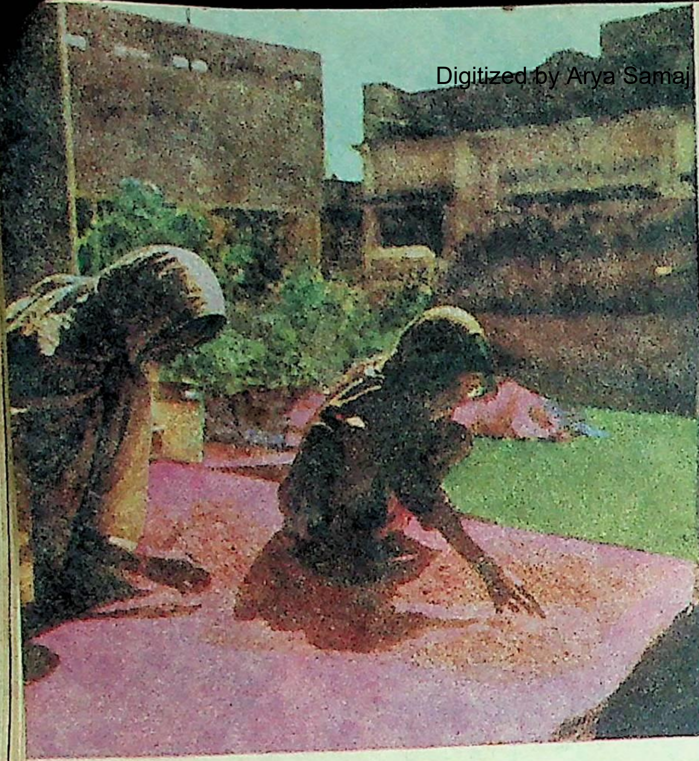

सत्यपाल प्रेमी

पार्टी • रश्मि तन्खा

उसने हल्के-से रिसीवर रख दिया. फिर कमरे में आकर वार्ड-रोब से अरुणा के कपड़े एक-एक कर के निकाले और उन्हें हैंगर से अलग कर पलंग पर लगा दिया . फिर सोचा , अब अपने कपड़े भी निकाल ही लिये जाएं. छोड़ो, वह भी कर लेंगे.

वह बाहर बाल्कनी पर आ गयी. एक भरपूर नजर आसमान को देखा. कोई दस मिनट पहले जिन सुरमई बादलों में सुनहरी चमक छोड़ कर वह अंदर गयी थी, अब गुलाबी हो उठे थे. डूबता हुआ सूरज आसमान के नीलेपन में लाल टिकुली-सा चमक रहा था. कैसी सिंदूरी शाम है देखने को, डूबते हुए सूरज के रंग और सुनने को खामोशी. सोचा, अभी तो इन सबके साथ आराम से घंटा, डेढ़ घंटा और गुजर सकता था. गुजरने को अब भी गुजर सकता है. रात को आठ बजे खाने पर निमंत्रण है, कोई जल्दी नहीं है. मगर अब उसका मूड उखड़ गया है. अब स्थिति यह है कि न तो इस शाम का ही आनंद लेते बन रहा और न पार्टी के लिए ही कोई विशेष उत्साह अनुभव हो रहा है. उसे तो ऐसा लग रहा है जैसे एक बेकसूर शाम बेमौत मार दी गयी हो. शामों के लिए, उसके मन में यह कमजोरी कहीं बहुत पहले से चली आ रही है.

स्टेशन से ब्राहर निकल कर अगर बायें मुड़ जाएं और कुछ दूर तक सीधे चल कर बंगला नंबर छः से दायें घूम जाने वाली सड़क पर चलना शुरू कर दें तो सीधे घंटाघर के पास पहुंच जाएंगे. फिर युनिवर्सिटी, मेडिकल कालेज, इन्हीं के आस-पास कहीं एक बड़ा-सा पार्क है जिसमें वह रोज शाम को अन्य बच्चों के साथ सैर के लिए भेजी जाती है. पता नहीं उस पार्क का सही नाम क्या है —— हैलेट पार्क या नकवी पार्क? शायद तभी डूबते हुए सूरज के रंग उसके मन में उतरते चले जाते हैं.

उसे पार्क में बड़ा अच्छा लगता है. सुनहरी धूप चादर-सी बिछ कर कैसे हर वस्तु को झांप लेती है. उदास, वीरान पतझड़ में भी उसे यहां आना अच्छा लगता है. लाल पड़ गयी लान की सूखी हुई घास, कुछ सूखे पेड़-पौधे. . . अक्सर जब अन्य बच्चे मेरी गो राउंड और फिसलने पर जुटे रहते हैं, तो वह चुपचाप आकर झरती पत्तियों का संगीत सुनने पेड़ के नीचे खड़ी हो जाती है. उनके यहां तो इतने बड़े अहाते में गेट के पास केवल दो ताड़ के पेड़ हैं. शायद इन्हीं पेड़ों के कारण उनके बंगले का नाम 'पामट्री' है. वहां ऐसे बड़े-बड़े पेड़ तो हैं ही नहीं जिनके नीचे खड़े हो जाओ तो पीली मुड़ी हुई पत्तियां एक-एक कर के ऊपर से झरती हुई नीचे पैरों तले बिछ जाएं —— बिछती ही चली जाएं. ये स्पर्श सदा याद रह जाने वाले स्पर्श हैं. समझने में दुष्कर, उन झरी हुई पत्तियों का अमिट मृतपन, उसकी चेतना पर अंकित होता रहता है —— होता रहता है. तब से चली आ रही, शामों के लिए इस कमजोरी ने, उसके मन को आज भी बांध रखा है. किसी के साथ उसे अपनी शाम शेयर करनी पड़े, यह उसे बिल्कुल अपील नहीं करता है. अक्सर ऐसा भी हुआ है कि वह इन में अकेली पड़ गयी है, लेकिन उसे कोई शिकायत नहीं हुई है. किसी गलत आदमी के साथ समय व्यतीत किया जाए, इससे तो अच्छा है समय बिल्कुल अकेले ही बिता दिया जाए — यह उसकी थ्योरी है.

कभी-कभी तो उसे अपनी शामें कई लोगों के बीच में बांट कर भी जीनी पड़ी हैं. तब उसे महसूस हुआ है जैसे एक पूरी शाम टुकड़े-टुकड़े कर के उसके हाथ में थमा दी गयी हो. चलो, आज फिर वही टुकड़े-टुकड़े हुई शाम सही. पार्टीज और चेहरे ——चेहरे नहीं, मुखौटे. वह भाग जाना चाहती है, इन जाने-पहचाने चेहरों से कहीं दूर.

पता नहीं क्यों, कभी-कभी हर परिचय उसे, एक भार-सा लगने लगता है. उसका मन होता है एक बैग में कुछ कपड़े डाल कर बिना किसी से कुछ कहे चुपचाप घर से निकल पड़े और घूमती रहे ——घूमती रहे. न जाने कैसी छटपटाहट है —— मन होता है कोई बंधन न रहे. फिर लगता है, नहीं, शायद यह बंधन ही जीवन को नये अर्थ दें. वह यह भी जानती है कि यह मुक्ति-वुक्ति की बातें वह केवल सोच भर सकती है, इस दिशा में कर कुछ नहीं सकती है. हर स्त्री कुछ संदर्भों मे घिर कर जीती है. वह पहले किसी की बेटी, बहन, पत्नी या मां होती है —— फिर कुछ और. शायद सब कहीं ऐसा ही होता है. सभी देशों में स्त्रियां ऐसे ही जीती हैं. लेकिन वे इन दायित्वों में इतनी नहीं उलझ जातीं कि उनके 'व्यक्ति' की हत्या हो जाए. वे मात्र इन्हीं बातों भर की हो कर नहीं रह जातीं.एक न एक दिन उनका 'व्यक्ति' स्वीकारा जाता है. क्या यह छटपटाहट उसी 'व्यक्ति' की छटपटाहट है? उसे याद है, जब काफी दिन बाद उसने अरुण से विवाह करने के लिए हामी भर दी थी, तो प्रभा दी ने क्या कहा था, 'यू हैव ए पर्सनेलिटी बट यू मस्ट नैवर एस्सर्ट इट'. उसे लगा था जैसे किसी ने उसे पहाड़ी के किनारे पर लाकर नीचे का खड्ड दिखा दिया है. शायद इसीलिए किसी लड़की के विवाह का निमंत्रण पाकर उसे लगता है : लो हुई आज एक 'व्यक्ति' की हत्या. जिसकी विचार शक्ति छिन जाए, वह 'व्यक्ति' नहीं रहता.

★ ★

हां, पार्टी में जाने के पूर्व मैचिंग साड़ी, बिंदी और चूड़ियों का चयन करते समय उसे एक पुलक-सी होती अवश्य है. लेकिन फिर यह ख्याल आते ही कि हर पार्टी की शाम इतिहास की तरह अपने को दोहराती है, उसे ऊब होने लगती है. क्यों न कहीं ऐसी जगह चला जाए जहां सब नये चेहरे हों? वह एक एक की आंखों में झांके और अपने आपसे कह उठेः हम एक दूसरे के लिए अजनबी हैं और इसलिए एक दूसरे से मुक्त. तब कितना अच्छा हो, कम से कम जिंदगी में एक बार तो उसका व्यवहार सभी संदर्भों के भार से मुक्त हो सके —— एकदम 'अनकंडीशंड'. मैंने क्या कहा, किसने क्या सुना, किसने क्या समझा? हर लड़की के नाजुक कंधों पर लदा इन बातों का बोझ भी कितना करुण है——एक दम पथैटिक

उसे मालूम है, आज की शाम कैसे शुरू होगी. ठंडे कोकाकोला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

के गिलास को वह उंगलियों में थामे रहेगी और सोचती रहेगी यह गिलास कभी खत्म न हो. अगर गिलास खाली हो गया तो उससे जरूर कहा जाएगा — अनैदर कोक? और वह कहेगी... वही, जो हर बार कहती है. पूछने वाले की ओर देखेगी, फिर थोड़ा-सा मुसकुरा कर कहेगी 'नाट राइट नाउ'. कभी-कभी लगता है, पूछने वाला भी महज औपचारिकता बरत रहा है. असल में उसका कोकाकोला वगैरह लाने का कतई इरादा नहीं है. वह भी यही चाहता है कि हर बार पूछने पर उसे यही कहा जाए 'ए लिट्ल लेटर पर-हैप्स' और बात यों ही मुसकराहटों तक आकर खत्म हो जाए. पूछने वाला अपनी ओढ़ी हुई शिवैल्री को जल्दी पैक कर के रख दे — दूसरे मौके के लिए. दो अलग-अलग संस्कृतियों का बोझ अपने दो अदद कंधों पर ढ़ोता बेचारा हिंदुस्तानी आदमी भी सचमुच कितना बेचारा है!

—आरंट यू थ्रिल्ड, वीमेन जस्ट लव पार्टीज? अरुण उससे पूछ रहे हैं और वह उनका भ्रम तोड़ना नहीं चाह रही है. क्या वह यह बर्दाश्त कर पाएंगे कि उनकी पत्नी एक अपवाद है? विलक्षणता को समझना पड़ता है और बीवी को समझना कितनी फालतू-सी बात लगती है. प्रेमिका के व्यवहार की पेचीदगी की बात और है — बीवी, हर आदमी सुलझी हुई चाहता है. उसकी तबीयत होती है कहे 'ओह, आइ हेट सच इवनिंग्ज'. लेकिन अगर अरुणा ने पूछा 'बट व्हाई'? तो वह क्या कहेगी? मुझे शामें अकेले ही बिताना अच्छा लगता है... या फिर 'तुम्हारे साथ' वह कुछ रुक कर जोड़ देती है. और तब अरुण मुसकराते हैं और कहते हैं यू नो समथिंग, आइ डिटेस्ट पार्टीज. सुन कर वह चौंकती है. तुम्हें आश्चर्य हो रहा है? वह पूछते हैं. फिर घड़ी की ओर देख कर कहते हैं वी बेटर लीव नाउ — इट्स आल मोस्ट टाइम.

मिस्टर शंकरन ने शायद यह सवाल आज पच्चीसवीं बार दोहराया है 'हाउ डू यू लाइक दिस प्लेस?' नहीं, पिछली बार झाज के यहां पार्टी में इन्होंने कुछ दूसरी तरह पूछा था, शायद 'हाउ आर यू लाइकिंग दिस प्लेस' — या कुछ ऐसा ही. और उसने उन्हें वही जवाब दिया है जो आज से पहले चौबीस बार दे चुकी है : इट्स नाट बैड ऐट आल — आइ रादर लाइक इट. जब कि चाहती है कहे, 'डैम इट — इट्स हौरीबल!'

वह आंखे घुमा कर चारों ओर देखती है — कौन इतनी पी गया है कि अब रो देगा. कहीं उसी के कंधे पर सिर रख कर किसी ने रोना शुरू कर दिया तो? उसे अपने ऊपर हंसी आती है; कैसे ऊल-जलूल विचार आते हैं कभी-कभी उसके दिमाग में भी! कौन कितना चहकने लगा है? न जाने क्यों उसे हवा में उड़ते गैस के गुब्बारे याद आ जाते हैं.

उसे सुनाई पड़ता है मिसेज खन्ना किसी से कह रही हैं — पता, मिसेज विष्णुदत्त अभी तक नहीं लौटी हैं, अप्रैल में गयी थीं, अब अगस्त बीत रहा है.

—असल में सर्किट हाउस में, एक कमरे में — दिक्कत होती होगी, कोई कह रहा है.

—नहीं जी, कुछ-कुछ और बात है.

—अच्छा?

वह सोचती है 'होगी'. वह ऊबने लगती है. फिर सोचती है, यह मिसेज खन्ना भी खूब हैं. चिट्टे बालों वाले विष्णुदत्तजी की और क्या बात हो सकती है?

विष्णुदत्त का नाम सुनते ही महिलाएं अपनी-अपनी कुर्सी हल्के-से मिसेज खन्ना के पास खिसका लेती हैं.

—अरे, इनका है कुछ— चक्कर. कोई लेडी डाक्टर है, उसके साथ होटलों में रूम लेकर रहते-फिरते हैं.

—अच्छा! महिलाएं चौंकती हैं.

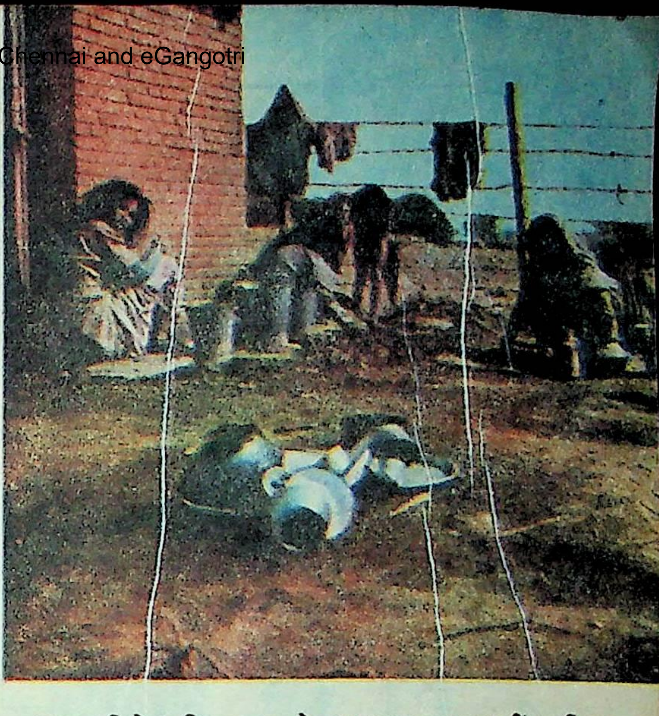

एम. के. सरीन

मगर मिसेज विष्णुदत्त को इस तरह जाना नहीं चाहिए था. इस बार वह चौंकती है — क्यों?

—अरे, आदमी थोड़े दिन इधर-उधर घूम-फिर कर पुनः बीवी के पास लौट आता है.

वह सोचती है —क्यों? क्या इसलिए नहीं कि वह जानता है, चाहे वह जब भी लौट कर जाए, उसकी पत्नी उसी जगह, उसी रास्ते पर खड़ी मिलेगी — ठीक लैंपपोस्ट की तरह — जहां वह उसे किसी 'अन्य' के लिए छोड़ गया था! बात उसकी समझ में नहीं आती है. जब स्त्री स्वयं ही अपना स्वाभिमान नहीं सहेज पाएगी तो कोई दूसरा उसे क्यों सम्मान देने लगा? उसे वह प्रसंग याद आ जाता है जिसे पढ़ कर रामायण पर सिर रख कर अक्सर वह बहुत रोई है. दुबारा अपनी विशुद्धता प्रमाणित करने के लिए सीता ने धरती में समा जाना क्यों चुना? लेकिन अब रोना नहीं आता है. अब लगता है, ठीक ही किया. कहीं फिर कोई अफवाह फैलती और रामचंद्र उनसे तीसरी बार परीक्षा देने को कहते!

ठीक-ठीक पहचान नहीं पा रही है... यह सामने विष्णुदत्त जी ही हैं? चिट्टे बालों वाले विष्णुदत्त एकदम काले बालों में उसके सामने खड़े हैं. तो क्या सचमुच...? इन्हें अपने बालों को काला बनाने की क्या जरूरत थी? उसे खीज होती है. काश, उन्हें पता होता एडवर्ड हीथ अपने सफेद बालों में भी कितने अच्छे लगते हैं. कौन जाने, शायद लेडी डाक्टर को इनके काले बाल ही पसंद हों. अगर ऐसा होता है तो निश्चय ही वह इनसे बहुत छोटी है. उसके बाल अभी काले ही होंगे.

आखिर मिसेस खन्ना उन्हें टोक ही देती हैं— अब आप मिसेज विष्णुदत्त को बुला ही लें. कितने दिन हो गये हैं, उन्हें ऐसे गये हुए.

—असल में छोटे से कमरे में...उस पर गर्मी का मौसम.

—आखिर जब आप नये-नये सर्विस में आए थे, तब भी तो यहीं एक कमरे में ही...

विष्णुदत्तजी, जिन पर ड्रिंक्स की खुमारी छाने लगी है, थोड़ा उनके पास खिसक आते हैं और कुछ शोखी से कहते हैं— तब की बात और थी, यंग थे— न सर्दी महसूस होती थी— न गर्मी. अब तो मच्छर मारते-मारते और पानी पीते-पीते सारी रात गुजरती है. मिसेज खन्ना कुछ झेंप-सी जाती हैं. वेल सर्वज हर राइट— वह सोचती है. •

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

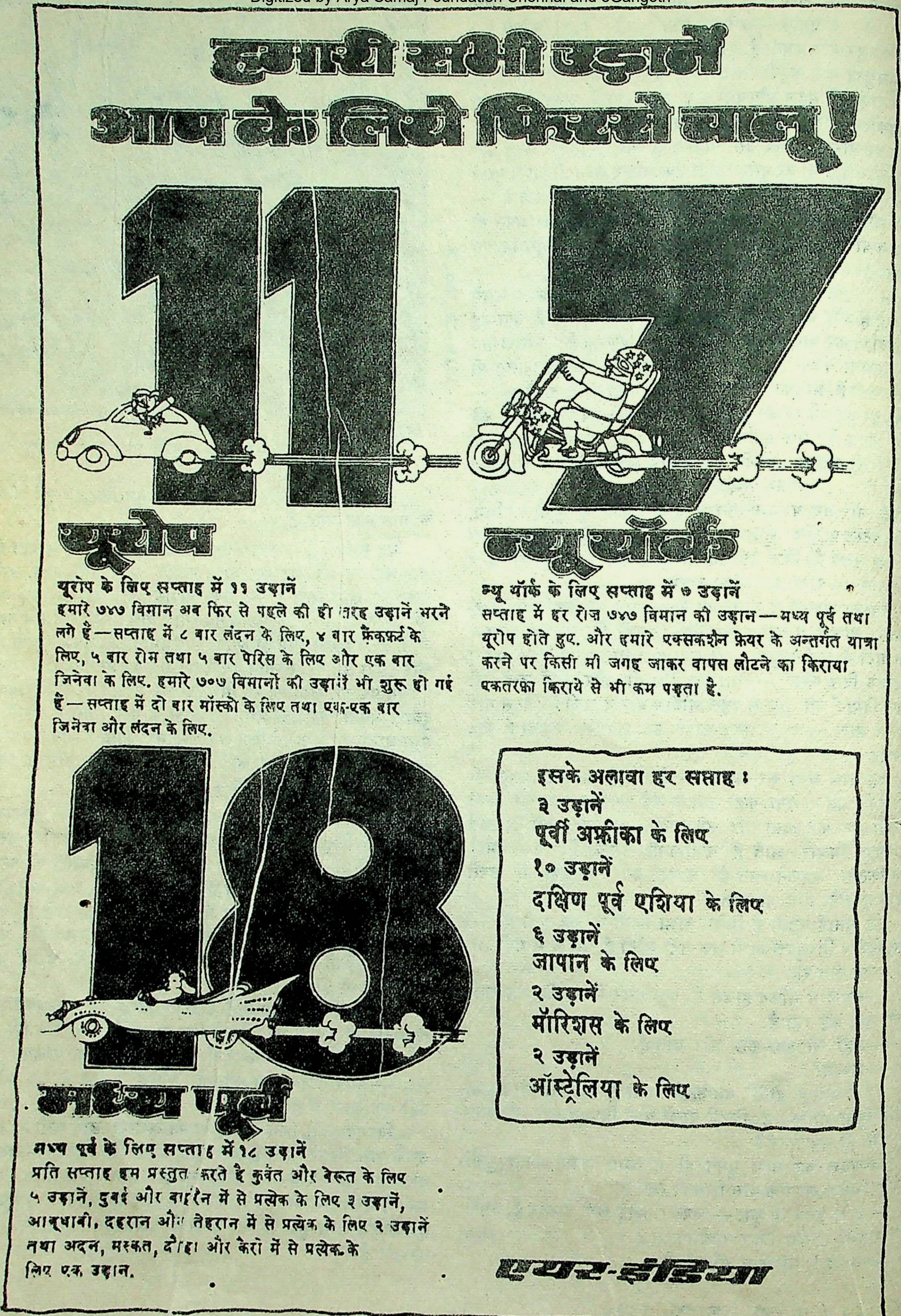

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे लगता है औरत की जिंदगी में शायद कोई समय ऐसा नहीं होता है जिसमें वह पूरी तरह सुरक्षित महसूस करती हो. और शायद जब उसे सुरक्षा की सबसे अधिक जरूरत होती है, तब वह बिल्कुल असुरक्षित महसूस करने लगती है. ढलती उम्र के साथ उसका आत्मविश्वास उल्टे बिखरने लगता है.

★ ★

न मालूम कब की बात उसे याद आ जाती है — सेमिनार में उसे पेपर पढ़ना है. लेकिन वहां पढ़ने से पहले चाहती है उसे अपने रिसर्च गाइड प्रो. गोयल को दिखा लेना. अंतिम क्लास पढ़ा कर निकलते-निकलते उसे काफी समय लग जाता है. कालेज से यूनिवर्सिटी काफी दूर है. जब डिपार्टमेंट पहुंचती है, प्रो. गोयल जा चुके होते हैं अतः उसे उनके घर जाना पड़ता है. वे उसे मिसेज गोयल से मिलवाते हैं. मिसेज गोयल उससे चाय के लिए पूछती हैं. फिर बड़े तपाक से कहती हैं, 'डोंट बी फार्मल इन दिस हाउस ऑर यू शैल बी मिजरेबल'. उसे उनकी यह आत्मीयता अच्छी लगती है. फिर वे लोग उसके पर्चे पर बातचीत करने लगते हैं. खासी चर्चा रहती है. प्रो. गोयल कई सुझाव भी देते हैं. इस बीच मिसेज गोयल तैयार हो कर कहीं जाने के लिए बाहर निकलती हैं. वह धीरे से कहती है, 'हमारे लिए भी एक रिक्शा मंगवा दीजिए'. उस तरफ रिक्शा बहुत मुश्किल से मिलता है. बहुत देर हो जाती है, मिसेज गोयल जाकर वापस भी आ जाती हैं लेकिन रिक्शा नहीं मिलता है. प्रो. गोयल श्रीमती गोयल से कहते हैं— शी इज टेकिंग हर वर्क सीरियसली.

—हां, लगता तो ऐसा ही है — सो इट अपीयर्स— पता नहीं उनके स्वर में क्या है जो उसकी चेतना में बिंध जाता है.

वह नमस्ते कर के, गोयल को धन्यवाद दे कर पैदल ही चल पड़ती है. रास्ते में सोचती है, मिसेज गोयल उसे लेकर व्यर्थ क्यों चिंतित हो गयीं? 'लेकिन मिसेज गोयल', वह मन ही मन कहती है, 'आप को मुझसे कोई खतरा नहीं है. आप नाहक हर ताजगी से डरने लगी हैं. रहीं मेरी यह 'लुक्स' तो अच्छा होता यह किसी महत्वाकांक्षी लड़की को मिलती. खतरा आपको उनसे हो सकता है जिनके लिए विभागाध्यक्षों के सुसज्जित कमरो में कहीं-कहीं सोफा-कम दीवान भी रहता है. फिर प्रो. गोयल तो अच्छे-खासे, भले, साफ नीयत आदमी हैं. फिर उसे लगा — कौन जाने? आदमी को उसकी स्त्री ही सबसे ठीक तरह जानती है. लेकिन शायद यह भी आवश्यक नहीं है. उसे अमृता भाभी याद आ जाती हैं.उन्हें देखो. क्या सचमुच उन्हे भय्या की असलियत का पता नहीं है? जब अमृता भाभी कहतीं हैं, 'ये तो बिल्कुल भगवान रामचन्द्रजी हैं', तो उसका मन होता है,उन्हे चुप करा दे,'नहीं, भाभी नहीं, रामचन्द्र और शंकर नहीं अगर पति को भगवान ही कहना है तो कृष्ण भी चलेगा.'

—आइए जी, खाने, मिसेज कपूर आदमियों से कह रहीं हैं. खाना लग गया है. 'आइए जी', मिस्टर कपूर महिलाओं से कह रहे हैं. जिस सोफे पर एक अन्य महिला के साथ वह बैठी है, उसके पीछे पहुंच कर उसके कंधे पर कुछ ज्यादा ही झुक कर वे लगभग उसके कान में ही कहते हैं —'प्लीज कम'. उसे बुरा लगता है, फिर सोचती है, शायद उसे वहम हुआ हो.

—आप तो बहुत झटक गयी हैं, एक हाथ में प्लेट थामे हुए मिस्टर मुकुंद मिसेज झा से कह रहे हैं. मुझे तो पहचानने में भी मुश्किल हुई. फिर उसकी ओर मुड़ गये हैं,बट आइ मस्ट से यू आर जस्ट द् सेम – इन फैक्ट यू आर लुकिंग यंगर ऐण्ड प्रिटीयर, वह उसे तीन वर्ष बाद देख रहे हैं. अब उसके पास एक बच्ची भी है. वह जल्दी-जल्दी तय कर डालना चाहती है कि मिस्टर मुकुंद ने नशे में यह बात कही है या अपने पूरे होशोहवास में. अगर नशे में कही है तो संभव है, इसमें सच का कुछ अंश हो अन्यथा एकदम झूठ है. क्या सचमुच वह बड़ी दिखने लगी है? अपने पुराने रीति-रिवाज भी कितने अच्छे थे जब पत्नी पति से कम से कम दस वर्ष छोटी होती थी.

कौन जाने कभी अरुणा भी . . . विष्णुदत्त की तरह. . . . यह क्या, कोई जरूरी तो नहीं हर व्यक्ति विष्णुदत्त ही हो जाए? उसे लगता है, वह यों ही डर गयी है. और शायद इसीलिए उसे हर आदमी विष्णुदत्त लगने लगा है. लेकिन फिर भी, अपने को किसी ऐसी स्थिति के लिए मानसिक रूप से तैयार रखने में तो कोई हर्ज नहीं है? अगर कोई चीज अचानक होती है तो अधिक तोड़ कर रख देती है. पर अगर अरुण ने ऐसा कुछ न किया तो? तब तो एक अपराध-बोध ही उसे खाने लगेगा.

—थैंक गॉड इट्स ओवर! कार में बैठते हुए अरुण ने सब से पहले यही बात कही है. वह और अरुण दोनों दो सिरों पर बैठ गये हैं. अब फियेट की रीयर विन्डो से दूर से ही देख कर किसी को भी पता चल जाए कि वे दोनो पति-पत्नी हैं. सब पति-पत्नी ऐसे ही बैठते हैं. जैसे स्पष्ट कर देना चाहते हों, 'हम दोनों पति-पत्नी हैं— हम लोगों के बीच 'ऐसा-वैसा' कुछ नहीं है.'

अक्सर रेस्त्रां में घुसते ही वहां बैठे जोड़ों को देख कर उसे पता चल जाता है कि वे पति-पत्नी हैं या नहीं. अगर पुरुष पत्रिका पढ़ता हुआ या किसी दूसरी स्त्री को देखता हुआ नजर आता है या एकदम निर्लिप्त-सा दिखता है, तो उसे विश्वास हो जाता है, जरूर यह इस स्त्री का पति ही होगा. पता नहीं शादी होते ही दिलचस्पी के टिमटिमाते जुगनू कब दम तोड़ देते हैं. फिर किसी आदमी के लिए यह बात भी तो कितनी शर्म की बात है कि वह अपनी पत्नी से प्यार करता है. लोग अगर सुनें तो क्या कहेंगे — रहे यार, तुम भी पूरे घोंचू के घोंचू ही!

ओफ, एक बज गया है– सुबह जल्दी उठा देना — हूं? मुझे सुबह पौने आठ की फ्लाइट पकड़नी है. कुछ गड़बड़ चल रही है— जाकर देखना है वहां. वह एकदम सजग हो आती है. वह एक कामकाजी, व्यस्त आदमी की पत्नी है. पहले जब वह लेक्चरर थी, तब प्रभा दी या अपनी अन्य बहनों की बातें सुन कर उसे बेहद हंसी आती थी. जब वे लोग आपस में बात करते हुए कहतीं, 'अरे, हमारे डिपार्टमेंट में तो . . . .या 'हमारी नेवी में' आदि. इन लोगो ने भी अपने को अपने अपने पतियों के पेशों के साथ कैसा आइडेंटीफाइ कर लिया है जैसे अपना अलग कुछ हो ही नहीं! और वह तो अपने को कभी भूल ही न पायी.

सब कहीं बीच में लहराते हुए अजनबियत के अथाह समुद्र हैं और एक छटपटाहट है कि कैसे इन पर छोटी-बड़ी बातों के सेतु खड़े हों और एक दूसरे तक पहुंचा जा सके लेकिन इन समस्त यत्नों के बावजूद असल में कौन किस तक पहुंच सका है? □□□

द्वारा श्री एस. एस. एन. तन्खा,
३१, कैसर बाग, लखनऊ

रश्मि तन्खा : (जन्म ३ जनवरी १९३८) : लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम. ए. करने के बाद कुछ अर्से तक अध्यापन किया है.

पिछले कुछ वर्षों से कहानी-लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवतीचरण वर्मा की ग्यारहवीं कहानी

गुन न हिरानो, गुन गाहक हिरानो है

हिस्ट्री कांग्रेस का शानदार अधिवेशन समाप्त हुआ और उस अधिवेशन में दिल्ली से आए हुए डाक्टर श्यामनाथ वर्मा के पेपर की धूम थी. इस कांग्रेस के संयोजक थे, इतिहास विभाग के अध्यक्ष डाक्टर जयदयाल शर्मा, और डाक्टर जयदयाल शर्मा डाक्टर श्यामनाथ के पुराने मित्र थे. तो डाक्टर शर्मा ने डाक्टर वर्मा को उस दिन शाम के समय अपने यहां भोजन के लिए आमंत्रित कर दिया.

अकेले एक आदमी की दावत निहायत मनहूस होती है, जयदयाल की पंडितानी ने बताया तो श्री जयदयाल शर्मा ने राजनीति विभाग के अध्यक्ष और अपने पड़ोसी डाक्टर राधेश्याम चौरसिया को भी निमंत्रित कर दिया, और उधर डाक्टर श्यामनाथ वर्मा अपने साथ आए हुए युनिवर्सिटी ग्रांट कमीशन के वरिष्ठ अधिकारी सरदार भूपेंदर सिंह को लेते आए.

आधुनिक शिष्टाचार के नियमों का पालन करने के क्रम में डाक्टर जयदयाल शर्मा ने चार गिलासों में व्हिस्की डाली और बातचीत करने बैठ गये. डाक्टर श्यामनाथ वर्मा ने कुछ मजे में आते ही पूछा— अरे शर्मा, वह शास्त्री युनीवर्सिटी का अविनाशचंद्र नहीं दिखाई दिया?

कड़ुवा-सा मुंह बनाते हुए डाक्टर जयदयाल शर्मा ने उत्तर दिया— भई वर्मा, तकदीर का सिकंदर जिसे हम कह सकते हैं, वह उसे समझो. न जाने कैसे उसने मिडिल ईस्ट के विश्वविद्यालयों का निमंत्रण पटा लिया. काबुल, तेहरान, अंकारा और एथेंस युनीवर्सिटियों के तीन महीने के भारतीय इतिहास के लेक्चर टूर पर निकल गया है— वहां मौज कर रहा होगा!

और तभी सरदार भूपेंदर सिंह बोल उठे—अरे, वह शास्तरी युनीवर्सिटी का अविनाश चंदर, क्या कहा? लेक्चर टूर पर गया है? तभी उसके खिलाफ जो इंक्वाइरी चल रही थी, वह रुक गयी.

राधेलाल शर्मा चौंक उठे— कैसी कंक्वाइरी सरदारजी?

—अजी उसके खिलाफ किसी ने शिकायत कर दी. वह तो एम. ए. भी नहीं पास है, योरोप से जाली डाक्टरेट खरीद लाया है और सांठ-गांठ लगा के शास्तरी युनीवर्सिटी में हिस्ट्री का प्रोफेसर बन गया. इस मुल्क का क्या हो गया है जी?

डाक्टर श्यामनाथ की आंखें चमक उठीं—इस देश में हमेशा से यही चलता आया है सरदारजी! पिछले दिनों मध्य प्रदेश के इतिहास की खोज करते हुए मेरे सामने एक बड़ी दिलचस्प घटना आयी. मैं सोच रहा हूं कि उस घटना का का इतिहास में उल्लेख किया जाय या न किया जाय— कुछ समझ में नहीं आ रहा.

—जरा हम लोग भी सुनें, एक की अपेक्षा अनेक रायों का अधिक महत्व होता है, डाक्टर राधेलाल चौरसिया बोले.

कुछ गला साफ करके डाक्टर वर्मा ने कहानी आरंभ की.

पूना से सदाशिव यशवंत सेने नामक का एक युवा ब्राह्मण अपने पिता की मृत्यु के बाद रोजी-रोटी की तलाश में उत्तर दिशा की ओर रवाना हुआ. निश्चित सन्-संवत का तो पता नहीं चल सका, लेकिन यह घटना सन् १८६० के आस-पास की होनी चाहिए. भारतवर्ष पूरी तौर से अंग्रेजों की चपेट में आ गया था. बड़ी-बड़ी देशी रियासतें तो कायम थीं, लेकिन वह सब अंग्रेजों की छत्रछाया में आ गयी थीं.

वह युवा ब्राह्मण विद्या-बुद्धि से युक्त था, उच्च कुल का अभिजात्य, मुख पर एक प्रकार का तेज, चरित्रवान, लेकिन निपट दरिद्र. पास-पड़ोस से मांग-जांच कर उसने कुछ द्रव्य एकत्रित किया और चल पड़ा भगवान के भरोसे.

उसने सुन रखा था कि उत्तर में ग्वालियर नाम की एक अति सम्पन्न रियासत है जहां उसके मामा रहते हैं. वहां के महाराजा बड़े तेजस्वी और गुणग्राही हैं, पंडितों और विद्वानों का आदर करते हैं. तो उन दिनों न रेल थी, न मोटर थी, न हवाई जहाज थे. सड़कें कच्ची, ऊबड़खाबड़, कहीं-कहीं कंकड़ या पत्थर कुटे हुए. सवारी के नाम पर पालकी, घोड़े, ऊंट, हाथी, और कहीं-कहीं बैलगाड़ियां तथा रथ. इन सवारियों पर खर्च लंबा पड़ता था, किराए पर मिलती नहीं थीं, गति बड़ी धीमी थी, तो लोगबाग पैदल ही रास्ता तय करते थे. सदाशिव यशवंत सेने ने भी पैदल ही रास्ता नापा.

रास्ते में कथा बांचते, उपदेश देते, मांगते-खाते, लड़ते-झगड़ते वह छः महीने में ग्वालियर पहुंचा. पूछताछ कर उसने अपने मामा के घर का पता लगाया. मामा बाल हरिहर आपटे पक्षाघात से पीड़ित कराह रहे थे. रियासत से पांच रुपया महीना दक्षिणा के रूप में बंधे थे. उससे ही मामी यमुना बाई अपने चार बच्चों और अपने पति का उदर भरती थीं. सदाशिव को देखते ही बालकृष्ण की आंखों से जलधारा प्रवाहित हो उठी. यह आंसू आनंद और हर्ष के आंसू थे क्योंकि उनके घर में एक सहारे के रूप में सदाशिव सेने का उदय हुआ था. उनकी बहिन अर्थात् सदाशिव की माता का देहांत तो दस वर्ष पहले ही हो चुका था. अपने बहनोई की मृत्यु का समाचार सुन कर उन्होंने वेदांती की मुद्रा में शोक प्रकट किया. फिर उन्होंने बतलाया कि महाराज तो बड़े गुण-ग्राही हैं, लेकिन महाराज के दरबार में एक से एक धूर्त लोगों का प्रभाव है जो योग्य व्यक्तियों को महाराज के सम्मुख आने ही नहीं देते. यानी जो सदाशिव ने पूना से ग्वालियर आने का कष्ट उठाया, वह बहुत संभव है व्यर्थ जाए. फिर भी, मामा प्रसन्न थे कि उन्हें एक सहारा तो मिला, कभी-न-कभी सदाशिव को मौका मिल ही जायगा. और मामी ने बड़े प्रेम के साथ सदाशिव को भोजन कराया.

सदाशिव धुन का पक्का था. उसकी अंटी में दस स्वर्ण मुद्राएं थीं तो एक बेंच कर उसने वस्त्र खरीदे, कुछ पुस्तकें एकत्रित कीं, तिलक-चंदन का उसने प्रबंध किया और तीसरे दिन धवल वस्त्र धारण करके तथा पगड़ी बांध कर वह महाराज के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजभवन की ओर रवाना हुआ. राजभवन के फाटक पर दरबान ने उसे रोका— महाराज से मिलने के लिए प्रार्थनापत्र देना होता है, पंडित आनंद गोपाल मेडे की सिफारिश ही से महाराज पंडितों को समय देते हैं— तो उनसे मिलना होगा.

सदाशिव पंडित आनंद मेडे के दरबार में हाजिर हुआ. आनंद मेडे उस समय मुख में खैनी दबा कर ऊंघ रहे थे. आंखें बंद किये हुए ही उन्होंने कहा— साला पंडित. . .महाराज का दर्शन करेगा! महाराज का दर्शन साक्षात भगवान का दर्शन, फीस पांच स्वर्ण मुद्रा, तब दर्शन की व्यवस्था हो.

बड़ी विनय के साथ सदाशिव ने कहा—मैं साहित्याचार्य हूं, मैंने वेदांत और सांख्य का तुलनात्मक अध्ययन किया है, अति दीन और दरिद्र ब्राह्मण हूं. पांच स्वर्ण मुद्राएं कहां से लाऊं?

आनंद मेडे ने आंखें खोलीं, लेकिन उन आंखों को अधखुली ही कहा जा सकता था. एक मुस्कान के साथ उन्होंने कहा— राज में साहित्य, वेदांत और सांख्य नहीं चलता. यहां चलता है सोना-चांदी. पांच स्वर्ण मुद्राएं तो देनी ही होंगी. उधार लाओ.

—उधार मुझे कोई देगा नहीं, मैं पूना से आ रहा हूं, मुझे कोई जानता नहीं.

—तो भीख मांग कर लाओ. कह पंडित आनंद मेडे ने आंखें बंद कर लीं.

—मेरे ऐसे हट्टे-कट्टे आदमी को कोई भीख नहीं देगा.

—तो फिर चोरी करो! और पंडित आनंद मेडे खर्राटे भरने लगे.

सदाशिव का खून खौल उठा. तबीयत हुई, आनंद मेडे का गला दबोच दे, लेकिन भावना पर बुद्धि ने विजय पायी, एक दर्जन नौकर-चाकर आनंद मेडे की रक्षा करने के लिए इधर-उधर घूमते दिखाई दिये उसे.

ग्वालियर के महाराज अत्यंत न्यायप्रिय, कुशल और सहृदय प्रशासक थे, लेकिन उनमें केवल एक कमजोरी थी. वह अपने कृपा-पात्रों के अवगुण देखने से कतई इंकार कर देते थे. सदाशिव ने दो-एक सामंतों की शरण चाही, लेकिन वह किसी के पास पहुंच नहीं पाया. हरेक आदमी ने आनंद मेडे का गुणगान किया.

महाराज ने राजभवन के फाटक पर एक पेटी रखवा दी थी जिसमें जनता अपने दुख-दर्द की कहानी तथा अपनी शिकायतों की दर्खास्तें डाल दे. इन दर्खास्तों को स्वयं महाराज पढ़ते थे और अपना निर्णय देते थे. हार कर सदाशिव ने एक दर्खास्त लिखी, जिसमें उसनें पंडित आनंद मेडे को बेतहाशा गालियां दीं, चार-पांच सामंतों को गदहा बताया, और अंत में उसने लिखा— श्रीमंत का जो न्यायप्रिय और कुशल-शासक होने का यश है, वह नितांत झूठा है. महाराज के शासन में ऊपर से नीचे तक हर तरफ पोल ही पोल है.

महाराज ने दर्खास्त पढ़ी और उन्हें दर्खास्त देने वाले पर बेतहाशा क्रोध आया. फिर एकाएक उनने मुखपर एक मुस्कान आयी. उन्होंने उस दर्खास्त पर अपने हाथ से लिखा—तू भी उस पोल में घुस जा, और उस दर्खास्त पर अपनी मुहर लगा कर लिखे पते पर वापस करा दी.

सदाशिव सेने ने महाराज का उत्तर पढ़ा और इसके बाद उसने महाराज के उत्तर सहित उस पत्र को सहेज कर रख लिया. रात में उसने अपनी समस्या पर विचार किया और एकाएक उसकी आंखें चमक उठीं. एक योजना की रूपरेखा बना कर वह सो गया.

★ ★

प्रातः होते ही सदाशिव अपनी योजना को कार्यान्वित करने पर जुट गया. सबसे पहले उसने ग्वालियर राज की भौगोलिक स्थिति का अध्ययन किया. ग्वालियर राज्य युक्त प्रांत में इटावा, आगरा और झांसी की सीमाओं से लेकर मालवा और राजस्थान के इलाकों को पार करता हुआ गुजरात की सीमा तक फैला हुआ था. पूरा राज्य कई सूबों में विभाजित था और हरेक का प्रशासक सूबेदार अथवा सूबा कहलाता था. बीच-बीच में कई छोटी-छोटी रियासतें भी थीं, कुछ बड़ी रियासतों के भाग भी आ जाते थे. यात्रा की असुविधा तथा पहाड़ियों और घाटियों की दुर्गमताओं के कारण कुछ सूबों का संपर्क राजधानी ग्वालियर के साथ नहीं के बराबर था. साल में एक-दो बार सूबेदार सूबे का कर भिजवा देता था या स्वयं ही दरबार के समय महाराज के सामने उपस्थित होता था. बाकी सूबेदार स्वयं ही सूबे पर हुक्म चलाता था.

पता लगाने पर मालूम हुआ कि ग्वालियर से प्रायः दो सौ मील की दूरी पर अंजोर नाम के सूबे का सूबेदार अति वृद्ध और निःसंतान है. सुदूर गुजरात और राजस्थान की सीमाओं से मिला वह सूबा निहायत बीहड़ और दुर्गम है. किसी तरह सूबेदार अपना काम चलाये जा रहा था. इधर कई वर्षों वह महाराज के दरबार में स्वयं न आ कर अपने-मातहतों से आधा 'पर्दा कर' भिजवा देता था.

सदाशिव सेने ने पास की मुहरें बेचीं, अपनी मामी से कुछ रुपया प्राप्त किया और उसने एक राज्यपत्रक तैयार किया—श्रीमंत ग्वालियर के महाराज की राजाज्ञा से अंजोर के सूबेदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गजानन महाजी घमघड़े की वृद्धावस्था को ध्यान में रखकर सदाशिव यशवंत सेने को अंजीर का सूबेदार नियुक्त किया जाता है और सदाशिव यशवंत सेने को आज्ञा दी जाती है कि वह तत्काल जा कर सूबेदार का पद संभाल लें. सूबेदार गजानन महाजी घमघड़े की सेवाओं को ध्यान में रख कर सदाशिव यशवंत सेने को आदेश दिया जाता है कि वह गजानन महाजी घमघड़े को एक बार हजार रुपया महीना उसके जीवन पर्यंत सूबे की आय से देता रहे, और सूबे के प्रबंध में उससे आवश्यक परामर्श लेता रहे. इस राज्य-पत्रक पर सदाशिव सेने ने जाली मुहर लगायी, और दो सौ रुपये लेकर अंजोर की ओर रवाना हो गया.

रास्ते में उसने बीस घुड़सवारों को पांच-पांच रुपये देकर नौकर रखा, और चालीस रुपयों में एक अरबी नस्ल का घोड़ा खरीद कर उस पर सवार हुआ. ठाठ के साथ उसने अंजोर में प्रवेश किया और राज्यपत्रक अंजोर के सूबेदार गजानन महाजी घमघड़े के हाथ में रख कर उसने बड़ी विनय के साथ उनका अभिवाद न किया. सदाशिव यशवंत सेने की शालीनता से गदगद हो कर घमघड़े ने तत्काल सूबेदार का पद सदाशिव सेने को सौंप दिया और चैन की सांस ली.

घमघड़े के शासनकाल के अंतिम चरण में उनकी वृद्धावस्था के कारण अंजोर सूबा की हालत बेहद बिगड़ गयी थी. न रियाया घमघड़े को कर देती थी, न उनसे दबती थी. सदाशिव सेने ने तत्परता के साथ शासन की बागडोर संभाली और छह महीने के अंदर उसने सूबे की कायापलट कर दी. बदमाशों और लुटेरों का उसने सफाया किया, प्रजा संपन्न और समृद्ध होने लगी. निर्धारित समय पर महाराजा ग्वालियर के पास निर्धारित कर की राशि तथा अनेकों उपहार पहुंचने लगे. अपने मामा-मामी को भी उसने अंजोर बुलवा लिया.

* *

पांच वर्ष बीत गए. ग्वालियर के महाराज अंजोर सूबे की आर्थिक व्यवस्था से अति संतुष्ट और प्रसन्न थे. एक दिन अंग्रेज रेजीडेंट देशी रियासतों का दौरा करते हुए ग्वालियर पहुंचा. उसने महाराज से अंजोर के नये सूबेदार की कार्यकुशलता तथा उनके आतिथ्य-सत्कार की बड़ी प्रशंसा की. महाराज का माथा ठनका. यह कौन-सा और कैसा नया सूबेदार? महाराज ने तो अंजोर में कोई नया सूबेदार नियुक्त नहीं किया था. उन्होंने पता लगाया तो यह मालूम हुआ कि राज्य से कोई नियुक्ति नहीं हुई है. हां, पिछले चार-पांच वर्ष से अंजोर से नियमित रूप से रुपया आने लगा है. महाराज चक्कर में. यह क्या रहस्य है? और महाराज ने अंजोर के सूबेदार को ग्वालियर तलब किया.

सूबेदार सदाशिव सेने बड़े ठाठ के साथ लाव-लश्कर लेकर ग्वालियर के लिए रवाना हुए. आगे-आगे तुरही और नगाड़े वाले, उनके पीछे बीस घुड़सवार सैनिक, उनके पीछे पालकी पर सवार सूबेदार सदाशिव यशवंत सेने, उनके पीछे हाथी पर महाराज ग्वालियर का चित्र और एक हाथी पर चारणों तथा वेदवाणी ब्राह्मणों का दल, उसके बाद दस ऊंटों पर महाराज के लिए एक लाख रुपयों की थैलियां तथा उपहार के लिए वस्त्राभूषण, यात्रा की रसद और उनके पीछे फिर बीस घुड़सवार सैनिक. एक-एक घड़ी के बाद महाराज की जयजयकार के नारे.

ग्वालियर से जब यह दल दस कोस की दूरी पर आ गया, तब महाराज के गुप्तचर हरकारों ने अंजोर के सूबेदार के ठाठ-बाट और शान-शौकत की सूचना महाराज को दी. इतनी शान के साथ राज्य का कोई सूबेदार ग्वालियर नहीं आया था. महाराज ने शहर-पनाह के बाहर ही यह काफिला रुकवा दिया. सूबेदार सदाशिव यशवंत समेत शहर-पनाह के बाहर ही खेमे गाड़ दिये. एक मेला-सा लग गया. महाराज के नाम का कीर्तन आरंभ हो गया, ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा बंटने लगी, भिखारियों को भीख मिलनी आरंभ हो गयी.

खबर पाकर महाराज चक्कर में. एक सप्ताह तक यह काफिला नगर के बाहर रुका रहा. फिर महाराज की आज्ञा हुई कि सूबेदार अपने लश्कर के साथ नगर में प्रवेश करे. सूबेदारों की अतिथिशाला में सूबेदार के ठहरने की व्यवस्था हुई, और फिर से महाराज के नाम के कीर्तन, वेदपाठ, दान-दक्षिणा का क्रम चलने लगा.

इस तरह एक सप्ताह और बीता और महाराज ने सूबेदार को दरबार में उपस्थित होने का आदेश दिया. एक लाख रुपयों की थैलियां लदवाये हुए, वस्त्राभूषणों के उपहार के साथ सदाशिव यशवंत राव सेने महाराज के सम्मुख उपस्थित हुए. उन्होंने स्वयं महाराज की आरती उतारी और हाथ जोड़कर दीनभाव के साथ महाराज के सम्मुख खड़े हो गये.

महाराज ने गौर से सदाशिव यशवंत सेने को देखा, एक नितांत अनजाना और अपरिचित चेहरा, जिसे उन्होंने पहले कभी भी न देखा था. वह कुछ देर तक सोचते रहे फिर बड़े धीमे स्वर में जिसे इर्द-गिर्द के लोग न सुन सकें, उन्होंने कहा—मैंने तुम्हें कब अंजोर का सूबेदार नियुक्त किया? मैंने तो तुम्हें पहले कभी देखा ही नहीं.

सदाशिव यशवंत सेने ने अपने अंगरखे से वह अपना शिकायत वाला पत्र निकाला जो उन्होंने पांच वर्ष पहले लिखा था और जिस पर महाराज ने अपने हाथ से आज्ञा दी थी—'तू भी उस पोल में घुस जा.' और उसे महाराज के सामने बढ़ा दिया.

महाराज ने आदि से अंत तक वह पत्र पढ़ा. उन्होंने अपनी आज्ञा देखी. उनकी भवें तन गयीं और वह बेतरह गंभीर हो गये. दरबारी कांप उठे कि क्या होने वाला है. सदाशिव यशवंत सेने हाथ जोड़े उसी तरह अविचलित खड़े रहे, चेहरे पर शिकन नहीं. लेकिन वाह रे महाराज, एक हलकी-सी मुसकान उनके मुख पर आयी, उस पत्र के टुकड़े-टुकड़े करते हुए उन्होंने कहा—हां, मैंने तुम्हें नियुक्त किया था. और घूम कर उन्होंने दीवान से कहा, सूबेदार के स्वागत में कल राज्यभोज हो और सूबा का स्थान मेरी बगल में होगा. और उन्होंने सदाशिव यशवंत सेने को अपना स्थान ग्रहण करने का संकेत किया.

* *

चारों के गिलास खाली हो गए थे, डाक्टर जयदयाल शर्मा ने फिर से दौर मारे, फिर डाक्टर जयदयाल शर्मा ने कहा—अगर आप इस घटना का इतिहास में उल्लेख न करें डाक्टर वर्मा तो बड़ा अच्छा हो.

—क्यों जी, यह तो बड़ी मजेदार कहानी है! अपने देश में बड़े-बड़े गनी लोग होते रहे हैं, सरदार भूपेंदर सिंह बोले.

चारों के गिलास खाली हो गए थे, डाक्टर जयदयाल शर्मा ने फिर से दौर मरे, फिर डाक्टर जयदयाल शर्मा ने कहा—अगर आप इस घटना का इतिहास में उल्लेख न करें डाक्टर वर्मा तो बड़ा अच्छा हो.

—जी हां, सरदारजी, तब गुनगाहक भी होते थे. अब देखिये, कि सदाशिव यशवंत ऐसे गुनी थे तो महाराज ग्वालियर ऐसे गुनगाहक थे. लेकिन आज का युग बदल गया है. कोई दूसरों के गुणों को ग्रहण करने वाला दिखता ही नहीं, हरेक आदमी स्वयं गुनी बन गया है. इसका एक उदाहरण मुझे अपने प्रदेश में ही देखने को मिला. राधेलाल चौरसिया ने कहा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दो बांके' और 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' जैसी व्यंग्य कथाओं के लेखक भगवतीचरण वर्मा अब फिर कहानी के क्षेत्र में रचनाशील हुए हैं. आज के संदर्भों में उनका व्यंग्यकार का रूप एक बार फिर आपके सामने है. वर्माजी 'सारिका' के लिए विशेष रूप से बारह कहानियां लिख रहे हैं, उनमें से अब तक आप दस कहानियां पढ़ चुके हैं— 'सौदा हाथ से निकल गया' (अप्रैल '७४), 'क्षमायाचना' (मई '७४), 'संकट' (जून '७४), 'रंगीलेलाल तीर्थयात्री' (जुलाई '७४) 'वसीयत' (अगस्त '७४), 'खानदानी हरामजादे' (सितंबर '७४), 'समझौता' (अक्तूबर '७४), 'गनेसीलाल का रामराज' (नवंबर '७४), दिल का दौरा (दिसंबर '७४), और 'जबरा मारे और रोने न दे' (जनवरी '७५). उस क्रम की यह ग्यारहवीं कहानी है.

—आपके प्रदेश में ही मिला जी, जरा हम भी सुनें. सरदार भूपेंदर सिंह बोले.

कुछ संकोच के साथ डाक्टर राधेलाल चौरसिया बोले—लेकिन इसका जिक्र इतिहास में न किया जायगा, पहले डाक्टर, जयदयाल शर्मा और श्यामनाथ वर्मा मुझे यह वचन दे दें.

दोनों ने अपने वचन दे दिये.

व्हिस्की का एक लंबा घूंट गले के नीचे उतार कर डाक्टर राधेलाल चौरसिया ने आरंभ किया.

★ ★

हमारे नगर का एक नागरिक है रत्नकुमार. रत्नकुमार के पिता रामकुमार बहुत बड़े व्यापारी हैं, करोड़पति आदमी समझिये. उन्हीं रत्नकुमार के दो भाई अपने पिता के साथ सब काम-काज सम्हालते हैं, ब्लैक मार्केटिंग, मुनाफाखोरी में दक्ष. अकेले रत्नकुमार ही कोई कामकाज नहीं करता, वह केवल राजनीतिक हरकतों में ही भाग लेता रहता है. शिक्षा के नाम पर मुबलिक हाई स्कूल फेल, भगवान ने बुद्धि तो दी ही है लेकिन बुद्धि के संचालन से उन्हें कोरा रखा है. लंबे-से, गोरे-से स्वस्थ नौजवान, प्रभावशाली व्यक्तित्व से युक्त, वह सब तब तक जब तक वह आपसे बात न करे. वैसे बात भी बड़े रंग से आरंभ करते हैं. ऐसा लगता है कि वह एक पहुंचे हुए राजनीतिज्ञ हैं, एक बहुत बड़ा विद्वान आपसे बात कर रहा है—आपको ऐसा लगेगा. लेकिन चार-पांच मिनट के अंदर ही बातों का संतुलन गड़बड़ा जाता है. उनके इसी संतुलन के कारण उनके परिवार वालों ने उन्हें राजनीति में पूरी छूट दी है.

कुछ मंत्रियों से, कुछ उच्च कांग्रेस-नेताओं से पारिवारिक संबंध से रत्नकुमार की गणना नगर के महत्वपूर्ण लोगों में होती है. सभी राजनीतिक पार्टियों में उनकी पहुंच है, कांग्रेस के तो वह सदस्य हैं. प्रायः हरेक मंत्री या नेता की बगल में खड़े हुए उनके फोटोग्राफ परिवार के दफ्तरों की शोभा बढ़ाते हैं जिनके बल पर रत्नकुमार के परिवारिक धंधे चमक रहे हैं.

तो हुआ ऐसा कि प्रदेश में एक मुख्य मंत्री की नियुक्ति हुई यानी वह चुने नहीं गये बल्कि तत्कालीन मुख्य मंत्री के त्यागपत्र देने के बाद केंद्रीय सरकार द्वारा नियुक्त करके भेजे गये. अस्थायी रूप से उनका विधिवत चुनाव उनके कार्यभार संभालने के बाद होने को था. तो नगर में आने पर स्टेशन पर उनका भव्य स्वागत हो, प्रदेशीय नेतृत्व ने इसकी योजना बनाई. हजारों आदमी फूल-माला ले कर उनकी जयजयकार करते हुए स्टेशन पर उपस्थित हुए.

मुख्य मंत्री के ट्रेन से उतरते ही भीड़ में रेल-पेल आरंभ हुई उन्हें हार पहनाने के लिए. और रत्नकुमार ने लोगों को धक्का देते, गिराते हुए सबसे पहले मुख्य मंत्री को एक निहायत शानदार और कीमती गजरा पहनाया जिसे उन्होंने पंद्रह रुपया खर्च करके विशेष-रूप से बनवाया था. कांग्रेस के अध्यक्ष, कांग्रेस के मंत्रिगण सबों के गजरे मुकाबिले में तुच्छ थे. बड़े प्रेम से साथ मुख्य मंत्री ने रत्नकुमार से हाथ मिलाया, और तत्काल उस मुद्रा में उनके अनगिनती फोटो खिंच गये. अब रत्नकुमार मुख्य मंत्री की बगल में लग गये.

स्टेशन के बाहर यह व्यवस्था थी कि एक खुली जीप पर मुख्य मंत्री की सवारी निकले. जीप पर खड़े हो कर वह लोगों का अभिवादन करेंगे, लोगों की फूल-मालाएं ग्रहण करेंगे, लोगों को दर्शन देंगे और जनता का जय-जयकार स्वीकार करेंगे. कांग्रेस पार्टी के मंत्री श्री नत्थूलाल गुप्त की निजी जीप जो एकदम नयी थी, मुख्य मंत्री की सवारी के लिए चुनी गयी.

स्टेशन से बाहर निकलते ही मुख्य मंत्री उचक कर जीप पर खड़े होकर ड्राइवर की बगल में खड़े हो गये. उनके बगल में कांग्रेस के अध्यक्ष बैठ गये. पीछे बैठने के लिए धक्कम-धक्का आरंभ हुआ और श्री नत्थूलाल गुप्त को धक्का देकर श्री रत्नकुमार ठीक मुख्य मंत्री के पीछे खड़े हो गये. कांग्रेस का एक कार्यकर्ता और चढ़ पाया, तब तक जीप चल पड़ी. हाथ जोड़े हुए मुख पर मधुर मुसकान धारण किये हुए मुख्य मंत्री खड़े थे, और उनको मालाएं भेंट की जा रही थीं.

जब-जब मुख्य मंत्री के गले में मालाओं का बोझ अधिक हो जाता था, तब-तब रत्नकुमार उन्हें लेकर साथ वाले कांग्रेस कार्यकर्ता को दे देते थे. इस तरह मुख्य मंत्री का जुलूस उनके अस्थायी निवास स्थान पर पहुंचा. अपने निवास स्थान पर पहुंच कर मुख्य मंत्री ने बड़े प्रेम से रत्नकुमार का नाम और पता पूछा, फिर 'मिलते रहना' का निमंत्रण देकर वह विश्राम करने चले गये.

★ ★

एक सप्ताह बाद कांग्रेस पार्टी के मंत्री नत्थूलाल गुप्त मुख्य मंत्री के घर पर पार्टी के संबंध में कुछ परामर्श करने के लिए पहुंचे. उन्होंने देखा कि मुख्य मंत्री रत्नकुमार के साथ बैठे चाय पी रहे हैं और घुल-घुल कर बातें कर रहे हैं. एकाएक नत्थूलाल गुप्त चौंक उठे. लेकिन मुख्य मंत्री के साथ रत्नकुमार की आत्मीयता देख कर वह जैसे खून का घूंट पीकर रह गये. कुछ औपचारिक बातें करके मुख्य मंत्री ने रत्नकुमार को विदा किया.

बातचीत समाप्त होने पर श्री नत्थूलाल गुप्त को लगा कि मुख्य मंत्री का मूड अच्छा है. उन्होंने हिम्मत करके कहा—मुझे नहीं मालूम था कि इन रत्नकुमार से आपकी घनिष्टता और आत्मीयता है, आपके पुराने परिचित मालूम होते हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख्य मंत्री मुसकराए—इससे मेरा परिचय तो एक हफ्ता पहले जब मैं लखनऊ आया था तभी हुआ, लेकिन बड़ा बुद्धिमान और सज्जन मालूम होता है. हरेक काम में मेरी सहायता करने को तत्पर रहता है. शायद कांग्रेस का कोई प्रभावशाली नेता है.

नत्थूलाल गुप्त की अब हिम्मत खुली—नेता क्या निहायत निठल्ला और आवारा किस्म का आदमी है! हर जगह जबरदस्ती घुस जाता है.

—तो क्या यह रत्नकुमार कांग्रेस का कार्यकर्ता नहीं है?

—श्रीमान कैसा कार्यकर्ता और कहां का कार्यकर्ता! बहुत संभव है कांग्रेस का साधारण सदस्य हो, मुझे तो पता नहीं. इस आदमी के कारण आपकी बदनामी फलने का डर है.

मुख्य मंत्री गंभीर हो गए. अभी तब वह न जाने कितने लोगों को उल्लू बना चुके थे, एक साधारण आदमी उन्हें उल्लू बना रहा है, यह उन्हें अखर गया. उठते हुए उन्होंने केवल इतना कहा—हूं, अच्छा जाइये. आपने मुझे सतर्क कर दिया—धन्यवाद!

और छाती फुलाये हुए नत्थूलाल गुप्त चले गये.

मुख्य मंत्री ने अपने पी.ए. को बुला कर आदेश दिया कि रत्नकुमार को अब उनके सामने न आने दिया जाय.

नत्थूलाल गुप्त ने लौटते ही आफिस में यह आदेश दिया कि रत्नकुमार को कांग्रेस की किसी संस्था में अब स्थान न मिले. जहां-जहां उन्हें स्थान मिल गया है, वहां-वहां से वह निकाल बाहर किये जायं.

और तीसरे दिन जब रत्नकुमार मुख्य मंत्री की कुशलक्षेम पूछने तथा उनका दर्शन करने मुख्य मंत्री के बंगले पर पहुंचे, तब चपरासी ने उनसे कहा—मुख्य मंत्रीजी को फुर्सत नहीं है.

रत्नकुमार बोले—हम जानते हैं, केवल दर्शन करने और प्रणाम करने हम आए हैं.

चपरासी ने कड़े स्वर में कहा—कह तो दिया कि फुर्सत नहीं है. अब आगे से यहां मत आना. मुख्य मंत्री ने आदेश दे दिया है.

—ऐं-ऐं, क्या बात है, किस बात पर नाराज हो गये हैं?

चपरासी ने तेवर बदलकर कहा—जाते हो कि धक्का देकर तुम्हें यहां से भेजा जाय?

और रत्नकुमार मुंह लटकाये हुए वापस चला गया.

* *

सरदार भूपेंदर सिंह ने हंसते हुए कहा—मुझे तो इस रत्नकुमार के साथ हमदर्दी है जी. डाक्टर वर्मा वह तुम्हारे सदाशिव यशवंत सेने से कुछ ऊंचा ही बैठता है क्योंकि सेने तो अक्कलमंद और पढ़ा-लिखा आदमी था और यह रत्नकुमार ठेठ किस्म का आदमी.

डाक्टर राधेलाल चौरसिया बोले—यह उस नत्थूलाल गुप्त की बदमाशी थी.

डाक्टर श्यामनाथ ने कहा—नहीं, यह मुख्य मंत्री की नाकाबलियत थी कि उन्होंने रत्नकुमार के गुण की दाद नहीं दी.

और डाक्टर जयदयाल शर्मा ने उठते हुए कहा—न किसी की नाकाबलियत, न किसी की बदमाशी! हमारे यहां किसी कवि ने कहा है—गुन न हिरानो, गुनगाहक हिरानो है. लेकिन आज के युग में सब गुनी बन गये हैं. गुनगाहक कोई दिखता ही नहीं. अच्छा चलिये, अब खाना खा लिया जाय. □□□

'चित्रलेखा', महानगर,
लखनऊ —९

एक लघुकथा

मेरे देश में

● वीणा गुप्ता

कुछ ही समय पहले की बात है कि नरकपति यमराज के सम्मुख एक विकट समस्या खड़ी हो गयी.

बुरे कर्मों वाले प्राणियों को नरक में इसलिए डाला जाता था कि वहां पर दी जाने वाली यंत्रणाओं और असुविधाओं से दुखी होकर प्राणी अपने किये पर पश्चाताप करे.

परंतु यह क्या? इन दिनों हर प्राणी बड़ी से बड़ी यंत्रणा भी झेल लेता था. दुखी होना तो दूर रहा, हर कोई खुश और मस्त दिखाई देने लगा था. जिसको देखो, वही नाचने-गाने, हंसी-मजाक, तरह-तरह के मनोरंजन में मशगूल.

एक दिन यमराज ने एक नये प्राणी से पूछा—एक बात बताओ, क्या तुम्हें किसी प्रकार का दुःख नहीं है?

—नहीं महाराज, मैं तो यहां बड़े आनंद से हूं.

नये प्राणी का यह उत्तर सुन कर यमराज स्तब्ध रह गये.

उन्होंने फिर प्रश्न किया—यहां तो लोहे के चने तुम्हें चबाने के मिलते हैं, क्या यह अच्छा लगता है?

—यहां लोहे के चने तो खाने को मिल जाते हैं, महाराज!

—इतना बोझा यहां उठाना पड़ता है, क्या उससे तुम्हारी कमर दर्द नहीं करती?

—लेकिन वहां तो महंगाई से कमर टूट ही गयी थी, प्रभु!

—यहां तुम्हें किसी भी प्रकार के अभाव का अनुभव नहीं होता?

—यहां किसी वस्तु के लिए वर्षों तक लाईन तो नहीं लगानी पड़ती, दयासागर!

अपने हर प्रश्न का उत्तर नये प्राणी को बड़ी शालीनता और धैर्य से देते पा कर यमराज बौखला उठे.

इस पर जब वह प्राणी मंद-मंद मुस्कराने लगा तो यमराज ने क्रुद्ध होकर पूछा—तो क्या तुम यह कहना चाहते हो कि पृथ्वी पर लोगों को इससे भी अधिक कष्ट उठाने पड़ते हैं?

तब उस प्राणी ने सहज भाव से उत्तर दिया—पूज्य, सारी पृथ्वी का तो मुझे नहीं मालूम. हां, यदि आप मेरे देश में चले जायें तो फिर किसी प्राणी से ये प्रश्न पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी. □□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने किस बंदरगाह पर

• सतीश जायसवाल

भला कहीं इतनी बड़ी मंजिलों वाली एयरकण्डीशंड इमारत अपनी-जगह छोड़ कर चलने लगेगी? लेकिन वहम का तो कोई इलाज नहीं होता ना. बस यही बात अग्निपुष्प के साथ है. उसे अपना आफिस हमेशा किसी भीड़ भरे बंदरगाह पर लंगर डाल कर पड़े हुए विशाल जहाज की तरह लगा. और एक भ्रम हमेशा उसके मन में, किसी निर्जन द्वीप की तरह स्थायी तौर पर बना रहा, किसी भी दिन ऐसा हो सकता है कि मनचले नाविक की तरह वह किसी प्रेमिका के घर की तलाश में देर तक शहर भटकता रह जाये और लौटने पर पाये कि जहाज उसे छोड़ कर निकल चुका है.

इसीलिए इस बेतरतीब भीड़ के बीच, ऐतिहाती तौर पर उसने अपनी पहचान के लिए कुछ ऐसे चिह्न निश्चित कर लिये हैं जो दूर से दिखाई पड़ जायें और उसे अपनी स्थिति का फौरन पता लग जाये.

यह बैंक ऑफ बड़ौदा की शानदार सफेद इमारत दूर से पास नजर आती है और अग्निपुष्प को हमेशा, दूर स्थित सागर से दिखायी पड़ने वाले प्रकाश स्तंभ की तरह लगती है. नीराजना ने अपनी ओर से कोई ऐसा संकेत नहीं दिया है कि वह अपने मन में कोई आश्वासन पालने लगे. लेकिन वह मान कर चलता है कि एक बार मुलाकातों का सिलसिला भर चल जाये, तो फिर अपनी प्रत्याशता सिद्ध करने के रास्ते खुल जाते हैं. नीराजना वैसे भी शुरू से बड़ी उदार रही है. पहले दिन से ही जिस दिन पहली बार, दोनों बस में मिले थे, अग्नि ने जितना घुमा-फिरा कर पूछा था—अगर दुबारा कभी मिलने का मन करे तो? उसने उतनी ही सहजता के साथ अपने बैंक का पता दे दिया था—इसी शानदार सफेद इमारत का. और इसी तरह, सामने वाले ऊपरी दांत झलकाते हुए हंस दी थी. यह उसका हंसना, उसके प्रत्यक मनोभाव को अभिव्यक्ति देने वाला सबसे जटिल माध्यम है. लेकिन ऐसे हंसते हुए, यह गोल चेहरे वाली लड़की इतनी बचकाना लगने लगती है कि किसी का मन करे, उठाकर अपनी जेब में भर ले. दूसरे ही दिन अग्नि उसके पास पहुंच गया था और उसे देख कर वह इसी तरह हंस दी थी. फिर वह उससे लगातार मिलता रहा. दोपहर में लंच के समय अपने आफिस से नीचे उतर कर आता और सरकस पार कर के अपने प्रकाश-स्तंभ तक पहुंच जाता.

वह बराबर हंस कर उसका स्वागत करती और हंस कर विदा देती. लेकिन यह हंसी कभी-कभी अग्नि के लिए एक ऐसी जटिल पहेली बन जाती जिसमें से अपने लिए वह कोई अर्थ नहीं निकाल पाता. एक दिन झुंझला कर उसने तय किया कि आज फैसला हो ही जाय, साफ-साफ उसी से पूछ लूं. लेकिन वह, पूछना चाहता था कुछ, और पूछ गया कुछ और—इस तरह हंसना कहां से सीखा?

—कांवेंट से जहां मैं पढ़ती थी.

अपनी कंपनी के सालाना जल्से में वह राजन को अपने साथ लेकर गया था. उसने अपने लिए नीराजना का संक्षेपीकरण भी कर लिया—राजन, सुनने में किसी लड़के के नाम की तरह लगता है,?

—हां, जैसे अग्नि कहने से लगे, किसी लड़की को पुकारा!

सर्दी की उस कोहरे भरी रात में लौटते हुए वह बेहद प्रेमिल हो उठा था. उसने प्रस्ताव किया कि किसी दिन तुम्हारी इस इमारत की सबसे ऊपर वाली मंजिल पर चढ़ कर देखेंगे, वहां से शहर कैसा दिखता है.

—ना, मुझे डर लगेगा!

—अरे, मैं जो साथ रहूंगा. उसने बड़े उत्साह में भर कर कहा था.

पर उतनी ही सादगी से राजन ने कहा—तब तो मैं बोर हो जाऊंगी. पढ़ाई के दिनों में सीखी हंसी का उसने एक और मुक्त प्रयोग किया. अग्नि फिर कुछ नहीं समझ सका, हां या ना.

बस यहीं आकर वह थकने लगता है. एक स्पष्ट स्थिति के लिए उसका आग्रह जितना प्रबल हुआ है, ठीक उसके उलट परिमाण में उसे अनिश्चयात्मकता में गुजारा करना पड़ता है. चीजों के हाथ से फिसल जाने का संयम-सा हर समय इर्दगिर्द व्याप्त रहता है—कहीं ऐसा न हो कि किसी परियोजना में वह अपनी संपूर्ण शक्ति केंद्रित कर दे और आखिर में जाकर मालूम हो कि आधार ही विफल हो गया. तब क्या होगा? या तो पीछे हट जाये या बगल होकर देखता रहे और अपने लिए किसी अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करता रहे. वह बस इतना कर पाता है कि पूरी चेष्टा के साथ उस जगह अपने को बनाये रखने में जुटा रहे. अंततोगत्वा कुल लड़ाई का, उस पर अनिवार्यत: लागू होने वाला, निर्णय ही सामने आता है. विकल्प के अवसर वह अपने लिए कभी नहीं बचा पाया.

जाहिर है, फैसले के रूप में लागू होते नतीजों ने हमेशा

• सुशील भारती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके सुंदर से सुंदर स्थापत्य को उनकी जगह से सरका दिया. अब जैसे, उसका यह लगना कि इतनी बड़ी, पांच मंजिलों वाली एयर-कंडीशंड इमारत उसे छोड़कर किसी जहाज की तरह किसी अज्ञात द्वीप के लिए रवाना हो जायेगी और वह भीड़ भरे बंदरगाह में अकेला छूट जायेगा---कुछ नहीं, असुरक्षा की एक गहरी भावना उसमें स्थायी तौर पर घर बना कर बैठ गयी है.

असल बात तो यह है कि जिस दिन से उसने इस कंपनी में काम शुरू किया, ठीक उसी दिन से उसकी जड़ काटने की साजिशें भी साथ-साथ शुरू हो गयीं. हुआ यह कि सेक्शन का आफिसर माहेश्वरी अपने किसी आदमी को वहां लाना चाहता था लेकिन परसनल मैनेजर तेनानी साहब तय कर के बैठे थे--कोई भी, लेकिन माहेश्वरी का आदमी नहीं. इस "कोई भी" वाली श्रेणी में ही अग्निपुष्प का नंबर लगा था. लेकिन माहेश्वरी ने, जिसके ठीक नीचे उसे काम करना था, उसे तेनानी साहब का आदमी मान लिया.

अग्निपुष्प को तय करना था कि भ्रम की इस स्थिति को कायम रहने दे या इसे दूर करके अपनी स्थिति साफ कर ले या फिर अपना स्वतंत्र क्षेत्र निर्धारित करे. कुछ तो करे. लेकिन उस समय उसे ऐसी कोई तात्कालिक आवश्यकता नजर नहीं आयी.

वह हमेशा यही करता है. जब किसी एक निश्चय पर नहीं पहुंच पाता तो उसे किसी भी अगली तारीख के लिए टाल कर उधर से आंखें मूंद लेता है और अपने को मुक्त महसूस करता है. लेकिन इस बार वह अधिक देर तक बालू में सर डाल कर सुरक्षित नहीं रह सका. लेकिन मालूम नहीं किस आधार पर वह सोचता रहा कि यदि कल तक के लिए टल जाता तो जरूर कोई काट निकाल सकता. वह अपने सहकर्मियों के अतिशय गंभीर होते चेहरों को देखकर समझ चुका था कि माहेश्वरी अपनी तरफ से उसका खेल खत्म कर चुका है, अपनी जगह बैठे-बैठे फिल्मी अंदाज में कंधे उचका कर अपने आपसे मशविरा किया--फिर चलेंगे अपने गांव. सरकार से कर्ज लेकर ट्रैक्टर खरीदेंगे.और घर की खेती करेंगे.क्यों ठीक?--ठीक!

हां, यहां तक तो सब ठीक था क्योंकि यहां तक उसके अख्तियार के बाहर कुछ भी नहीं था. लेकिन परसनल सेक्सन की एक छोटी-सी स्लिप ने उसकी इतनी दिनों की सारी दिमागी तैयारी एकबारगी गड़बड़ा दी---आपकी प्रोबेशन-अवधि खत्म हो चुकी है. आपके स्थायित्व के संबंध में प्रबंधक विचार-विमर्श कर रहे हैं. इस बीच आप अपना कार्यभार व अन्य दायित्व लेखा विभाग को सौंप कर यथा आशय का प्रमाणपत्र प्रस्तुत कीजिये.

अपने नाम का विजिटिंग कार्ड जमा करते समय अग्नि को ऐसा महसूस हुआ जैसे आज से वह बेनाम हो गया. एकाएक उसके भीतर इतनी टूट-फूट हो गयी और वह इतना आत्म-विश्वास-विहीन हो उठा कि उसका मन करने लगा--सीधे तेनानी साहब के कमरे में घुस जाये और घुटने टेक दे. यह नहीं हो सका. कोई फायदा भी नहीं था. वे पहले ही किसी निर्णय पर पहुंच चुके थे, अब उसकी औपचारिक घोषणा भर बाकी थी.

इन तीन दिनों के यातना शिविर ने उसे असुरक्षा, भविष्य-हीनता की अंतिम सीमा तक पहुंचा दिया. आखिर अपने उत्पीड़न से ही विद्रोह कर के वह इस अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचा था--बस नौकरी ही लेंगे ना? ले लें. इसके बाद उसका अपना संघर्ष तो अब शुरू हो रहा था---क्या वह इतना आसान हल है?

लेकिन प्रोबेशन पर चल रहा एक अस्थायी आदमी प्रबंधकों के लिए और कितना जटिल सवाल हो सकता है? वह चाहे तो भी अपनी ओर से क्या प्रयास कर सकता है---जिसका कोई आधार ही नहीं? बस एक ही आसरा बार-बार दिखायी पड़ता--तेनानी साहब का कमरा. लेकिन इतनी-सी तुच्छ बात के लिए एक आदमी के सामने गिड़गिड़ाने की कल्पना वह नहीं झेल सका.

सतीश जायसवाल : (जन्म : १७ जून, १९४२) अकेलेपन और सैलानी जिंदगी के फैलाव में बार-बार अनिर्णय के अवसर आये जिनका प्रभाव कहानियों में भी दिखलाई पड़ता है. मूलतः कहानीकार किंतु कविताएं और लेख भी लिखे हैं.

अंततः कुछ करने के लिये अब उसके हिस्से में कुल एक चीज रह गयी थी---या तो चुप, पंगु बना बैठ कर उस आनेवाले निर्णय को अपने ऊपर लागू होने के लिए खुद को प्रस्तुत करता रहे या बस, एक कदम आगे बढ़कर उस आगत निर्णय पर अपना विकल्प चस्पा कर दे. उसे लगा, श्रेयस्कर यही है कि टर्मिनेशन आर्डर आने के पहले वह खुद अपनी ओर से बढ़कर त्यागपत्र प्रस्तुत कर दे.

दूसरों के निर्णय और अपने विकल्प के बीच बस कुल एक झटके का फासला शेष था. लेकिन यह भी कोई आसान बात सिद्ध नहीं हुई. वह थक गया और हांफने लगा--इससे तो अच्छा है, उन्हें ही फैसला सुनाने दो. यह विश्वास भी बांधा कि कुछ नहीं, बस अपना वहम है. हो सकता है, अंतिम चरणों में कुछ चमत्कृत घट जाये.

वहां कोई द्विविधा, दो राय नहीं थी. उनके चेहरे पर कुछ भी ऐसा नहीं था जिससे परिचय का कोई संकेत मिले और मन में साहस का संचार हो. केवल कागज बोल रहे थे. और कागज माहेश्वरी के तैयार करवाये हुये थे. उसकी सेवा-मुक्ति का आदेश टाइप होकर सामने पड़ा हुआ था.दस्तखत करके उसने एक प्रति प्राप्त कर ली. दो महीने की तनख्वाह वाले लिफाफे के साथ तेनानी साहब ने अपना दाहिना हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया.

कमरे से बाहर निकल कर अग्नि ने सहज दिखने का यत्न किया, ठीक वैसा ही जैसा कमरे में जाने के पूर्व था, लेकिन उससे नहीं बना. चलते-चलते उसने टेबल पर रखी रहने वाली अपनी नाम-पट्टिका को इस तरह उलट दिया जैसे किसी फांसी के आदेश के बाद न्यायाधीश निब तोड़ कर उठ जाता है. उतने सारे जाने-पहचाने लोगों के बीच से अकेले-अपरिचितों की तरह निकल आने में भी उसे बड़ी मेहनत लगी. नीचे पहुंच कर उसने सोचा, मुक्ति से भरा वातावरण खुशगवार होगा लेकिन वहां कोई मौसम नहीं था. कनाट प्लेट की भीड़ में वह नितांत अकेला पड़ गया. उसने सर उठाकर देखा, आकाश गिद्ध-चील और कौवों से भर उठा. मुक्त रहने का उसका अभ्यास जा चुका था.

थोड़ी देर तक उसकी समझ में ही नहीं आया, रास्ते किधर जाते हैं. उसने सामने देखा, वह पांच मंजिलों वाली एयरकंडीशंड इमारत सचमुच किसी विशाल जहाज की तरह सरकने लगी थी और वह बंदरगाह में अकेला छूट गया था. उसने घबरा कर बैंक आफ बड़ौदा की उस शानदार सफेद इमारत की तरफ, जो दूर से पास नजर आती है, देखा. लेकिन उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा. उसने देखा, जहाज के बंदरगाह छोड़ते ही उसका वह अपना प्रकाश स्तंभ भी अपनी जगह छोड़ कर सरकने लगा था. ☐☐☐

द्वारा--हिन्दी प्रकाशन, बिलासपुर (म. प्र.)--४९५००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छुट्टी का एक दिन • अकुलेश परिहार

प्रभाकर जब उठा, बाहर धूप निकल आयी थी. मिडिल ढलान पर क्वार्टर के होने का यही फायदा था कि सुबह धूप जल्दी आ जाती थी. फिर गर्मी के मौसम में तो सुबह ऐसी हवा चलती है कि मन बरबस ही देवदारों के नीचे बैठ जाने को हो आता है.

प्रभाकर की चारपाई के पास ही अठारह बाई अठारह की एक चौकोर खिड़की है. जाड़ों के दिन हों या बर्फानी रातें, वह हमेशा खुली रहती है. गर्मियों में पत्नी कुछ नहीं कहती, किंतु जाड़ों के मौसम में जब पतझड़ शुरू हो जाता है वह खिड़की को खुली रखने के पक्ष में नहीं रहती. अक्सर कहती रहती है—सुनो जी, इस मोरी (खिड़की) को बंद कर दो. आजकल पत्ते गिरते रहते हैं. कभी कोई छाया-बाया बच्चे पर लग गयी तो? फिर आजकल ठंड भी तो होती है. तुम तो खर्राटे भर-भर कर नींद लेते हो और मैं जाड़े से कांपती रहती हूं. परंतु प्रभाकर हंसते हुए सहज ही टाल जाता है. कहता है —तुम भी न जाने क्या-क्या सोचती रहती हो. पत्ते सूख कर जमीन में गिरेंगे ही. उन पर कोई प्रेत-व्रेत नहीं बैठा रहता. खिड़की खुली रहने से रात भर ताजा हवा आती रहती है. सुबह उठते ही शरीर ताजा-चंगा रहता है. वास्तव में औरतें बड़ी डरपोक होती हैं. आखिरी वाक्य वह कुछ इस तरह कहता कि पत्नी बरबस ही मुसकरा आती. तब प्रभाकर मन-ही-मन खुश हो जाता कि पत्नी उसकी हर बात मान जाती है.पत्नी के रुष्ट हो जाने के इन क्षणों में जब प्रभाकर उसे हंसा लेता, तब वह अपने में एक गर्व-सा अनुभव करने लगता है. शायद हर पुरुष इन क्षणों में वही महसूस करता हो. किंतु प्रभाकर की वह मनःस्थिति उसे पत्नी के प्रति बेहद आत्मीय बना डालती. और प्रभाकर इन आत्मीय क्षणों में पत्नी से कोई-न-कोई शरारत कर बैठता तो पत्नी चेहरे पर बनावटी क्रोध ले आती है. किंतु उसकी आंखें पति के प्रति अथाह प्यार से भरी होती हैं.

प्रभाकर ने बिस्तर पर बैठे-बैठे ही एक जमुहाई ली. चौकोर खिड़की के रास्ते धूप का एक टुकड़ा चारपाई पर छिटक आया था. खिड़की से चारपाई तक रोशनी की एक मोटी लकीर बन गयी थी. प्रभाकर उसमें चमकते हुए धूल कणों को देखने लगा. किंतु क्षण भर बाद ही जैसे कुछ याद आ गया हो. वह चारपाई से उतर कर खड़ा हो गया. पत्नी तन्मय हो कर फर्श पर झाड़ू लगा रही थी. बाल खुल कर बिखर आये थे. साड़ी कंधे से नीचे खिसक गयी थी. इस वक्त पत्नी को देखते रहना प्रभाकर को बड़ा सुखद लगा.

पत्नी ने दरवाजे के पास कूड़े को एक गत्ते पर उठाया और बाहर फेंक आयी. फिर साड़ी ठीक करते हुए प्रभाकर के सामने आ खड़ी हुई.—तुम तो अब उठ रहे हो, बाबूजी कब के उठ गये हैं. नहा-धो कर गायत्री जाप भी कर लिया है. अब चाय पी कर टहलने को निकल गये हैं. कहने लगे, थोड़ी दूर तक टहल आता हूं. ताजी हवा चल रही है. . . जानते हो वह तुम्हारे बारे में क्या कह रहे थे? पत्नी शरारत से मुसकराने लगी.

—क्या? प्रभाकर सचमुच चौंक गया था.

—डेढ़ पसलिया. पत्नी खिलखिला कर हंसने लगी.

—क्या मतलब? साफ बात क्यों नहीं कहती?

—अरे सुबह बाबूजी को चाय देने गयी तो मैंने तुम्हें जगा देने के लिए पूछा. सोचा, उनके साथ तुम भी टहल आओगे. परंतु बाबूजी ने मना कर दिया. कहने लगे, आजकल के डेढ़ पसलिया लौंडे हैं, सोये रहने दे उसे अभी. वरना फिर दिन भर आफिस में हा-हा करता रहेगा. . .ताकत-वाकत इन लोगों को कुछ होती नहीं, बस पुतले की तरह होते हैं. पत्नी फिर खिलखिला उठी. प्रभाकर ने पहले अपने दुबले-पतले शरीर को देखा, जो बनियान और अंडरवियर में कहीं अधिक दुबला अनुभव हुआ. फिर पत्नी की ओर देख कर मुसकरा दिया. किंतु प्रभाकर यह तय नहीं कर सका कि यह सब पिताजी ने कहा या यूं ही पत्नी ने शरारत से बना लिया.

अचानक बच्चा जाग गया. पत्नी झूले की ओर लपकी. झूले को हिलाते ही बच्चा चुप हो गया. प्रभाकर ने झूले को देखा. सोचा;

● सूरज एन. शर्मा

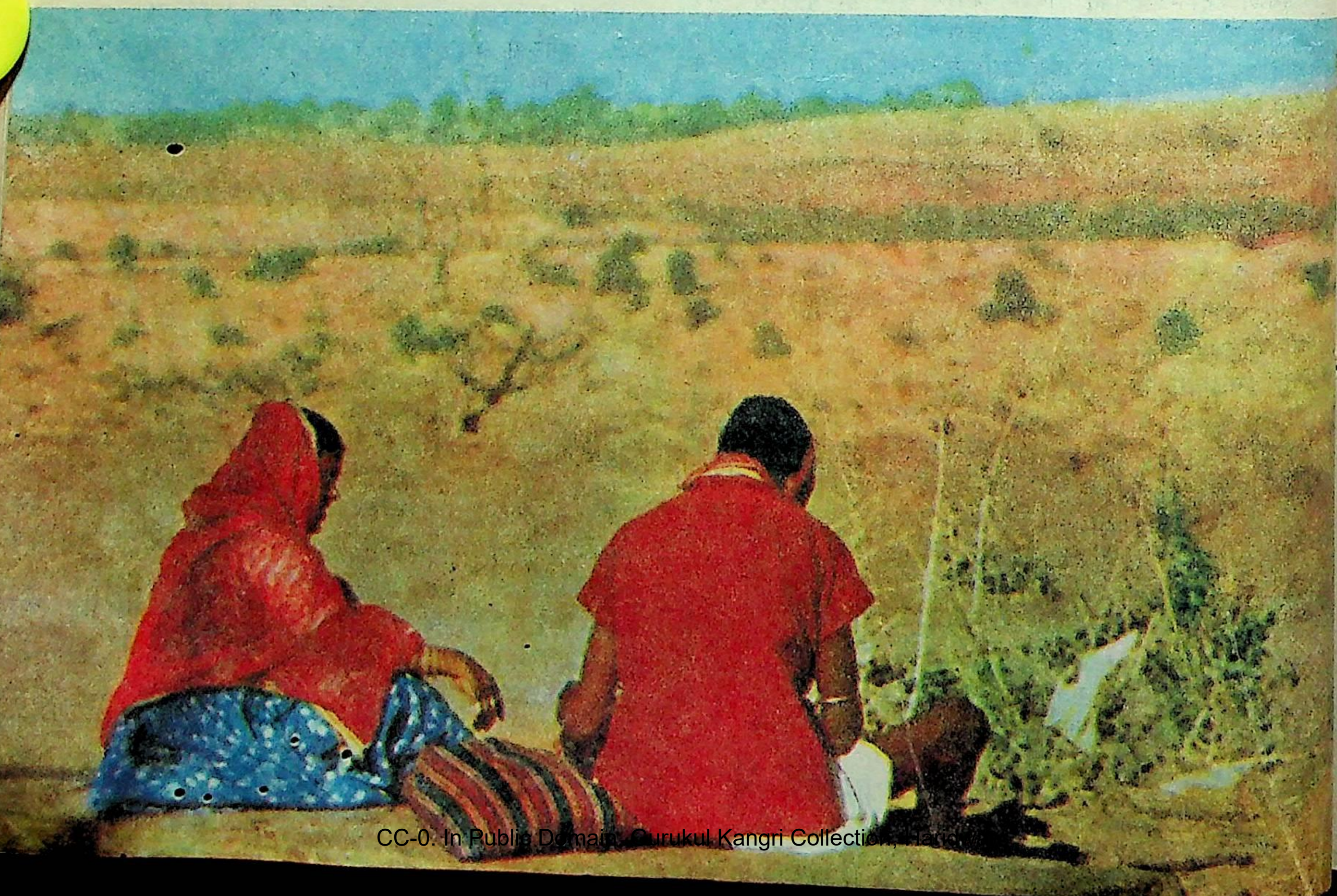

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक ही किया जो साढ़े छह रुपये में फेरी वाले से इसे खरीद लिया. बच्चे को भी आराम है और पत्नी को भी सहूलियत हो गयी है.

—क्यों, झूला तो अच्छा है न?

—हां, क्यों नहीं. अब तुम्हीं देखो, हिलाते ही बच्चा कैसे चुप हो गया. मैं तो कब से कह रही थी.

दरअसल प्रभाकर झूले की बात अचानक इसीलिए सोच गया कि उसे उसने दो रोज पहले फेरी वाले से लिया था. प्रभाकर को वह तब पसंद नहीं था. किंतु पत्नी ने दबाव दिया. एक बात और थी, पत्नी ने आखिरी बार उससे यह भी कह दिया था कि जो दूसरा आयेगा, यही झूला उसके काम भी आ जायेगा. प्रभाकर ने जब—इतनी जल्दी—कब? कह कर पत्नी के पेट की ओर देखा तो वह रुष्ट हो गयी. फिर प्रभाकर को झूला खरीदना ही पड़ा.

—हां-हां, क्यों नहीं. यही झूला दूसरे के काम भी तो आयेगा. शरारत से प्रभाकर ने कहा और लोटा ले कर बाहर चला गया.

★ ★

प्रभाकर जब हाथ-मुंह धो कर लौटा तो पत्नी स्टूल पर चाय का गिलास रख चुकी थी. चारपाई पर ताजा धुली चादर देख कर प्रभाकर खुश हो गया. इससे भी बड़ी खुशी उसे पत्नी के एकनिष्ठ और संतुष्ट व्यवहार से हो रही थी.

पत्नी एक थाली में चावल उठा लायी. प्रभाकर के सामने फर्श पर बैठ कर चावलों में से कंकर बीनने लगी.

—आज थोड़ी-सी पालक भी बना लेना. बाबूजी को पालक बहुत पसंद है. प्रभाकर चाय पीते-पीते बोला. बचपन से ही उसे चाय सुड़क कर पीने की आदत हो गयी थी. पत्नी को चाय पीने का यह फूहड़ तरीका बहुत खटकता है. किंतु उसने प्रभाकर से कभी कुछ नहीं कहा.

—नये वाले मर्तबान से अचार भी निकाल देना. बाबूजी को अचार भी बहुत पसंद है.

—क्यों, पुराने वाले मर्तबान का अचार खत्म हो गया?

—नहीं, खत्म तो नहीं हुआ है, परसों उसमें पानी गिर गया. शायद उन्हें अच्छा नहीं लगे.

—ठीक है. आज छुट्टी का दिन है, कहीं घूमने चलोगी? प्रभाकर एक क्षण चुपचाप सोचता रहा. फिर बोला—ठंडी सड़क की ओर चलेंगे, बाद में टिकट मिल गया तो पिक्चर चले जायेंगे.

पिक्चर वाली बात सुन कर पत्नी का चेहरा खिल आया. प्रभाकर की ओर देख कर उत्साह से कहने लगी—पिक्चर तो बहुत अच्छी आयी है. गौरी नाम ही है ना. कल ही साहजी की लड़की देख आयी है. बहुत तारीफ कर रही थी पिक्चर की. फिर जैसे कुछ याद आ गया हो. एकाएक चुप हो गयी.

—तब तो पिक्चर अवश्य चलेंगे. मैं जल्दी से नहा लेता हूं. तुम स्टोव जला कर उसमें पालक चढ़ा दो.

—लेकिन बाबूजी? पत्नी ने सहमते-सहमते प्रभाकर के सामने प्रश्न छोड़ दिया. प्रभाकर खूंटी से तौलिया खींचने ही जा रहा था कि फिर चारपाई पर बैठ कर सोचने लगा.

—हां बाबूजी क्या सोचेंगे.?

दोनों कुछ क्षणों तक अपने-अपने ढंग से सोचते रहे. जब कभी भी छुट्टी का दिन होता तो प्रभाकर, पत्नी और दो साल के बच्चे के साथ खा-पी कर बाहर निकल जाता था. दिन भर इधर-उधर घूमते रहते. फिर पत्नी किसी रेस्त्रां या चाट हाउस पर चलने की बात सोच लेती. प्रभाकर ऐसे क्षणों पर हमेशा चुपचाप हो आता. वह जानता था, पत्नी ने इस मद के लिए कुछ रुपये बचाये होंगे. किसी भी तरह वह हमेशा कुछ-न-कुछ रुपया बचा ही लिया करती है. रेस्त्रां में चाट-वाट खा लेने के बाद, बाहर आ कर दोनों ही बाकी बचे पैसों को गिनने लगते. यदि गुंजायश निकलती तो कभी बोट पर

सिद्धार्थ पटेल

झील का चक्कर ही लगा लेते या पिक्चर चले जाते. कभी-कभी पत्नी बच्चे के लिए कोई सस्ता-सा खिलौना खरीद लेती. और क्वार्टर पर आ कर उन्हें दीवार पर लगी आलमारी पर सजा देती. इससे वहां खिलौनों की लंबी कतार बन गयी थी.

बाबूजी की नजर,आते ही उन खिलौनों पर पड़ी तो मुसकराये. कहने लगे—वाह, इतने खिलौने और इस तरह सजा कर! जरूर बहू की करामात होगी.

यद्यपि क्वार्टर की हर बात में बहू की करामात थी. साफ सुथरा रखने से सजावट तक. किंतु बाबूजी जैसे इसी बात पर गौर कर पाये. हो सकता है बहू से विनोद करने का मूड हो आया हो. कुछ भी हो,उनका स्वभाव है ही विनोदी और प्रभाकर को यही सबसे अच्छा लगता है.

तब पत्नी ने तो लजा कर सिर झुका लिया था. किंतु प्रभाकर बाबूजी के साथ हंसता रहा था.

—क्यों न बाबूजी को भी साथ ले चलें. घूम-फिर भी लेंगे मन हुआ तो पिक्चर भी देख लेंगे. पत्नी ने सहज ही अपनी राय दी.

पत्नी की यह राय प्रभाकर को भी अच्छी लगी. वह भी यही बात सोच रहा था. बोला—सोच तो मैं भी यही रहा हूं. अगर बाबूजी ने मना कर दिया तो फिर हम भी नहीं जा पायेंगे.

—नहीं, ऐसी बात नहीं. बाबूजी को मैं राजी कर लूंगी. वह अब आने ही वाले होंगे. . .तुम जल्दी से नहा लो. पत्नी चावल का थाल ले कर रसोई में चली गयी. वह दातौन करता हुआ बाथ रूम में चला गया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबूजी जब टहलने से लौटे तो बाथरूम से गुनगुनाने की आवाज आ रही थी. वह समझ गये, कि प्रभाकर अब नहा रहा होगा. बहू को देखते ही अपने विनोदी स्वभाव से विवश कहने लगे——बहू, प्रभाकर को गुनगुना तो तुमने सिखा दिया लेकिन यह दस बजे नहाने का समय भी तुमने ही बताया?

——बाबूजी, असल बात यह है कि आज इनके आफिस में छुट्टी है.

——ओह, तभी इनकी सब बातें इत्मीनान से हो रही हैं. हंसते हुए बाबूजी ने अखबार खोल लिया. शायद अभी बाहर से खरीद लाये. कुछ महीने प्रभाकर ने भी अखबार लगाया था. हाकर सुबह ही आ कर दरवाजे से भीतर फेंक जाता. किंतु प्रभाकर पूरा अखबार कभी नहीं पढ़ पाता. हत्या, चोरी, डकैती आदि दुर्घटनाओं की हेडिंगें पढ़ लेता. फिर अखबार को चारपाई के नीचे फेंक देता. अखबार से पत्नी भी संतुष्ट नहीं थी. कहती रहती थी——अजी तुमने अखबार बेकार लगवा रखा है. पढ़ते तो हो नहीं. खाली इकट्ठा करके क्या फायदा. बेकार में पैसे खर्च होते हैं. बाद में तो यह फिर रद्दी के भाव ही बिकेगा. . .प्रभाकर ने पत्नी की बात का कोई प्रतिवाद नहीं किया. दूसरे ही दिन से अखबार बंद करवा दिया.

अब बाबूजी के हाथ में जो अखबार देखा तो पत्नी को कुछ अजीब-सा लगा. सोचने लगी, नाहक ही अखबार बंद करवाया. लगा होता तो बाबूजी को अपने पैसों से खरीद कर नहीं लाना पड़ता. आज ही इनसे कह कर एक महीने के लिए अखबार लगवा दूंगी. जब बाबूजी चले जायेंगे तो बंद करवा देंगे. बाबूजी को तो परेशानी नहीं होगी.

बाबूजी कुछ देर अखबार पढ़ते रहे. पढ़ने को मन नहीं हुआ तो क्वार्टर से बाहर निकल आये. अकारण ही झील की ओर देखने लगे. झील पर तैरती बहुत सी किश्तियों को देख कर वह खुश हो गये. कुछ क्षण यूंही टहलते रहे. निरुद्देश्य. तभी उनकी नजर क्वार्टर की दीवारों के पास लगे फूलों पर पड़ गयी. यद्यपि फूलों के पौधों से सूखी पत्तियों को प्रभाकर हमेशा निकाल देता. किंतु बाबूजी भी सूखी पत्तियों को चुनने लगे. इस तरह पत्तियों को चुन-चुन कर निकालने में उन्हें बड़ा सुख महसूस होता है.

बाबूजी जब ट्रान्सफर हो कर बरेली में आये थे, तभी एक अच्छा क्वार्टर उन्हें वहां मिल गया था. बाबूजी ने क्वार्टर के चारों ओर बहुत से फूलों के पौधे स्वयं लगाये थे. तब उल्लास के दिन थे. हर रोज सुबह अपने ही हाथों से उन्हें सींचते रहते. जब तक प्रभाकर की मां जीवित थी, वह भी मदद कर दिया करती थी. किंतु दो साल पूर्व एक ट्रक से टकरा कर उसका ऐक्सीडेंट हो गया. सप्ताह भर अस्पताल में पड़ी रही. फिर आपरेशन हुआ. किंतु आपरेशन के बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी. बाबूजी कुछ दिनों तक दुखी रहे. परंतु फिर इसे ईश्वर का ही एक विधान समझ कर अपने को समझाने लगे. पूरे महीने भर तब प्रभाकर अपनी बहू के साथ उनके ही पास रहा. प्रभाकर छुट्टियां और बढ़ाना चाहता था. उसे महसूस हुआ था कि बाबूजी अगर अकेले रह गये तो ज्यादा दुखी रहेंगे. किंतु बाबूजी ने मना कर दिया. तब प्रभाकर ने बहू को वहीं रुक जाने के लिए कहा था. किंतु बाबूजी तब भी टाल गये——बेटे क्या करेगी बहू यहां ठहर कर. बेकार में ऊब जायेगी. वह बाबूजी की जिद के सामने कुछ भी नहीं कर सकता था. एक दिन बहू के साथ लौट आया.

. . .उन दिनों बहुत पहले से ही बाबूजी के रिटायरमेंट की बात चल रही थी. किंतु पत्नी की मृत्यु के बाद बाबूजी ने एक्सटेंशन के लिए अर्जी भेज दी. कुछ ही दिनों बाद तीन साल का एक्सटेंशन का आर्डर मिल गया. इतनी जल्दी एक्सटेंशन मिल जाने का मुख्य कारण यही था कि वह बड़े कर्मठ और ईमानदार समझे जाते रहे. पिछले वर्ष बाबूजी ने अपने फंड का कुछ रुपया निकाल कर पोते के नाम से बैंक में जमा कर दिया. प्रभाकर को जब मालूम हुआ तो वह चौं... किंतु बाबूजी से कुछ नहीं पूछ सका.

यद्यपि बाबूजी को पत्नी की याद बहुत आती थी. किंतु उ... अपने को बहुत व्यस्त बना लिया था. ताकि सोचने के लिए खाली स... ही न रहे. परंतु यादें तो आती ही रहती हैं. बाबूजी अकसर यह सो... कर कि उनका अब सब कुछ एकमात्र प्रभाकर, उसकी बहू औ... उसका बच्चा है, उन लोगों के प्रति बेहद दयालु हो जाते हैं. तब... क्षणों में वह या तो प्रभाकर को लंबे-चौड़े पत्र लिखते या छुट्टि... का मौका होता तो स्वयं प्रभाकर के पास चले आते.

प्रभाकर हमेशा चाहता रहा कि बाबूजी उसके साथ रहें. कि... बाबूजी हमेशा टाल जाते हैं. कहने लगते कि तीन सालों के ब... फिर ऐसा ही तो करना है. अभी सब ठीक है. बहू भी बाबूजी के इ... व्यवहार से उनके प्रति अथाह श्रद्धा संजोये थी. वह जानती थी... बाबूजी सब कुछ जानते हैं. इसी वजह से वह उनको परेशानी में न... डालना चाहते हैं. यद्यपि बाबूजी के साथ रहने पर परेशानी जै... कोई बात नहीं थी. किंतु कुछ-न-कुछ असुविधा अवश्य होती. ... वक्त बाबूजी की उपस्थिति का अहसास कुछ-न-कुछ बदलाव अव... ला देता.

बाबूजी बहुत देर तक सूखी पत्तियां बीनते रहे. जब कुछ खिन्नता सी महसूस हुई तो उठ कर देवदारों के नीचे चले आये. ठंडी हवा से उनका मन प्रसन्न हो आया.

★ ★

प्रभाकर जब नहा कर आया तो कमरे में स्टूल पर अखबार देख कर चौंका. परंतु उसने तत्काल अनुमान लगा लिया कि बाबूजी टहलने से लौट आये होंगे. . . रास्ते में कहीं पर अखबार वाला मिल गया होगा. बाबूजी की अखबार पढ़ने की आदत को याद कर प्रभाकर भी अखबार लगा लेने वाली बात क्षण भर में ही सोच गया. किंतु बाबूजी को कमरे में न पा कर उसे आश्चर्य हुआ. गीले तौलिया को खूंटी से लटका कर वह रसोई के कमरे में चला आया. रसोई का कोई अलग कमरा नहीं है. दो बड़े-बड़े कमरे और एक बाथरूम, तथा पीछे की ओर खुली बरामदेनुमा थोड़ी जगह. पूरे क्वार्टर में प्रभाकर के पास बस इतनी सी जगह मिली है.

पीछे की ओर खुली बरमादेनुमा जगह में ही प्रभाकर ने कनस्तरों के टिन और चाय की खाली पेटियों के तख्ते ठोंक कर रसोई के लिए स्थान बना लिया. राशन वगैरह सब भीतर के कमरे में ही रख लिया जाता है. पहली को जब तनख्वाह मिलती है तो प्रभाकर पूरे महीने भर का राशन वगैरह इकट्ठा कुली लगा कर उठा लाता है. शुरू-शुरू में उधार की एक दुकान लगायी. किंतु उसकी पत्नी ने यह कह कर कि उधार कभी नहीं खाना चाहिए, दुकान छुड़वा दी. तब से प्रभाकर को एक अनुभव हुआ कि उधार खाने में रुपया अधिक खर्च होता है किंतु एक साथ नकद ले आने में ऐसी बात नहीं.

बाहर के कमरे में दो खाटें और दो स्टूल, एक आलमारी और ईंटों पर रखे तीन ट्रंक. बस इतना ही सामान रहता है. बहू ने अपने हाथों से काढ़ कर बनाये गये मेजपोश ट्रंकों के ऊपर बिछा दिये हैं. जिससे बक्से फूहड़ नहीं दिखायी पड़ते. दीवारों पर एक ओर राम-लक्ष्मण की फ्रेम की हुई फोटो लटका दी है. दूसरी दीवार पर दो एक कलैंडर, और बायें कोने में बच्चे का झूला लटका दिया है. कमरे में निहायत सादगी होने के बावजूद भी वह सजा-संवरा ही लगता है.

प्रभाकर ने चाहा कि बाबूजी बाहर वाले कमरे में ही रहें, और बहू भीतर के कमरे में रह ले. किंतु बाबूजी ने उनकी असुविधा भांप ली. कहने लगे——मुझे अंदर वाले कमरे ही अच्छे लगा करते हैं. शायद बाबूजी यह महसूस कर गये कि बाहर वाले कमरे में उनके सोने से बहू-बेटे के बीच एक दूरी आ जायेगी. फिर उन्हें रात में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाग कर सिगरेट पीने की भी आदत है. [illegible] पीता है. इससे शायद वह कुछ असुविधा महसूस करे. यही सब सोच कर बाबूजी ने अपने लिए भीतर वाले कमरे में बिस्तर डलवा लिया. भीतर वाले कमरे में खिड़की कुछ बड़ी है. बहू उसे हमेशा बंद रखा करती है. किंतु बाबूजी ने रात में खोल लिया था. सुबह ताजी हवा और प्रकाश दोनों ही कमरे में भर गये थे.

पत्नी ने प्रभाकर की उपस्थिति महसूस की. उसे समीप ही खड़ा देखा तो मुसकरा कर पूछा—— नहा लिया?

——हां. उसने संक्षिप्त उत्तर दिया. फिर बाबूजी के बारे में पूछने लगा—— बाबूजी तो टहलने से आ गये शायद. बाहर अखबार देखा था. पता नहीं इस वक्त कहां चले गये?

——शायद बाहर टहल रहे होंगे.

——तुमने बात की?

——अभी कहां? बात करने की सोच ही रही थी, तभी वह अखबार पढ़ने लगे थे. अब तुम्हीं कह रहे हो वहां नहीं हैं.

——सुनो, ऐसा करना, अब खाते समय बात कर लेना.

——हां ठीक है. और सुनो, जब तक बाबूजी यहां हैं तब तक अखबार लगा लो. उन्हें खरीद कर लाना पड़ता है. पता नहीं क्या सोचते होंगे?

——हां, मैंने भी यही सोचा है. नाहक बाबूजी को अखबार के लिए इधर-उधर खड़ा रहना पड़ता होगा. आज ही पुराने वाले हाकर से कह दूंगा. लाओ वह प्लेट दो, अचार निकाले देता हूं.

पत्नी ने चीनी मिट्टी की बनी सफेद प्लेट प्रभाकर को थमा दी. प्रभाकर ने बीच वाले कमरे की अलगनी में रखे मर्तबान से अचार निकाल कर प्लेट पत्नी को थमा दी. पत्नी की ओर देख कर अकारण ही मुसकरा दिया. कुछ क्षण पूर्व बच्चा जाग गया था. अपने पास किसी को न पा कर रोने लगा.

——अरे सुनो, बच्चा जाग गया है. उसे दूध दो. मैं जा कर बाबूजी को देखता हूं. खाना तो बन चुका है न?

——हां. पत्नी ने संक्षिप्त उत्तर दे कर मुसकरा दिया. फिर बच्चे के झूले वाले कमरे में आ गयी. पत्नी के पीछे-पीछे प्रभाकर भी आया. बालों को हथेलियों से पीछे की ओर तराश कर बाहर आ गया.

★ ★

बाबूजी ऊंचे देवदार के नीचे खड़े हो कर झील की ओर देख रहे थे. प्रभाकर के चलने से हुई आहट से चौंके तो बोले—— आओ प्रभाकर. नहा तो लिया?

——हां बाबूजी, प्रभाकर ने उत्तर दिया. किंतु बाबूजी के शब्दों में व्यंग्य की हलकी झलक देख कर झेंप गया. बाबूजी के चेहरे की ओर देखा तो पाया वह मुसकरा रहे थे. प्रभाकर ने अपनी नजरें झुका लीं और बाबूजी के पास आ गया.

——अगर कहीं प्लाट-वलाट मिल जाय तो खरीदने के लिए बातचीत क्यों नहीं करते? बाबूजी बिना किसी संदर्भ के कहने लगे—— यहां अपना एक मकान हो जाये तो वह अच्छा रहेगा. बाबूजी शायद बहुत देर से मकान के ही बारे में सोच रहे थे. प्रभाकर पास आया तो सहज ही कह गये.

प्रभाकर पहले एकाएक सकपका आया. क्या उत्तर दे? किंतु उत्तर तो कुछ देना ही था. कहने लगा—— बाबूजी आजकल तो जमीन सोने से भी ज्यादा कीमती चीज हो गयी है. मेज रखने भर की जगह के लिए हजारों की बात करते हैं. फिर यह क्वार्टर तो ठीक ही है. किराया भी थोड़ा-सा और खुली जगह भी है. क्या आपको कोई असुविधा महसूस हुई?

——नहीं. ऐसी बात नहीं है. दरअसल मैं सोच रहा था कि अब दो-तीन साल बाद नौकरी से अलग हो कर गांव जाना पड़ेगा. परंतु गांव में रहने को अब मन नहीं करेगा. सारा जीवन तो शहरों के बीच गुजरा है. अब बुढ़ापे में गांव के सारे नाज-नखरे कैसे कर पाऊंगा. इसलिए सोच रहा था कि अपना एक मकान यहां हो जाय तो जीवन के शेष दिन यहीं बिता लूंगा. बाबूजी धीरे-धीरे किंतु एक ही सांस में सारी बातें कह गये. अब चुप हो कर सवालिया निगाह से प्रभाकर की ओर देखने लगे.

प्रभाकर कुछ क्षण सोचता रहा. फिर बोला—— बाबूजी जमीन तो मिल ही जायेगी. परंतु रुपया बहुत लगेगा. फिर मकान बनाने का खर्च अलग से. . .

——क्यों, गांव की जमीन और मकान बेचा भी जा सकता है. यूं भी मकान में चूहे के बिल-ही-बिल होंगे और खेत तो सालों से बंजर पड़े हैं. घास-पात के सिवा कुछ होगा ही नहीं. प्रभाकर की बात काट कर बाबूजी क्षण भर को चुप हुए, फिर कहने लगे—— भई, रुपया तो एक समय खर्च होगा ही चाहे यहां हो या गांव में. यहां मकान बन जायेगा, तो तुम्हें भी सुविधा रहेगी और मुझे भी.

बाबूजी की बातों से प्रभाकर यह अनुभव कर चुका था कि वह गांव नहीं जाना चाहते हैं. ठीक भी है, गांव जा कर करना क्या है. प्रभाकर सोचने लगा कि गांव में अपना दम घुटवाने के सिवा और कुछ नहीं किया जा सकता. इसी क्षण प्रभाकर को विचार आया कि अपने रिटायरमेंट के बाद से भी तो गांव ही जाना पड़ेगा. अगर यहां मकान बन ही जाये तो बुरा नहीं. सोच कर ही वह बोला—— ठीक है बाबूजी, मैं कोशिश करूंगा. अगर कोई ठीक-सा प्लॉट मिल गया. किंतु घर की जमीन आदि . . .

——भई, जब तुम प्लॉट तलाश लो तो मुझे इत्तला कर देना. मैं तत्काल गांव की जमीन आदि के कागजात तैयार कर बिकवा दूंगा. प्रभाकर की बात काट कर बाबूजी उत्साहित हो आये. इन क्षणों में प्रभाकर बराबर बाबूजी के उत्साह को अनुभव करता रहा. और सोचता रहा कि जब मकान बन जायेगा तो सचमुच बाबूजी बेहद खुश हो आयेंगे. एक असीम सुख उन्हें मिलने लगेगा. प्रभाकर ने मकान बनाने के विचार को अपने भीतर दृढ़ कर लिया.

बहुत क्षणों तक दोनों के बीच एक गहरा मौन समाया रहा. दोनों ही झील की ओर देखते रहे. जब किश्तियां आंखों से ओझल हो गयीं तभी प्रभाकर बाबूजी की ओर मुंह घुमा कर बोला—— बाबूजी, आप कल से अखबार नहीं खरीदना. हाकर सुबह ही यहां आ कर दे जाया करेगा.

——नहीं, ऐसी कोई बात नहीं थी. टहलने तो जाता ही हूं. खैर तुमने हाकर से कह दिया है तो ठीक ही है. शायद बाबूजी को अखबार वाली बात अच्छी नहीं लगी. अनमने ढंग से उत्तर दिया. प्रभाकर को इससे एक ग्लानि-सी हो आयी. उसे लगा, वह नाहक ही बाबूजी से औपचारिक बातें करने लगा है. .

इसी क्षण प्रभाकर ने सोचा कि आज घूमने और पिक्चर जाने वाली बात बाबूजी से कह दे. किंतु उनके चेहरे पर उलझनें देख कर वह चुप ही रहा. इस तरह की उलझनें, उनके चेहरे पर वह कई बार देख चुका था. कई बार प्रभाकर ने इसका कारण जानना चाहा. किंतु उसे या तो मां की मृत्यु का कारण ही नजर आता या फिर कोई कारण ही नहीं तलाश पाता. अब तक इस पर प्रभाकर ने एक दृढ़ विचार बना लिया था कि बाबूजी जब-जब अपनी स्मृतियों में खोने लगते हैं तभी वह अनमने-से हो आते हैं. क्योंकि बाबूजी के चेहरे पर उलझनें उसे मां की मृत्यु के बाद से ही अनुभव हुई थीं. फिर प्रभाकर यह भी जानता था कि बाबूजी 'उसे' बहुत प्यार करते थे.

——खाना तैयार है. पत्नी बच्चे को गोद में लिये क्वार्टर के दरवाजे पर खड़ी हो कर बोली थी.

प्रभाकर क्षण भर पत्नी को देखता रहा. फिर घूम कर बाबूजी की ओर देखा. वह सोच रहा था कि बहू की आवाज को बाबूजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

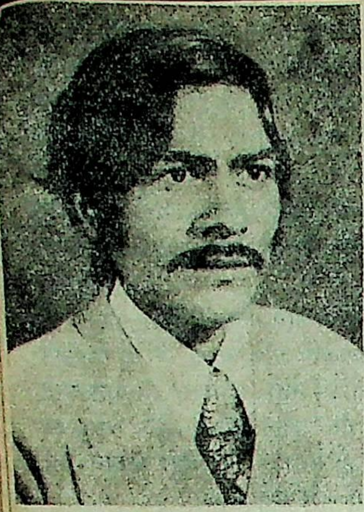

अकुलेश परिहार (जन्म: १९४७) के लिए लेखन उस तकलीफदेह प्रक्रिया से गुजरना है जो जीने की आवश्यक शर्त है. इन्होंने लेखन को अपने और अपनी असमर्थता के खिलाफ एक लड़ाई के रूप में स्वीकार किया है. इन्हें गलत व्यावस्था में सांस ले रहे आम आदमी की तकलीफों का हमेशा अहसास रहा है और उन्हें अपनी कहानियों में मूर्त किया है.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने महसूस किया या नहीं. किंतु बाबूजी पूर्वतः नीचे की ओर देखते रहे. शायद बहू की आवाज को उन्होंने नहीं महसूस किया. अंत में प्रभाकर को ही कहना पड़ा— बाबूजी, खाना तैयार हो गया है.

—हूं. बाबूजी ने क्षण भर प्रभाकर की ओर देखा. कमीज की आस्तीन समेटते हुए भीतर आ गये. पीछे-पीछे प्रभाकर भी आ गया.

—अरे वाह, बहू ने तो पालक भी बना लिया और अचार भी रखा है. बाबूजी खुश हो कर, थाली परोस रही बहू की ओर देखने लगे थे. मन-ही-मन सोचने लगे कि उनके प्रभाकर की पत्नी सचमुच साक्षात लक्ष्मी है. . . सब कुछ नसीब का है. बाबूजी मन-ही-मन कह गये.

अभी इससे पहले बाबूजी ने चौके के चारों ओर जल छिड़का और फिर जनेऊ हाथ में पकड़ कर कुछ गुनगुनाते रहे. प्रभाकर उन्हें तब तक देखता रहा जब तक कि उन्होंने आंखें नहीं मूंद लीं. प्रभाकर ने इसी बीच चुपके से घड़ी देख ली. पूरे आठ मिनट लगे थे. बाबूजी ने रोटी का एक छोटा-सा कौर तोड़ा. उसे सब्जी आदि में भिगो कर चौके के पास रख दिया. बाबूजी को उस पर जल छिड़कते देख कर प्रभाकर एकाएक सिहर आया. उसके मन में तत्काल एक विचार कांप गया कि कहीं बाबूजी ने वह कौर उसकी मां के लिए तो नहीं रख छोड़ा? स्मृति-दंश कितना कचोट रहा होगा बाबूजी को? सोचते ही प्रभाकर का दिल पीड़ा से भर आया . . . किंतु वह कर ही क्या सकता है. चुपचाप कौर तोड़ने लगा.

जब बाबूजी दो-तीन रोटियां खा चुके थे, तो बहू ने चावल परोसते पूछ लिया— बाबूजी, आज इनकी छुट्टी है. . . फिर वह एकाएक झिझक कर चुप हो गयी. किंतु तत्काल ही संभल कर कहने लगी—ये कह रहे हैं, आज सब लोग कहीं घूमने को चलेंगे. उसने फिर प्रभाकर की ओर इशारा कर दिया.

—मैं कहां कह रहा हूं, यह सब तो तुम्हीं कह रही थी. प्रभाकर मुंह में कौर लिये ही अपनी सफाई देने लगा. बनावटी क्रोध से वह की ओर देखा तो वह शरारत से मुसकरा दी.

बाबूजी ने भी यह सब देख लिया था. सोचा, इतने बड़े हो गये हैं अभी भी इस तरह डरते हैं. मुसकराते हुए कहने लगे— ठीक है, तुम लोग घूम आना. मैं यहां बच्चे को बहला लूंगा.

—नहीं बाबूजी, हम सब चलेंगे. सुना है गौरी पिक्चर आयी है. पड़ोसिनें बड़ी तारीफ कर रही थीं. बहू रोटी बेलते-बेलते बच्चों की तरह बाबूजी को फुसलाने लगी—इस बार मौका पड़ा है. सब साथ हैं. फिर आज इनकी छुट्टी भी है. कुछ समय टहल भी लेंगे और पिक्चर भी. . . सब साथ रहेंगे तो बड़ा अच्छा लगेगा.

बाबूजी कुछ क्षण कौर चबाते रहे. फिर मुसकरा कर प्रभाकर की ओर देखने लगे— लगता है तुमने बहू की आदत भी बिगाड़ दी है. पिक्चरों का शौक तो तुमको ही था. क्यों?

प्रभाकर एकाएक झेंप-सा गया. बहू मुसकराने लगी. किंतु जब उसे प्रभाकर की झेंप असली महसूस हुई तो वह उसके लिए सफाई देने लगी— नहीं बाबूजी, ये तो अब पिक्चर देखते ही नहीं. वह तो गौरी पिक्चर आयी है, तब कह रही हूं. . .

—वाह बहू, हो तो बड़ी होशियार. जब जैसी बात करनी चाहिए तब वैसी बात कर सारी स्थिति को संभाल लेती हो. बाबूजी बहू की बात काट कर खिलखिला उठे. साथ में बहू और प्रभाकर भी.

* *

बाबूजी तौलिये से हाथ पोंछते हुए जब बाहर के कमरे में आये तो बच्चा रोने लगा था. बहू भीतर से लपकती हुई आयी. किंतु तब तक वह बच्चे को गोद में उठा कर चुप करा चुके थे. बहू को देखा तो कहने लगे—बहू तुम भी खा लो. इसे मैं बहला लूंगा. और बच्चे को हिलाते हुए बाहर निकल आये. एकाएक बाबूजी को उन दिनों की याद ताजा हो आयी जब वह जवान थे और अपनी पत्नी के साथ छोटे से प्रभाकर को बहलाया करते थे. . . तब प्रभाकर चुप ही नहीं होता था तो पत्नी झिड़क देती थी— अजी. . . तुम क्या जानो बच्चों को कैसे चुप कराया जाता है. तुम्हें तो बस हर वक्त शरारत ही सूझती है. . . तब वह सचमुच पत्नी के साथ शरारत कर बैठते थे और प्रभाकर अपनी छोटी-छोटी आंखों में आंसू लिए उन्हें टुकर-टुकर ताका करता था. . . किंतु अब. . . . बाबूजी ने एक हलकी-सी आह ली और बच्चे को हवा में उछालने लगे.

बहू उतने क्षणों तक बाबूजी को अपलक देखती रही. आहिस्ता कदमों से प्रभाकर के पास आयी. कहने लगी— देखा, बाबूजी की गोद में जाते ही बच्चा कैसे चुप हो जाता है.

प्रभाकर हाथ धो चुका था. बहू की साड़ी से ही हाथ पोंछते हुए कहने लगा— किंतु बाबूजी मेरे बारे में कहा करते थे कि मैं तो चुप होता ही नहीं था.

—तुम शैतान जो हो. बहू ने तपाक से प्रभाकर की बात काट दी.

—सच! प्रभाकर ने आश्चर्य में भर कर बहू की ओर देखा. एकाएक तेजी से उसे आलिंगन में भर कर दो-तीन बार चूम लिया.

—छोड़ो भी. बाबूजी देखेंगे तो क्या कहेंगे. बेशरम कहीं के. पत्नी साड़ी ठीक करते हुए चूल्हे के पास चली गयी. प्रभाकर शायद उसे एक बार और आलिंगनबद्ध करना चाहता था. किंतु कर नहीं पाया. मुसकराता हुआ बाहर के कमरे में चला आया. किंतु तत्काल ही जैसे कुछ याद आ गया हो. वापस रसोई में आ गया.

—सुनो, तुम्हारे पास बीसेक रुपये तो होंगे ही?

—हूं. बहू ने सिर हिला कर हामी भरी.

—तुम खाना खा कर तैयार हो जाना. चौका-बरतन शाम को लौट कर कर लोगी. अभी देर हो जायेगी तो फिर टिकट भी नहीं मिल सकेंगे. प्रभाकर एक क्षण को चुप हुआ किंतु तत्काल शरारत से बोला — हो तो तुम बड़ी तेज, आखिर बाबूजी को पटा ही लिया.

किंतु बहू ने इस बात को ज्यादा महत्व नहीं दिया. वह मन-ही-मन दिन भर का प्रोग्राम और खर्च का हिसाब लगाने लगी.

प्रभाकर ने उसे चुपचाप विचारों में खोते देखा तो वह बाहर चला आया.

प्रभाकर अपनी पत्नी से कुछ अधिक ही स्नेह रखता है. इसका कारण कदाचित पत्नी की सहजता और उसका उन्मुक्त व्यक्तित्व ही हो. शायद यही वजह थी कि वह जब भी पत्नी को गंभीर या किन्हीं विचारों में खोये देखता तो उसे उलझन हो आती थी. वह पत्नी को रत्ती भर भी क्लेश नहीं देना चाहता था. प्रभाकर की हमेशा एक ही इच्छा रही कि जिस तरह पत्नी अपने सब कुछ के साथ उसके लिए समर्पित है, वह भी उसी तरह पत्नी के लिए समर्पित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे. इसी वजह से प्रभाकर तैयार होने के पूरे समय भर पत्नी के ही बारे में सोचता रहा. पत्नी का गंभीर हो आना और एकाएक किसी विचार में खो जाना, प्रभाकर के लिए अकसर परेशानी का कारण बन जाया करता है. जबकि पत्नी के लिए वह समस्या ज्यादा मानी नहीं रखती.

शीशे के सामने खड़े हो कर प्रभाकर ने बालों में कंघा किया. फिर पत्नी के कुल्ला करने की आवाज को महसूसा, और कोट के बटन लगाता हुआ बाहर चला आया.

—बाबूजी, इसे मैं बहला लेता हूं. आप भी तैयार हो लीजिए.

—ओ-ओ-रे. . . बंदर, देख तो कौन खड़ा है? तेरा बाप. बाबूजी ने बच्चे के गाल पर एक मीठी चपत लगायी. प्रभाकर की ओर देख कर मुसकराये और बच्चा उसे थमा तैयार होने भीतर चल दिये.

बाबूजी और पत्नी के तैयार होने तक प्रभाकर बच्चे को खिलाता रहा. कभी झील या कभी चिड़िया दिखाता रहा.

* *

प्रभाकर, बाबूजी और बहू जब तैयार हो कर बाहर निकले तो आसमान पर बादल छा चुके थे. सुबह से तेज हो रही धूप फीकी हो आयी थी. जून के महीने के आखिरी दिनों में हमेशा ही ऐसा हो जाया करता था. सैलानियों का सीजन अब लगभग बीत चुका होता है. इक्के-दुक्के जोड़े कभी कभार मूंगफली टूंगते दिखाई पड जाते थे या फिर चुलबुलाते, ग्रुप में चलते कालेजी लड़के. इसके सिवा यदि था तो वह अपारदर्शी कोहरा. किंतु इन दिनों कोहरे और बादलों पर कतई भरोसा नहीं किया जा सकता है. कुछ देर पहले चमकती तेज धूप होती है तो चंद क्षणों बाद ही तेज मूसलाधार वर्षा. इसी वजह से क्वार्टर से बाहर निकलते वक्त बाबूजी ने छाते साथ रखवा लिये थे. गेट से बाहर निकलते ही प्रभाकर ने बच्चे को स्वयं अपनी गोद में ले लिया. दाहिनी ओर बाबूजी, फिर प्रभाकर और तब बहू, तीनों कदम से कदम मिला कर चलने लगे. इन क्षणों में तीनों में से प्रत्येक जिस चीज को महसूस कर रहा था— वह था एक अव्यक्त सुख. सफल जीवन का. यद्यपि बाबूजी पत्नी के एक्सीडेंट के साथ ही जीवन की बाजी हार चुके थे, परंतु प्रभाकर के सफल जीवन को महसूस कर ही वह सुख की अनुभूति कर लिया करते थे.

मुश्किल से फ्लैट तक पहुंचते ही बारिश शुरू हो गयी. बाबूजी ने छाता खोल कर एक सिगरेट सुलगा ली और अपने में खोये-खोये-से दो-तीन कदम आगे बढ़ लिये.

—अब कहां चलें? कम्बख्त बारिश शुरू हो गयी. प्रभाकर ने बहू की ओर देख कर धीरे से कहा. बहू ने अपना शाल कंधों पर अच्छी तरह फैला कर मुसकरा दिया, जैसे बारिश का इस तरह हो आना उसे अच्छा लगा हो.

कुछ आगे चल कर जब बारिश तेज हो गयी तो बाबूजी ने सबको मंदिर के आंगन में रोक लिया. कहने लगे—क्या फायदा बारिश में भीग कर. काफी तेजी से बरस रहा है. जब बंद हो जायेगा तब चलेंगे. दोनों ने उनकी बात मान ली. बच्चा जिज्ञासु-सा कभी इधर कभी उधर देखने लगा.

बारिश बंद होते ही वह कुछ दूर तक ठंडी सड़क पर टहल आये. इस बीच प्रत्येक चुप रहा. शायद बहुत कुछ बातें कर लेने की चाह ही अंततः एक विशाल चुप्पी में तिरोहित हो कर रह गयी.

ठंडी सड़क से लौटते ही बहू खिलौने वाले की दुकान पर ठहर गयी. एक लकड़ी का खिलौना देखा तो दाम पूछने लगी. किंतु तत्काल जैसे कुछ याद आ गया हो, खिलौने को छोड़ कर एक सींक से बंधा, कंकर भरा गुब्बारा, खरीद लिया. और उसे हिलाते हुए बच्चे को पकड़ा दिया. बाबूजी गौर से बहू को देखते रहे.

—क्यों बहू, खिलौना क्यों नहीं लिया? है तो बड़ा सुंदर, बाबूजी ने तनिक मुसकरा कर कहा.

—बाबूजी, खिलौने तो बहुत इकट्ठा हो गये हैं घर में, बहू ने ही भोलेपन से कहा. प्रभाकर हंसे बिना नहीं रह सका. दरअसल बहू ने इस वाक्य से बाबूजी पर मीठा-सा व्यंग्य किया था. क्योंकि खिलौनों के अधिक इकट्ठा हो जाने की बात बाबूजी ने ही कही थी.

बादल कुछ छंटे तो हलकी-सी धूप फैल आयी. फव्वारे के पास चाट आदि की अधिकांश दुकानें, वर्षा के कारण बंद हो चुकी थीं. केवल एक-दो चाय और पान, कोकाकोला आदि की दुकानें ही खुली थीं.

—बाबूजी, उधर दुकान पर चलते हैं, चाय-वाय ले लेंगे. अब पिक्चर का समय भी हो रहा है. मैं जा कर टिकटें ले आता हूं.

प्रभाकर ने एक बार दुकानों और कैपिटल हाल की ओर देखा. भीड़-भाड़ कहीं नहीं थी. वहां से दृष्टि हटा अर्थपूर्ण दृष्टि बहू पर फेंकी. बहू तत्काल समझ गयी. बाबूजी के पीछे की ओर खिसक कर पर्स से दस रुपये का नोट निकाल कर हाथ में पकड़ लिया. और बच्चे को पकड़ते वक्त बाबूजी की नजरें बचा कर वह नोट प्रभाकर को थमा दिया. आपस में नजरें मिलीं तो दोनों ही मुसकरा दिये.

बाबूजी और बहू चाय की दुकान पर बैठ गये. कुछ ही मिनटों में प्रभाकर टिकट ले कर वापस चला आया.

—क्यों, मिल गये? बहू ने प्रभाकर की ओर देखा.

—हां. भीड़-भाड़ नहीं है. पीछे की सीटें मिली हैं—प्रभाकर ने उत्तर दिया. दुकान पर ऊंघ रहे बुड्ढे की ओर देखा और तीन चाय तथा एक प्लेट तले हुए काजुओं के लिए इशारा कर दिया. बच्चे के लिए प्रभाकर ने एक चाकलेट मंगा ली.

चाकलेट खाते-खाते बच्चा सो गया तो उसे प्रभाकर ने अपनी गोद में उठा लिया. चाय आदि के पैसे बहू ने चुका दिये. बाबूजी पहले ही सिगरेट सुलगा कर पिक्चर हाल की तरफ बढ़ लिये थे.

* *

न्यूज रील शुरू हो चुकी थी. इस वजह से सीटें तलाशने में कुछ असुविधा हुई. थोड़ी देर बाद टार्च ले कर गेट कीपर आया तो तीनों ही अपनी सीटों पर बैठ गये. प्रभाकर बाबूजी और बहू के बीच वाली सीट पर बैठ गया. बच्चा अब तक जाग चुका था. उसे प्रभाकर ने अपनी गोद में ले लिया.

पर्दे पर बंगला शरणार्थियों का भारत में आना दिखाया जा रहा था. प्रभाकर को इसमें कोई विशेष दिलचस्पी नहीं हुई. वरन वह नंगे, भूखे जानवरों जैसे शरणार्थियों को देख कर एक घृणा-सी अनुभव करने लगा. सोचने लगा था, न जाने सरकार ऐसे वैसों को क्यों आने देती है? इतने शरणार्थी आ रहे हैं, इनसे जितना भी होगा यहां का नुकसान ही होगा.

किंतु दूसरी ओर बहू इसके बिलकुल विपरीत सोच रही थी. उनका मन उन लोगों के प्रति अथाह वेदना से भर आया था. वह सोचने लगी थी कि अगर वह भी शरणार्थी कैंपों के आसपास रहने वाली होती तो इन लोगों की पूरी सहायता करती.

परंतु बाबूजी न तो प्रभाकर की तरह सोच रहे थे और न बहू की तरह. तन्मय हो कर पर्दे पर वह भी देख रहे थे. किंतु वह पूरे समय भर यही सोचते रहे कि पाकिस्तानी सैनिकों की यह क्रूरता क्या आवश्यक थी? यद्यपि बाबूजी पर्दे पर शरणार्थियों की आती बाढ़ को और भारतवासियों द्वारा उनका स्वागत देख रहे थे. परंतु वह इन्हें महसूस नहीं रहे थे. इनसे अलग, जो चीज पर्दे पर थी ही नहीं, वही बाबूजी को उलझाये थी. दरअसल उनके दिमाग में सिर्फ पाकिस्तानी सैनिक उतरा रहे थे. क्रूरता लिये हुए.

न्यूज रील के खत्म होते ही पिक्चर की कास्टिंग शुरू हो गयी. तभी बहू ने शाल अच्छी तरह लपेट लिया. वह अब पहले से भी अधिक एकाग्र हो गयी थी. प्रभाकर का भी मन पिक्चर में रमने लगा था. किंतु बाबूजी का मन नहीं लगा. उनके बगल में बैठे प्रभाकर को बार बार यही महसूस होता रहा कि बाबूजी को बैठने में शायद कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन में कई खुशियों के पल होते हैं

सरदर्द को आपकी खुशियां बिगाड़ने न दीजिये

२ ऐस्प्रो लीजिये

ASPRO

माइक्रोफ़ाइन्ड ऐस्प्रो दर्द को जल्दी खींच निकालता है

Nicholas

A.G.63.HN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असुविधा हो रही हो. किंतु बाबूजी को बैठने में कोई भी असुविधा नहीं हो रही थी. बस पिक्चर देखने को उनका मन नहीं हो रहा था. वह तो मात्र बहू का मन रखने के लिए चले आये थे.

पिक्चर में जहां-जहां पर भी दुखांत प्रकरण आते, बहू सहज ही सुबकने लगती. यह बहू के अत्यधिक कोमल हृदय के कारण हमेशा ही होता है. शायद अधिकांश औरतें पिक्चर हालों में इसी तरह सुबका करती होंगी--- प्रभाकर मन-ही-मन अनुमान लगाता रहा. पहली दफा के सुबकने में प्रभाकर ने उसे हाथ से हिला दिया. किंतु दूसरी बार के सुबकने में प्रभाकर कुढ़ कर कह गया--- अब और सुबकी तो मैं उठ कर बाहर चला जाऊंगा. हालांकि बहू उसके बाद भी सुबकती रही. परंतु अपनी सुबकियों को जितना हो सका दबाये रखा.

इंटरवल में प्रभाकर भुनी हुई मूंगफलियां खरीद लाया. किंतु बाबूजी ने खाने से इनकार कर दिया. कहने लगे--- मूंगफलियां मुझे पचती नहीं. तुम लोग खाओ. वह पूरे इत्मीनान से मूंगफलियां टूंगती रही. सिगरेट के लिए बाबूजी को कुछ क्षण बाहर रहना पड़ा.. दुबारा पिक्चर के शुरू होते ही वह ऊंघने लगे. बाबूजी को ऊंघता जान कर प्रभाकर ने आहिस्ता अपना हाथ पत्नी की ओर बढ़ाया और उसकी बांह को सहलाने लगा.

शो जब खत्म हुआ तो हाल स बाहर निकलते लोगों के मुंह फीके-फीके-से हो आये थे. यद्यपि बाबूजी के चेहरे पर किसी भी प्रकार के तनाव के चिह्न नहीं थे. किंतु प्रभाकर और बहू के चेहरों पर तनाव बिखरा हुआ था. घर से तैयार होते वक्त बहू ने चेहरे पर हलका-सा पाउडर लगाया था. वह अब आंसुओं के साथ भीग कर बड़ा भद्दा-सा हो आया था.

हाल से बाहर आ कर जब चाट हाउस की ओर जाने लगे तभी बहू ने प्रभाकर की ओर देख कर कहा--- पिक्चरों की बातें यदि सब सच होतीं तो अच्छा रहता, क्यों?

बाबूजी ने शायद बहू की बात सुन ली थी. बहू से कहने लगे--- बहू, पिक्चर-विक्चरों की बातें कहां सच होती हैं. सच कुछ नहीं होता सिवाय इसके कि आदमी जीवित है. सबसे बड़ा सच यही है कि तुम हो, प्रभाकर है और बच्चा है. बाकी सब कुछ झूठ है--- बाबूजी एकाएक चुप हो आये. उनके चेहरे पर पीड़ा भर आयी थी.

बहू, यद्यपि बाबूजी के शब्दों का अर्थ और उनके चेहरे पर फैली पीड़ा को नहीं समझ सकी. परंतु अब वह भी चुपचाप हो गयी, पिक्चर के बारे में तमाम सारी बातें पूछने को मन करते हुए भी. बहू ने मन-ही-मन रात को प्रभाकर से बातें करने का निश्चय कर लिया.

* *

चाट हाउस पर बैठते ही प्रभाकर ने घड़ी देखी. पौने पांच बज चुके थे. कोहरा और बादल अभी भी पूर्वतः बने थे. किंतु बारिश नहीं हो रही थी. हां, वातावरण में सर्दी कुछ बढ़ चुकी थी. बहू ने बच्चे को शाल से लपेट दिया, ताकि सर्दी-वर्दी न लग जाये.

बाबूजी यद्यपि चाट-वाट पसंद नहीं किया करते थे. परंतु बहू के आग्रह को नहीं टाल सके. उन्हें ज्ञात है कि बहू को चाट और पानी के बतासे खाने का शौक बचपन से ही है, और बहू के साथ-साथ वह शौक प्रभाकर को भी हो गया है.

चाट खाते वक्त एकाएक बाबूजी को एक ऐसे ही पुराने दिन की स्मृति हो आयी. तब शायद पत्नी के साथ बाबूजी ने पहली बार किसी चाट हाउस से चाट आदि खायी थी. बाबूजी को याद हो आया कि मिर्च के तेज हो जाने से पत्नी सी-सी करते-करते रो आयी थी और वह हंसते रहे थे.स्मृति दंश से घायल बाबूजी के ओठों पर अनायास मुसकान खिल आयी.

---क्या बात है बाबूजी? प्रभाकर ने उस मुसकान को देख लिया था. कारण पूछने लगा.

यद्यपि प्रभाकर का इस तरह कारण पूछना बाबूजी को कतई अच्छा नहीं लगा क्योंकि वह अपनी यादों के कारण मुसकराये थे. किंतु बाबूजी प्रभाकर को कभी कुछ कहना नहीं चाहते थे.सहज ही बहाना बना कर टाल गये---मैं तो बहू को देख कर मुसकरा रहा था कि यह चाट को कितने चाव से खाती है. और चुप हो कर बाबूजी जोर से हंस पड़े.उनकी हंसी में साथ प्रभाकर और बहू ने भी दिया. किंतु बाबूजी की हंसी ज्यादा देर नहीं टिक सकी. बरबस ही मन के किसी कोने में दुबका पड़ा कोई खयाल छिटक आया.

चाट हाउस से बाहर निकलने के बाद बाबूजी और बहू सीधे क्वार्टर की ओर चले जाये. परंतु प्रभाकर सब्जी मार्केट से होता हुआ आया. शाम की सब्जी के लिए ताजे टमाटर और कुछ पालक उठा लाया.

क्वार्टर पर पहुंचते ही सबसे पहले बहू ने बच्चे को स्तन पिला कर सुला दिया. बाबूजी चारपाई पर लेट कर सुबह का अखबार पढ़ने लगे. दरअसल अखबार पढ़ना एक माध्यम भर था. बाबूजी अखबार के माध्यम से भी सिर्फ अपना अतीत तलाश रहे थे. एक विशाल अतीत. जिसमें बाबूजी थे और उनकी पत्नी थी, चारों ओर उन्मुक्त खिलखिलाहटें थीं. पत्नी से जुड़ा एक लंबा जमाना. अखबार के चौड़े पृष्ठ की तरह. किंतु बाबूजी उसे स्पष्ट नहीं पढ़ पा रहे थे.

सवा सात बज चुके थे. शाम का सुरमुई अंधेरा ऊपर पहाड़ों से उतर कर धीरे-धीरे पूरे शहर पर फैल गया था. स्पष्ट था कि छुट्टी का दिन अब बीत रहा था.

बहू डेगची में सब्जी भूनते हुए गौरी पिक्चर की ही बात सोचने लगी थी. वह मन-ही-मन फैसला कर रही थी कि वह भी गौरी की तरह बन सकती है. गौरी, जो एक आदर्श नारी थी. वह भी आदर्श हो सकती है, बहू सोचने लगी, कि यह आज का दिन भी कितना अच्छा बीता.

बाबूजी, यद्यपि अखबार के कालमों और हेड लाइनों पर उदास नजर गड़ाये थे. किंतु उनका मस्तिष्क केंद्रित हो कर समूचे दिन के अस्तित्व पर आ कर अटक गया. बाबूजी को महसूस होने लगा कि यदि हर छुट्टी का दिन इसी तरह बीता तो वह बहुत जल्दी घबड़ा कर रोने लगेंगे. वह शायद इस उन्मुक्त दिन का ही असर है कि वह जिसे भूल जाना चाहते हैं, वही बार बार याद आ रहा है. दरअसल अब बाबूजी को पत्नी की स्मृति बेहद तेजी से कचोटने लगी. सुरमुई अंधेरे में पत्नी का खिलखिलाहट से उन्मुक्त चेहरा अनायास उभर आया और इसके साथ ही बाबूजी को अपने अकेलेपन का अहसास साल गया. मन जब अधिक खिन्न हो आया तो बाबूजी उठ खड़े हुए. करने को कुछ नहीं था. अतः फिर बैठ गये किंतु इस निर्णय के साथ कि वह तीन-चार दिन में लौट जायेंगे और ड्यूटी ज्वाइन कर लेंगे.

प्रभाकर कुछ क्षण बाहर फूलों के आस पास टहलता रहा. किंतु जब भीतर आया तो उसके मन पर सिर्फ दो ही विचार थे--- एक बढ़े हुए तो प्लाट खरीदने का और दूसरा विचार एक प्रत्याशा थी, बढ़े हुए वेतन के एरियर के मिलने की.

कमरे में पहुंचते ही एक खटका हुआ. शायद बिल्ली कोई बरतन गिरा दिया. प्रभाकर ने सोचा, अगर बाबूजी पूरे महीने भर रहे तो कम-से-कम दो महीने का बजट डिस्टर्ब करना पड़ेगा और. . . प्रभाकर ने एकदम अपने सोचने को ब्रेक किया. छोटी-सी खिड़की के पास आया. बाहर की ओर देखा. काला अंधकार समूचे शहर को निगल चुका था. खिड़की बंद कर वह चारपाई पर लेट गया. एक-दो बार पलकें झपकायीं और फिर आंखें मुंद लीं.

छुट्टी का यह एक दिन अब पूरी तरह बीत चुका था.□□□

क. नं १६, हिमालया होटल, रानीखेत, अल्मोड़ा, उ. प्र.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Foundation Chennai and eGangotri

● एल. जे. उपाध्याय

सौदा

• पाल भसीन

गोप पहलवान भांग पीस रहा है.

सामने जमना मैया के गंदले पानी का बहाव,जिस पर सवार सूखे-बासी गेंदे के फूल, अध-जली लकड़ियों के टुकड़े, किनारों से जड़ों समेत उखड़ कर चली आयी घास. . .उस पार से शुरू होता है, रेत का विस्तार –आदमी की आदिम प्यास-सा अंतहीन, बीच-बीच में झाऊ की झाड़ियां, तरबूज और खरबूजे की बेलें, जो तपती हुई रेत पर लोट-पोट हुई जाती हैं. कहीं-कहीं फूस के झोपड़े तीसरे पहर की धूप में बदनुमा स्याह धब्बों-से चमकते हैं.

पक्के घाट की मुख्तसर-सी हलचल में जैसे एकाएक निर्द्वंद्वता, अल्हड़ता और मस्ती घुल गयी हो. पहाड़गंज, सदर, कुतुब रोड, तेलीवाड़ा, चांदनी चौक. . .सभी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले जेबकतरे, चोर, छोटे-मोटे तस्कर मौजूद हैं. पाजामे की जेबों में हाथ डाल, जांघों को लगातार खुजाता हुआ नयी दिल्ली टेशन का अनोखे भी आ चुका है. अब देर काहे की! इसीलिए गोप पहलवान भांग पीसने में जुटा है.

—जै जमना मैया की! मैया बड़ी दयालु है पहलवान! इसके भंडारे में कभी कमी नहीं आती. तू बूटी छान पट्ठे! थोड़ा नसा-पत्ता हो जाये. तब इसके किरिया-करम के लिए उस पार चलेंगे झाऊ के जंगल में, बाबा बालकनाथ की समाधी के पास, जहां तूने पार साल गांजे की चिलम चढ़ायी थी! माना बाबा गेंहुवन-से लहरा रहे हैं. उनकी आंखों में तैरते हुए गांजे के लाल-लाल नशे के डोरे कुछ धुंधले हो आये हैं. . .ठीक सामने बहते जमनाजी के जल की तरह. घाट की बिखरी हुई चहल-पहल अब उनके सामने दायरे में सिमट आयी है. बीचो-बीच लकड़ी की एक मुड्ढी सुलग रही है. उसके पास ही त्रिशूल गड़ा है और दीवार का सहारा लिये बाबा विराजमान हैं. सिर पर जटाएं और तन पर कपड़ों के नाम पर महज एक लंगर. बुढ़ापे की दहलीज तक पहुंच कर भी उनके तन में लगता है, अभी जान है. आवाज कड़क, ऐसी कि इस पार से बोलें तो उस पार सुनायी दे.

गोप पहलवान ने क्षण भर के लिए हाथ रोक माथे का पसीना पोंछा. बाबा ने देखा तो फबती कसी—क्यों बे पैलवान की दुम! बस इत्ते मेंई दम खुसक हो गिया! लगा रगड़ा पियारे! दिसा-मैदान जाने का बखत हो रिया है!

पहलवान ने अपनी सांप की-सी गोल-गोल निर्निमेष आंखों से बाबा और पूरी मंडली की ओर घूरा. फिर रगड़ा लगाने लगा.

सनातन इन सबसे बेखबर घाट की सबसे नीचे की सीढ़ी पर बैठा है, जहां बाबा की नाव लंगर से बंधी है. अंतर्द्वंद्व की स्थिति में एक के बाद एक लगातार कई सिगरेटें वह फूंक चुका है. बीच-बीच में बाबा की कड़कदार आवाज का कोई टुकड़ा उसके कानों के पास से गुजर जाता है. अब वह गोप पहलवान के बड़े भाई का किस्सा दुहरा रहे हैं—क्या मरद की जिनगी जिया था वो पट्ठा! सात बार कांटी खायी थी विन्ने. सात-सात कतल किये थे. कुल बीस बरिस की उमर में फांसी पर गया. सेठ छदम्मीमल ने विसकी जिनगी की किताब छापी की थी. . .

अपने मरहूम भाई की गौरवगाथा सुन कर गोप पहलवान के चेहरे पर कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं उभरी. बस क्षण भर के लिए अपनी छोटी-छोटी, मटमैली आंखों से उसने बाबा की ओर देखा. फिर अपने काम में व्यस्त हो गया.

नाटा कद, चिकने आबनूसी शरीर के प्रत्येक भाग पर थिरकती हुई मछलियां, निहायत संकरा माथा, जीरो नंबर की मशीन फिरा कर मुंडवाया हुआ सिर—जिसे वह गांधीकट कहता है—पिचका पेट जैसे स्वाभाविक उड्डियान बंध की स्थिति में हो, निरंतर खुला रहने वाला मुंह, जिसमें से मैल का पीला पलस्तर लिये चिपचिपे दांत हर क्षण अपनी 'आभा' बिखेरते रहते हैं—यह सब मिला कर बनता है गोप पहलवान का व्यक्तित्व. उसकी लंबी ठोड़ी और सख्त जबड़े को देखते ही मन में सिहरन-सी दौड़ जाती है.

सनातन ने जब पहले-पहल उसे देखा था तो यह कल्पना तक दूभर लगी थी कि इस बीहड़ व्यक्ति के अंतर के किसी कोने-अंतरे में कोई कोमल तत्व भी छिपा हो सकता है. लेकिन था—पता तब लगा था जब पहलवान ने कासगंज की हरदिल-अजीज तवायफ बिलकीस की प्यार भरी चिट्ठियां उसे पढ़वायी थीं. 'जानेमन! बहोत दिन भये. . .' वगैरा-वगैरा.

बात बहुत दिनों तक सनातन के जी में घुमड़ती रही थी. फिर एक बार उसने पूछ ही डाला था—क्यों पहलवान! ये तुम पे बहुत मरती है?

—मरेगी नई स्साली! एक दिन मुजरा कर रई थी. मैंने ससुरी के झाड़-फनूस तोड़ डाले गुस्से में. विदिन सेई हम से आसना हो गयी. यादों के भंवर में डूबते हुए पहलवान मुसकराया था. फिर चरस-भरे सिगरेट का लंबा कश खींच अचानक ही उदास हो गया था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बूटी पिस चुकी थी. भाना बाबा अपना प्रवचन बीच में छोड़ उठ खड़े हुए. भोलेनाथ की जयकार बुला कर उन्होंने विजया का काफी बड़ा गोला बना हलक में फेंका और लोटा उठा ओक से गट-गट पानी पीने लगे. उनकी देखा-देखी सभी ने यही क्रिया दुहरायी.

नाव का लंगर खोलने का आदेश हुआ. सनातन अब भी निश्चल बैठा था. गोप पहलवान ने नाव की रस्सी खोल सनातन के कंधे पर हाथ रखा. बोला—तुम चलोगे, भाईजी, उस पार?

सनातन ने पास पड़ा कंकड़ उठाया और पानी में फेंक दिया. नदी के पानी में चंद गोलाइयां उभरीं और मानो उन्हीं में से सनातन का स्वर फूट कर आया हो—ऊंहू. तुम जाओ पहलवान, मैं यहीं बैठूंगा.

पहलवान ने विशेष आग्रह नहीं किया. वह सनातन के स्वभाव से परिचित है. वह जानता है कि भाईजी बैठे-बैठे अकसर कहीं खो जाया करते हैं.

घाट की सीढ़ियों से भाना बाबा धीरे-धीरे नीचे उतर रहे थे और पीछे-पीछे उनके गण. अनोखे अभी भी पाजामे की दोनों जेबों में हाथ डाले जांघों के आसपास खुजला रहा था. बीमारी हो गयी है. इलाज चल रहा है भाना बाबा का. बाबा ने तनिक रुक कर सनातन को स्नेहसिक्त स्वर में पुकारा और परिहास करते हुए कहा—नसा-पत्ता भी तो नहीं करते हो, बाबू! बम भोले की बूटी में बड़ी सक्ती है. सब अलाय-बलाय, चिंता-फिकर फुर्र से उड़नछू! और क्या कहने हैं बाबा बालकनाथ की समाधी के पास वाले गड्ढे के पानी के! असनान करते ही तरावटें आ जाती हैं. बाबा की महिमा! चलने को मन न हो तो पड़े रौ जईं पे!

सनातन ने सिर हिला कर फिर अस्वीकृति प्रकट की. सब के नाव पर सवार हो जाने के बाद पहलवान ने साल की लंबी बल्ली संभाली और नाव धीरे-धीरे उस पार सरकने लगी.

पहलवान तैरना नहीं जानता. अलबत्ता, नौका खूब खेता है. पतवार वाले छोर पर खड़ा हो बल्ली को नदी के तल पर जमा कर जब वह पीछे को झुकते हुए जोर लगाता है तो पीठ, बांहों और कंधों की मछलियां तड़प-तड़प उठती हैं.

धीरे-धीरे उस पार पहुंचती हुई नौका को देखते हुए सनातन ने एक और कंकड़ उठा कर धीरे से पानी में फेंका.

* *

दूर जमना के पुल से गुजरते हुए ट्रक, मोटरें, बसें, तांगे खिलौनों-से लग रहे थे. नौका धीरे-धीरे तिरती हुई उस पार तट पर जा लगी थी और भाना बाबा, गोप, सबके सब इधर-उधर झाड़ियों में सिमट चुके थे. सनातन ने बची हुई आखिरी सिगरेट भी सुलगा ली और एक लंबा कश खींच फुफकार-सा दिया. जहां पानी में उसने अभी कुछ क्षण पूर्व कंकड़ फेंका था, वहां छोटे-छोटे दायरे उभर कर विलीन भी हो चुके थे. अब वहीं सनातन ने एक कछुए को लंबी गरदन मटकाते अपनी ओर ताकते हुए पाया...

बचपन में एक बार एक कछुए को उसने सड़क के किनारे पड़े देखा था. बच्चों का एक झुंड उसके इर्द-गिर्द जमा था. सनातन ने पहल की और निशाना ताक कर एक पत्थर उसे मारा. फिर तो ढेर-के-ढेर पत्थर पड़े और कछुए का भुरता बन गया. तब वह बड़ा खुश हुआ था. फिर एक बार उसने कछुआ पालने की कोशिश की. एक बड़ी बाल्टी में हैंडपंप का पानी भर, उसमें कछुए को कई दिनों तक रख छोड़ा था.

लंबी गरदन मटकाते हुए कछुआ मानो अभी भी सनातन की ओर ताक रहा था. सनातन ने एक गहरी सांस ली. कछुआ पानी में डुबकी लगा गया और भीतर-ही-भीतर तैरते हुए काफी दूर जा कर फिर अपनी गरदन पानी से बाहर निकाल कर मटकाने लगा.

भावुकता की एक उम्र होती है. पर सारी उम्र की भावुकता! सनातन को लगता कि वह वक्त से बहुत पिछड़ गया है. कभी लगता कि वह वक्त को नकारता हुआ उसे बहुत पीछे छोड़ आया है. और उसके वर्तमान के लिए दोनों ही स्थितियां दुर्भाग्यपूर्ण हैं.

पिता ने एक बार कहा था—मानता हूं, तुम काबिल हो, तुम्हारा अखलाक बुलंद है. पर बेटे, इसी पूंजी को ले कर जियोगे कैसे? मैं कब तक जिंदा रहूंगा!

मां कहती—रिश्तेदारों के लड़के कितनी तरक्कियां कर गये हैं! विलायती राम का बेटा पिछले साल कारपोरेशन की नौकरी पा गया. अब उसने स्कूटर ले लिया है. हमारी औलाद भी तो खुशियां बटोरे! पर हमारी रीझ पूरी होती दिखायी नहीं देती.

छोटी बहन! बित्ते भर की थी, जब से उसे गोद में ले कर खिलाता रहा. जवान हुआ तो उसे बिट्टो-बिट्टो कह कर दुलारता रहा जैसे अपनी ही बिटिया हो. समृद्ध परिवार में ब्याही गयी.

पीठ पीछे भाई उसका जिक्र करते तो नाम ले कर. भाई साहब कहना जैसे भूल चुका हो उन्हें. रेडियो, स्कूटर, टेलीविजन, गोदरेज की अलमारी...आमदनी-आमदनी, पैसा...पैसा...

तब वह स्कूल-मास्टरी छोड़ कर व्यवसाय में आ चुका था और बुरी तरह असफल हो रहा था...भाई साहब...इज्जत...

सनातन का निर्णय था कि वह जीवन के सिर्फ ईमानदार क्षणों को ही जियेगा. इधर लोगों की सवालिया नजरें जैसे उसके पौरुष का मजाक उड़ाती हों. जैसे ईमानदार क्षणों की जांघों में लिजलिजी जोंकें आ लिपटी हों. एक औसत जीवन-स्तर! बेचारा सनातन, पगला! नहीं पगला नहीं, पढ़ा-लिखा मूर्ख! उसके भीतर का सनातन प्रतिशोध लेने को मचल उठता. वह नहीं जानता कि उसे किससे प्रतिशोध लेना है. किसका प्रतिशोध लेना है. 'प्रतिशोध!' बस यही ध्वनि बार-बार उसके अंतर में गूंजने लगी. सिर्फ एक बार कथित औसत जीवन-स्तर हासिल करके वह दिखा देना चाहता था कि उसे निरा बौड़म न समझा जाये.

दिल्ली से अलीगढ़. रेल का सफर. फिर कासगंज तक बस की सवारी. सांझ के झुटपुटे में वह मिर्जा साहब के दौलतखाने पर पहुंचा था. गोप पहलवान का मौखिक संदेश उन्हें दिया था. उनकी बांछें खिल गयी थीं.

—कौन लोग हो, पूत? मिर्जा साहब ने हुक्के की नली को अपने होंठों में लेते हुए पूछा था.

—ठाकुर हूं, मिर्जा साहब!

—तब तो तुम्हारे लिए बाजार से बढ़िया मिठाई मंगा दी जाये!

—क्यों? एक क्षण के लिए वह झिझक कर, फिर खुल गया था. आपके यहां आज क्या चूल्हा ठंडा है?

—नहीं तो. कीमा और करेले का सालन पका है.

—चलेगा.

फिर तो मिर्जा साहब ने जैसे एकदम उसे अपना करीबी मान लिया था. एक सप्ताह तक उसकी वो खातिरें हुईं कि उसे आज तक याद हैं. इसे पी लो, पूत. खास तुम्हारे लिए रख दी थी. पहले फूल की है...इस हड्डी को जरा चूसो तो सही. ये बिरियानी क्या जायकेदार नहीं लगी? तुम डालर का बिजनेस शुरू कर लो. बड़े लोग हो जाओगे. हमारे रैते किसी किसिम की कोई फिकिर चिंता नईं...

दरअसल यह समूचा सिलसिला अचानक ही चल निकला था. गोप पहलवान उस दिन डेढ़ बोतल चढ़ाये हुए था. आमतौर पर पी कर वह बहकता नहीं. पर उस दिन जाने क्या हुआ कि वह लमलेट हो गया. नशे की हालत में ऊटपटांग बकता रहा—मैं अफीम बेचूंगा. अफीम और चरस. काला धंधा नहीं, काली का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

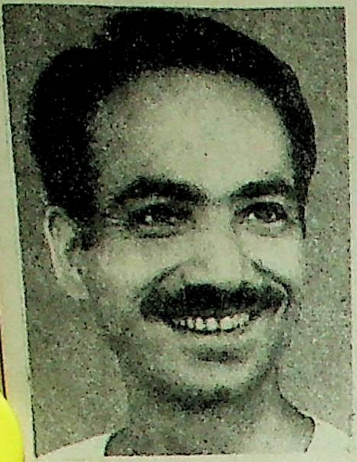

पाल भसीन (जन्म : १५ मई, १९४१) की कहानियों में विभिन्न दारुण अनुभवों की यातना परिलक्षित होती है. इनके पात्र जहां औसत जीवन-स्तर को हासिल करने के लिए संघर्षरत दिखायी देते हैं, वहीं अपनी मानवीयता को बचाये रखने के लिए भी लड़ते नजर आते हैं.

वरदान...जै मां काली. उत्तराखंड का 'गोला और बत्ती.' पुलिस साली क्या करेगी, भाई जी! जब हाथों में सर-सर करती नोटों की गड्डियां हों. कांटी खा जाते हैं वो टुच्चे! हमारा बाल कोई क्या बांका करेगा! और फिर वह रोने लगा—बिलकीस साली मर गयी होगी. हम पे कित्ती आसना थी. रत्ना का खसम उसकी बोटी-बोटी बेच कर खा गया. कासगंज में विसकी सानदार कोठी है. औरत की बोटियां! इनका सुवाद क्या है भाई जी, तुम्हें पता है? कहीं से जुगाड़ करो न. उस पार मैंने रेत में दो बोतलें और दबा छोड़ी हैं. हो जाये जसन! और गोप पहलवान रोता रहा, हंसता रहा. . .रोता रहा. . .

सनातन को उस पर तरस आया था. बुनिआदी तौर पर उसमें और गोप पहलवान में क्या फर्क है? एक है जो ईमानदार क्षणों का पल्ला पकड़ कर भी औसत जीवन-स्तर हासिल न कर पाया और दूसरा अपनी आस्थाओं का सारा सुख भुला कर भी गलाजत के दलदल में कीड़े-सा बुलबुला रहा है. शराब की एक बोतल और चंद रुपयों की दिहाड़ी पर अपनी साहसिकता के बूते चंद धन्ना सेठों के लिए माल को इधर से उधर करता रहता है. अपने इस जीवन की शुरुआत से ले कर आज तक उसकी क्या उपलब्धि है? अजीबो-गरीब बीमारियां! फिर भी कितनी उद्दाम जिजीविषा! मौत का भयानक जबड़ा बार-बार खुलता है, जिसे किसी नशे की झोंक में वह वज्र मुट्ठियों से परे धकेल देता है: साहस की पराकाष्ठा!

जिस दिन गोप पहलवान डेढ़ बोतल चढ़ा कर बहक रहा था, उसी दिन सनातन मानो पूरी तरह धराशायी हो गया था. एक नये जीवन की शुरुआत. एक औसत जीवन-स्तर! . . .

गोप पहलवान अकसर कहता—क्या समझते हो, भाई जी, बड़ों-बड़ों ने ये धंधे किये हैं! लखपती और करोड़पती बने हैं. नाम बता दूं तो ताज्जुब करोगे. . . और सनातन नयी दिशाओं की ओर मुड़ गया.

. . .वह अकेला जायेगा. देखेगा कित्ते जोखिम का काम है.किसी के कंधे पर रख कर बंदूक नहीं चलायेगा वह. जो करेगा अपने बूते पर.

और रवाना होने के पूर्व गोप पहलवान ने धंधे की सारी ऊंच-नीच उसे समझा दी थी. पते-ठिकाने बता दिये थे. यह भी कहा था—माई जी, जा रहे हो तो बिलकीस से जरूर मिल कर आना. गजब की लुगाई है. मेरा नाम लेने से तुम्हारी खूब खातिर-तवज्जो होगी.

★ ★

मिर्जा साहब के यहां पहुंच सनातन चकित था, भ्रमित था. भय और शहादत का मिला-जुला बोध. ऐन सड़क के किनारे उनका घर. दरवाजे के बाहर वह खाट बिछा कर हुक्का पीते रहते.हुक्का पीने वालों में पुलिस के जवान भी होते, पर क्या मजाल जो दो से अधिक इकट्ठे भीतर चले जायें! मिर्जा साहब का पहाड़ी नौकर फुटवाल के ब्लैडर से उंडेल-उंडेल कर पिलाता—नीट. पीने वाले पीते और अंगुली से नमक चाटते हुए बाहर आ जाते. कहीं कोई विघ्न नहीं, बाधा नहीं.

मिर्जा साहब सिआसत में भी दखल रखते थे. अजीबो-गरीब सिआसत थी उनकी. न सिर, न पैर. ढलती उम्र में एक जवान रंडी घर बिठा छोड़ी थी, जिसके नाज उठाने में उन्हें बेहद सुकून मिलता. उन्हीं मिर्जा साहब के सान्निध्य में सनातन ने भावी कार्यक्रम की रूपरेखा तय की और फिलहाल एक किलो गोला खरीद लिया.

लौटने से पहले वह बिलकीस से मिला था. बीमार चल रही थी. पर आतिथ्य में कसर नहीं छोड़ी. सिगरेट, पान . . . जर्द चेहरा लिये बिस्तर पर लेटे-लेटे बोली— अच्छा हुआ लाला, तुम आ गये. अपने उस भाई से कहना, एक बेर मिल तो जाये. देर हो गयी तो मुंह भी न देख पायेगा. कह कर वह हंसी थी. आंखों में शरारत लिये. फिर मुखर हुई— तुम भी आना, लाला. ऐसा सजीला जवान नहीं देखा. अब हमारी तबीयत तुम पे आ गयी है. आओगे न?

बिलकीस के यहां जाते समय कैसा अजीब-सा लगा था सनातन को! मुलाकात के दौरान गले में थूक नहीं सटका जाता था. आवाज में एक अनजाना कंपन. पर वहां से लौटा तो अजीब-सी करुणा सहेजे. वह गोप पहलवान को खूब फटकारेगा— उसने सोचा था.

जैसा गोप पहलवान ने कहा था, सभी चोंचले पूरे किये सनातन ने. माल को प्लास्टिक की थैली में लपेटा और पेट पर रख ऊपर से कस कर लंगर बांध लिया. कानों में सेंट की फुहिया खोंसी ताकि चरस की तेज महक दबी रहे.

बस में बैठे-बैठे उसे ऐसा लगा रहा था जैसे हर मुसाफिर की नजरें उसी को घूर रही हैं. पुलिस के किसी कर्मचारी को बस में चढ़ता देख वह अनायास अपने को संयत करने की कोशिश करता. मन को दिलासा देता कि यह सब गड़बड़ियां सिर्फ पहले चक्कर में ही होंगी. बाद में तो जान-पहचान बढ़ेगी. संपर्क-सूत्र बनेंगे. फिर वह बड़े पैमाने पर धंधा चला सकेगा. माल लाने के लिए अलीगढ़ से बस छोड़ उसने ट्रेन पकड़ी. रास्ते में बिना टिकट सफर करने वालों की धरपकड़ के लिए ट्रेन रोक दी गयी. उसे लगा कि सिर्फ उसी को पकड़ने के लिए यह सारा इंतजाम हुआ है. कपड़ों के भीतर वह पसीने-पसीने हो गया. गोप पहलवान का निर्देश याद आते ही वह संडास में घुस गया और कमोड के पाइप के भीतर माल को छिपा आया. अब वह गुनाहगार होते हुए भी गुनाह से मुक्त था.

ट्रेन रुकी. . . ट्रेन चली. माल एक बार फिर उसकी कमर पर बंधा था. साहिबाबाद पहुंच कर वह उतर पड़ा और रेल की पटरी के साथ-साथ चलते हुए बॉर्डर पार कर फिर बस पकड़ी और पहुंच गया अपनी मंजिल पर. लगा जैसे कोई मोर्चा फतह किया हो. छाती फूल-फूल जाती.

पर यही अंत नहीं था. असली काम तो अब शुरू होना था. गोप पहलवान ने पट्टी पढ़ायी थी— ईमानदारी से कोई काम नहीं होता, भाई जी. कित्ते खरचे हैं! कमाई साली क्या खाक होगी! दुगना नहीं तो कम-से-कम ड्योढ़ा तो होना ही चाहिए माल को.

फिर माल ड्योढ़ा हो गया. मिलावट की थी शायद मांगरे की.

और आज सनातन माल ले कर यहां पहुंचा था. यहीं सौदा होने की बात तय थी. गोली बना-बना कर बेचते हैं परचूनिये. वह मोटा धंधा करेगा.

★ ★

पानी की सतह पर लंबी गरदन मटकाता हुआ घिनौना कछुआ जाने कब डुबकी लगा गया था. सनातन उठा और घाट पर उन्मादी-सा चहलकदमी करने लगा. पास ही चबूतरे पर धूनी सुलग रही थी. घाट पर ही बने छोटे-से शिवमंदिर में किसी ने आ कर माथा नवाया. शाम का आना तनिक और लंबा हो आया था. काफी देर हुई.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबा की मंडली उस पार से लौट आयी थी. आते ही महफिल फिर जुड़ गयी. फिर 'जिसने न पी सुलफे की कली, उस लड़के से लड़की भली!' का मंत्रोच्चार कर बाबा ने कश खींच कर पहल की. चिलम बारी-बारी से सब के हाथों में घूमती रही. . .

लेकिन सनातन उन सबके लौटते ही नाव पर सवार हो गया. गोप से उसने कहा था—आओ पहलवान, थोड़ा घूम आयें. गोप पहलवान भाई जी के स्वभाव का जानकार ठहरा. मान लो वह कहीं सेंघ लगाने के लिए अपने साथियों के साथ मिटिंग कर रहा हो और भाई जी उसे तलब करें, तब भी वह इनकार नहीं कर सकता. अब भी वह चुपचाप नाव में जा बैठा.

बल्ली से नाव खेना सनातन को नहीं आता. वह चप्पू चलाता है. सांझ के झुटपुटे में नदी का शांत जल जब चप्पुओं के छपाके उभारता है, तो एक करुण संगीत की सृष्टि होती है. जैसे अथाह शांति के गर्भ से हलचलों का प्रस्फुटन हो रहा हो और फिर वे हलचलें पुनः अथाह शांति में विलीन हो जायें.

जमना के बीचो-बीच पहुंच सनातन ने चप्पू समेट लिये और नौका को धारा के संग-संग बह जाने दिया.

—सेठ आने वाला होगा, भाई जी. नोखे बता रिया था! गोप पहलवान ने सूचित किया और हथेली पर चरस की गोली रख उसे दिया सलाई दिखायी. फिर सिगरेट की तंबाकू निकाल कर मिश्रण बनाने लगा. फिर सिगरेट के खोल को होठों में दबा, बिना हाथ लगाये मिश्रण को उसमें भरा और दायें हाथ की अंगुलियों से माचिस खोल तीली निकाली. एक ही हाथ से माचिस पकड़ना और तीली निकाल कर जलाना—सनातन को उसकी यह अदा बहुत भाती है.

सनातन ने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया और नदी के शांत बहाव को ताकता रहा. फिर एकाएक पेट से बंधा लंगर खोल प्लास्टिक की थैली निकाल ली और अडोल ही उसे जल-प्रवाहित कर दिया. जैसे कोई रात के सन्नाटे में छिप कर कच्चे भ्रूण को नदी के समर्पित कर दे.

—भाई जी! . . . गोप पहलवान बुदबुदाया.

—ठीक है पहलवान. यही ठीक है. . .

—क्या ठीक है, भाई जी? गोप पहलवान ने कहा.

—कुछ भी नहीं. . . शायद कहीं भी नहीं.

गोप पहलवान आंखें झपका रहा था. . .

काला आखर भैंस बरोबर गोप. शब्दों का खाक भी उसके पल्ले नहीं पड़ा, पर चेहरे की भी तो एक भाषा होती है. सिगरेट फेंक कर उसने सनातन के कंधे पर हाथ रख दिया. सनातन मुसकराया. एक स्निग्ध मुसकान.

अभी-अभी उन्होंने नाव को किनारे से लगाया है. आते ही गोप पहलवान ने चिलम का दम खींच रहे अनोखे को आवाज दी—अबे ओए 'नोखे! जरा वरे को अइयो.

अनोखे चिलम आगे को सरका कर उठ खड़ा हुआ. पहलवान उसे शिवमंदिर वाली कोठरी के पास एकांत में ले गया और धीरे से लेकिन रोबदार आवाज में बोला—देख बे! भाई जी मेरे संग चाय पीने जा रिये हैं. फिर सलीमा जायेंगे. वो सेठ आये तो विससे कह दियो कि उसका-हमारा पड़ता नहीं खायेगा. भाई जी ने भौत ऊंचे दामों में सौदा निकाल दिया है. . .

सनातन की निगाहें क्षितिज के उस छोर पर टिकी थीं, जहां फिलहाल मटमैली धरती पर गंदला पानी बह रहा था और जिस पर मटमैला आसमान मरे कछुए की पीठ-सा धूसर उलटा पड़ा था. . . और अंधकार और भी गहराता जा रहा था. . . □□□

१२१९।२ ए, बाबरपुर रोड,
रोहतास नगर, शाहदरा, दिल्ली–३२.

फ्रांस की एक लघुकथा

पक्का सबूत

● नरेंद्र भारद्वाज

उस रात को जब वह सोया, तो बड़ा प्रसन्न था. उसने चुपके से बाहर जा कर खूब शराब पी थी, और नशे में अपने पियक्कड़ साथियों के साथ दंगा-फसाद भी कम नहीं किया था. उसके चेहरे पर बुरी तरह से चोटें आयी थीं. मगर उसने उन पर मरहम-पट्टी लगा ली थी.

जब वह रात को एक बजे घर लौटा, तब वह खुर्राटे भर रही थी. जूते हाथ में ले कर, बिना आवाज किये, वह अपने बिस्तर पर जा कर सो गया. सबेरे उठा, तो पत्नी ने चाय सजा दी थी और बड़ी गंभीर बनी खड़ी-खड़ी उसका इंतजार कर रही थी. उसने पत्नी की गंभीरता को झकझोरते हुए कहा — गंभीरता में तो तुम और भी सुंदर लगती हो. एकदम फरिश्ता दिखती हो! क्या रात को नींद नहीं आयी थी?

—बातें न बनाइए, मैं अब इस घर में नहीं रहूंगी. बस! वह बोली.

—क्यों, क्या हो गया आखिर इस घर को? अभी तक तो तुम मुझसे ही नाराज थीं, अब घर से भी हो गयीं... यह क्या हो गया है तुम्हें आजकल?

—कल रात तुमने फिर शराब पी थी न?

—नहीं तो! किसने कह दिया तुमसे? उसने निर्दोष भाव से कहा.

—तुम्हारे दुश्मनों ने नहीं! मुझसे कहा है बाथरूम के शीशे ने!

—कैसे कहा? उसने बहस की.

—सबेरे मैंने देखा कि शीशे में जगह-जगह पर मरहम-पट्टियां चिपकी हुई हैं.

उसने अपने चेहरे पर हाथ फेरा—उफ! बाल-बाल बच कर भी कैसे पकड़ा गया!

वह फिर गुस्से में ही बोली — चेहरे पर हाथ क्या फेरते हो? तुमने अपना नहीं, शीशे में देखने वाली अपनी शक्ल का ड्रेसिंग किया था. तुमने शराब पी थी, इसका इससे पक्का सबूत और क्या हो सकता है? □□□

पाठकों के लिए एक सूचना

समांतर विशेषांकों में अधिक से अधिक कहानियां देने के इरादे से हमें कुछ बेहद लोकप्रिय स्थायी स्तंभों के प्रकाशन को स्थगित कर देना पड़ा है. ये स्तंभ—आद्य कथाकार, गर्दिश के दिन, कृतियां, विविधा आदि—बंद नहीं किये गये हैं. समांतर विशेषांकों की शृंखला के समाप्त होते ही इन्हें फिर से शुरू कर दिया जायेगा. हमें आशा है, इन स्तंभों को चाव से पढ़ने वाले पाठक अन्यथा नहीं लेंगे.

—संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निहत्थे

• मुद्राराक्षस

दूर से देखने पर वह क्यू इस तरह दिखाई दे रहा था जैसे किसी कनस्तरों और थैलों की कतार हो. दूकानें उस कतार से काफी दूर थीं और कतार के बायीं ओर एक सूखा हुआ नाला था. लू और गर्द और धूप की वजह से लोगों की आंखें पिचक गयी थीं और टांगों से बहने वाला पसीना जूतों के अंदर इकट्ठा हो रहा था.

दूकानें सारी की सारी ही बंद थीं और मकान उस गर्दभरी दोपहर में इस तरह दिख रहे थे जैसे किसी अस्पताल में शीशे के मर्तबानों में बंद बदरंग और सूजे हुए जानवर हों.

—गाड़ी अभी तक नहीं आयी!, सुखबीर के सामने वाले बूढ़े ने मैला तौलिया उड़ने से बचाते हुए कहा. सुखबीर बूढ़े के ठीक पीछे खड़ा था. उसके पीछे वाले दो-तीन लोग बीच-बीच में नाहक धक्कामुक्की करने लगते थे.

पीछे की तरफ अपने कूल्हे धकेलकर सुखबीर ने थोड़ी दबी जबान से कहा—धक्का क्यों देते हो जी?

कतार की देखरेख के लिए खड़ा सिपाही सुखबीर को फिर घूरने लगा. सुखबीर को अजीब भय हुआ. उसे लगा कि वह सिपाही उसे लगातार घूरता रहा है और घूरे जाने पर वह किसी केंचुए की तरह सिकुड़ने लगता है.

—लगे रहो, साला, लगे रहो! हात्तेरी की!, एक आदमी ने क्यू के बीच से [illegible] कर कहा. सिपाही ने उसकी ओर देखा तो वह इस तरह मोंदू बन गया गोया वह बात गंदी हवा की तरह अनायास निकल गयी हो.

आज छठा रोज था, फिर भी लोग निराश होकर हटना नहीं चाहते थे. उनका खयाल था कि जैसे ही वे हटेंगे वैसे ही गाड़ी आ जायगी. कुछ लोग तो सुबह तीन-चार बजे से ही लाइन में खड़े हो जाते थे. बीच में उनके बच्चे कभी-कभी उनकी जगह आ खड़े होते थे.

वैसे लोगों का खयाल था कि हालत ऐसी बुरी भी नहीं थी. एक बार पर्चियां कट जातीं तो आटा आराम से मिल जाता लेकिन पर्चियां तभी तो कटतीं जब गाड़ी आती.

समूची पंक्ति में जैसे एक छटपटाहट आ गयी. धक्का मुक्की फिर शुरू हो गयी. पंक्ति के सिरे से किसी ने बताया कि गाड़ी आ रही है. सुखबीर को एहसास था कि वहां खड़ा सिपाही उसे लगातार घूर रहा था इसलिए उसने उस धक्कामुक्की में शामिल होने से अपने आपको भरसक रोका, फिर भी वह लड़खड़ा गया. सिपाही उसे [illegible] लगा. उसने अपनी निगाहें फेर लीं. वह अपने आप पर थोड़ा शर्मिंदा भी हुआ —— आखिर वह नागरिक है. नागरिक के कुछ अधिकार भी होते हैं. जरूरत पड़ी तो वह अपने अधिकारों की बात अंगरेजी में भी कह सकता है.

कुछ धक्के की वजह से और कुछ सिपाही की नजरों से सिकुड़ गये साहस की वजह से, उसके दोनों कूल्हे क्यू से बाहर आ गए. उसने तुरंत अपनी बांह वहीं घुसा दी. बांह की वजह से उसकी जगह और तंग हो गयी. लिहाजा उसने बांह छुड़ा कर नये सिरे से क्यू में घुसने के लिया अपना कंधा दो आदमियों के बीच घुसाया.

उसे अपनी गर्दन पर खुरदरी-सी कोई चीज छूती हुई महसूस हुई. वह समझा, कोई सूखा पत्ता हवा से उड़कर वहां घुस गया है. उसने हथेली से उसे झाड़ना चाहा लेकिन तभी एक डर उसके सिर से होता हुआ पैरों तक उतर गया. वह दरअसल सिपाही का डंडा था.

—बाहर निकल! सिपाही ने उसे घुड़का.

—जी? उसके सोचे हुए सारे संवाद जाने कहां चले गए और वह यकायक सकते में आ गया.

—बीच में घुसता है बहन. . . . पीछे चल लाइन में!,

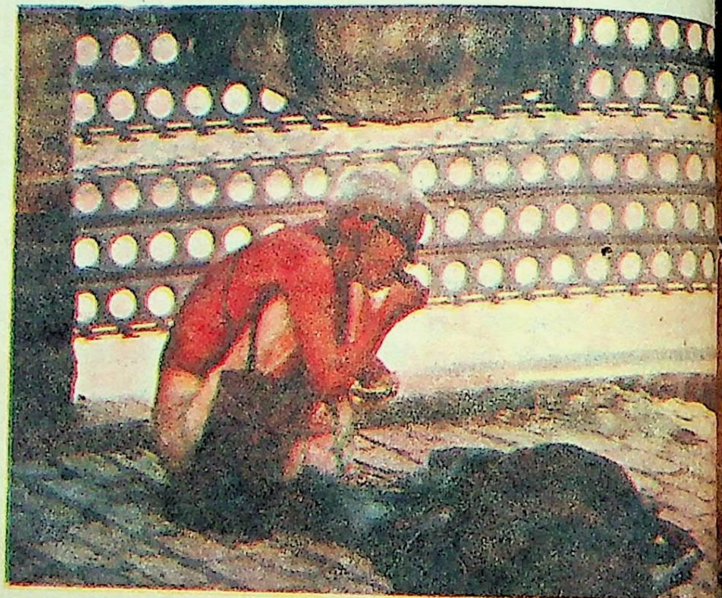

• एस. के. उपाध्याय

सिपाही ने अपना डंडा उठाया. उसने घबराकर क्यू के पीछे की ओर देखा. पीछे को पांच सौ लोगों की भीड़ होगी. आज वह सबेरे पांच बजे ही पहुंच गया था इसलिए उससे आगे मुश्किल से पचास लोग ही थे. अगर आज आटा नहीं मिला तो बहुत मुश्किल हो जायगी क्योंकि लोग कह रहे थे कि कल से कर्फ्यू लग जायगा.

—अबे हट यहां से! हटता है या लगाऊं? सिपाही ने धमकाया. आगे से किसी ने कहा : —कानून कायदा तो कोई मानता नहीं है.

—कौन कानून छांट रहा है उधर? सिपाही ने ललकारा लेकिन बोला कोई नहीं. सिपाही का ध्यान बंटा देखकर सुखबीर अपने आगे-पीछे के आदमियों की ओर कातर निगाहों से देखने लगा. उन लोगों ने उसकी ओर से आंखें हटाकर इधर-उधर देखना शुरू कर दिया. उसने सिपाही द्वारा जबर्दस्ती वहां से हटाए जाने से पहले भुनभुनाकर पास वाले आदमी से कहा—तुम्हारे साथ ही खड़ा था न मैं?

वह आदमी कुछ नहीं बोला. इस बीच एक गाड़ी तेजी से आयी और क्यू से थोड़ी दूर जाकर खड़ी हो गयी. वह पुलिस की गाड़ी थी और उसमें वायरलेस लगा हुआ था. सिपाही का ध्यान बंट गया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरअसल आटे के ट्रक के बजाय कोई जुलूस आ रहा था. जुलूस के नारे सुनाई पड़ रहे थे.

—फिर जुलूस आ गया. बूढ़े आदमी ने भुनभुनाकर कहा, जान की तो जैसे किसी को परवाह ही नहीं है. अभी कहीं गोली चल जाय तो बस!

जुलूस के आगे पुलिस.की जीप के साथ-साथ पैदल सिपाहियों की काफी बड़ी टुकड़ी चल रही थी. क्यू की देखरेख के लिए खड़ा सिपाही सहसा बेहद फुर्तीला हो उठा था. जीप पर बैठे अफसर ने उसे हाथ के इशारे से कहा कि वह क्यू में खड़े लोगों को थोड़ा-सा पीछे खिसकने को कहे. सिपाही डंडा लेकर लोगों पर पिल पड़ा—— भागो, भागो इधर से!

डंडा पड़ते ही क्यू छितरा गया और लोग भेड़ों की तरह भाग कर नाले के उसपार कूद गए. सुखबीर भी भागा. लेकिन इस बार उसने सोचा कि वह औरों की तरह नाले के उस पार नहीं जायगा.

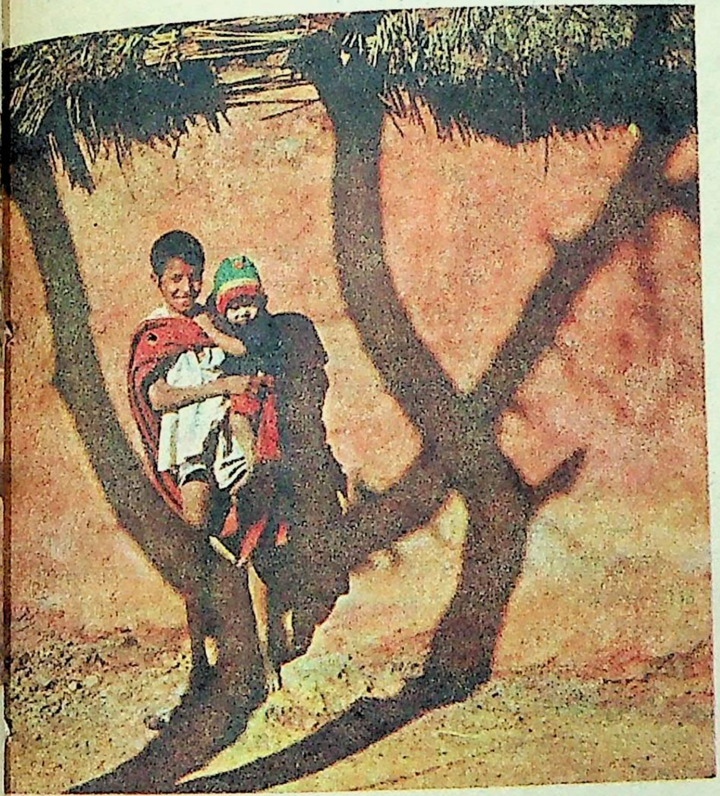

सूरज एम. शर्मा

जुलूस गुजरने के बाद बाकी लोगों से पहले ही वह क्यू में खड़ा हो जायगा.

लू और धूप काफी जलन भरी थी और जीप पर बैठे अफसर की आंखें चुंधिया रही थीं. अगला मोड़ पार करने तक उसे इसी तरह रेंगती जीप में बैठे-बैठे गर्मी को सहना था क्योंकि मोड़ के बाद राजभवन वाले मार्ग पर जुलूस रोका जाना था. वहां बड़ी तादाद में पुलिस ने मोर्चाबंदी कर रखी थी.

सुखबीर की जांघों का पसीना रेंगता हुआ पिंडलियों तक आया तो उसे खुजली महसूस होने लगी. लेकिन पुलिस वालों की मौजूदगी में वह खुजली करके उनका ध्यान नहीं बंटाना चाहता था. लेकिन पसीना रेंगता हुआ टखने तक आया तो वहां वह और जोर से चुभने लगा जैसे कोई चींटी काटने लगी हो.

उसने सोचा कि पुलिस वालों का ध्यान बंटने से पहले ही वह फुर्ती से झुक कर खुजली कर ले और सीधा हो जाये. परेशानी में वह भूल गया था कि टांग उठाकर भी खुजली की जा सकती थी. लिहाजा वह पलक झपकने के साथ नीचे झुका और दाहिने हाथ से खुजली करके फुर्ती से सीधा हो गया.

जीप पर चल रहा पुलिस अफसर धूप में आंखें मिचमिचा कर सामने देख रहा था. उसे दाईं ओर एक आदमी के जमीन की ओर झुकने और सीधा होने की झलक मिली. वह चेहरे पर हाथ लगा कर नीचे झुका और चिल्लाया —— अरे, पत्थर मारता है हरामी!

—पत्थर? क्यू वाला सिपाही चौंक गया. तब तक जीप के साथ चल रहे सिपाही उसकी ओर लपके. दो क्षण का भी अवकाश मिलता तो वह भाग खड़ा होता. वह निश्चय ही काफी तेज भाग सकता था. लेकिन क्यू संभालने के लिए खड़े सिपाही ने लपक कर उसका कालर पकड़ लिया——मैं तो बहुत देर से देख रहा था, तभी समझ गया था. . .

—अरे मगर, वह छटपटाया लेकिन तब तक कई पुलिस वालों ने उसे दबोच लिया. एक ने उसकी गर्दन इतनी जोर से दबा ली थी कि उसे खांसी ही आने लगी थी. पुलिस की एक जीप जब उसे लेकर रवाना हुई, उस वक्त तक भी उसे यकीन नहीं था कि उसे सचमुच पकड़ लिया गया है. उसे गाड़ी के अंदर इस तरह धकेला गया था कि उसकी कुहनियां और माथा रगड़ गया था. उसे लगा कि अगर वह यों ही मुर्गे की तरह पड़ा रहा तो पुलिस वाले शायद उसे पीटेंगे इसलिए वह उठकर बैठने लगा.

—भागेगा बहन. . . ! एक सिपाही चिल्लाया और उसने जूते सहित अपना पैर उसकी पीठ पर दे मारा. सुखबीर को लगा जैसे वहां रीढ़ के कई टुकड़े हो गए हों.

सुखबीर के पकड़े जाने की घटना के बाद वहां भारी गड़बड़ी मच गयी थी हालांकि वह इससे बिल्कुल बेखबर था. जुलूस वालों ने समझा कि उन्हीं में से किसी को गिरफ्तार किया गया है इसलिए वे अचानक उत्तेजित हो गए. जुलूस के दूसरी तरफ के पुलिस वालों तक खबर पहुंची कि उनका अफसर पथराव से सख्त घायल हुआ है इसलिए उन्होंने उत्तेजित होकर लाठियां घुमानी शुरू कर दीं.

इस बीच एक और हंगामा हो गया. जाने किधर से एक डिब्बे जैसी कोई चीज जीप पर आ गिरी. गिरते ही फटी और वहां बुरी तरह धुआं फैल गया. धमाके की आवाज जुलूस वालों ने भी सुनी. पीछे से कोई चिल्लाया—— आंसू गैस!

—रोटी कपड़ा दे न सके जो वो सरकार निकम्मी है! —— लोगों ने सीना फुलाकर जोशीला नारा लगाया. लोग आसपास पत्थर खोजने लगे. इसी वक्त धमाके से घबराई भीड़ का रेला पीछे की ओर आया. जो वालंटियर सीटी लिये हुए जुलूस के साथ-साथ चल रहा था, वह भगदड़ देखकर बौखला गया और किनारे हट कर जोर-जोर से सीटियां बजाने लगा.

धमाके की पहली सनसनी उतरते ही जीप के पीछे वाले अफसर ने अपनी पिस्तौल से गोली चला दी. पुलिस के जिन लोगों के पास बंदूकें थीं, वे भीड़ के पास से भागे क्योंकि धमाके से वे खुद भी डर गए थे. लेकिन पुलिस अफसर द्वारा चिल्ला कर पिस्तौल दागने पर वे रुके और पलट कर अंधाधुंध गोलियां चलाने लगे.

पिस्तौल की तुलना में इन राइफलों की आवाज बहुत घटिया थी. दरअसल उनसे धमाके की बजाय फटे बांस जैसी आवाज निकलती थी और दूर तक लुढ़कती चली जाती थी.

जुलूस की भगदड़ से घबरा कर सीटी बजाने वाले वालंटियर ने महसूस किया जैसे उसे किसी ने जबर्दस्त धक्का दिया हो. वह समझ नहीं पाया कि भीड़ से इतनी दूर होने पर भी उसे धक्का किसने दिया हो सकता है. लेकिन अगले ही क्षण उसे लगा जैसे उसकी एक टांग किसी ने उसके नीचे से गायब कर दी और वह असंतुलित होकर गिर गया. गिरने के साथ ही उसने महसूस किया कि उसकी जांघ चिकनी-चिकनी हो गयी है. दरअसल वह खून से तर हो गयी थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह समझ नहीं पाया कि उसके साथ यह क्या हुआ. उसने अपने कूल्हे पर हाथ फेरा तो वहां गर्म गिलगिला गढ़ा-सा महसूस हुआ. इसके बाद वह चिल्लाया. बहुत ही मर्मात और बेहूदी-सी चीख निकली और वह बेहोश हो गया.

क्यू से खदेड़े गये लोग इतनी तेजी से घटी घटनाओं से चकरा गये. गोली चलते ही वे लोग पहले तो पीछे हटे, फिर जोर से भागे. अभी वे थोड़ी ही दूर गये होंगे कि उन पर पुलिस वालों की नजर पड़ गयी. पुलिस वाले उधर भी गोलियां चलाने लगे. एक पुलिस-वाला बार-बार गोली चला रहा था, फिर भी उसे लग रहा था कि उसका निशाना ठीक नहीं बैठ रहा. इसलिए वह भागते हुए लोगों के पीछे दौड़ लिया.

क्यू में सुखबीर के आगे खड़े-खड़े भुनभुनाने वाले बूढ़े के पेट में गोली लगी थी. वह किसी तरह घिसट कर एक लेटर बाक्स के पीछे छुप गया था. दौड़ने वाला सिपाही उसे देख कर रुक गया—हैं, हरामी, चोर, साला.!

बूढ़ा आदमी अपने पेट पर मैली धोती दबाये था, फिर भी, खून बड़ी तेजी से बह कर धूल में लिथड़ता जा रहा था. सिपाही को देख कर उसने दोनों आंखें फाड़ीं और रेत में पड़ी हुई मछली की तरह मुंह फैलाया. आवाज कोई भी नहीं हुई. सिपाही की बंदूक से वही फटे बांस जैसी आवाज हुई और उसके खुले हुए मुंह का आधा हिस्सा जबड़े सहित दूर-दूर तक छितरा गया. उस आदमी ने गरारा करने जैसी आवाज की, गिर कर थरथराने लगा.

★ ★

सुखबीर को लेकर पुलिस की गाड़ी दस मिनट में ही कोतवाली पहुंच गयी थी. वहां काफी हलचल थी. सुखबीर को कालर से पकड़ कर धकेलते हुए ले जा कर उन्होंने एक मैले से कमरे में खड़ा कर दिया. वह कमरा क्या, एक बहुत वजनी मेज पड़ी थी.

उसके अंदर धकेले जाते ही एक छोटा अफसर तेजी से आया और मेज की दरवाजें टटोलने लगा. लगभग उसके पीछे आ रहे सिपाही ने दरवाजे से झांक कर पूछा — साइकिल लाऊं?

—साइकिल को दे अपनी मां की. . में. साले वक्त देखते नहीं और—! वह गालियां फेंक कर दराज में अंदर तक हाथ घुसा कर कुछ खोजने लगा. ऊपर की दराज में न मिलने पर उसने दूसरी दराज खोलनी चाही. वह खुली नहीं. आने के बाद से अब तक सुखबीर दीवार से सटा चुपचाप खड़ा था. दर-असल वह बहुत तेजी से कुछ सोचने की कोशिश कर रहा था. थैला और राशन कार्ड अभी उसके हाथ में ही था. उसने सोचा कि दराज खोलने में मदद करने पर शायद उसके प्रति पुलिसवालों का रुख थोड़ा नरम हो जायगा इसलिए दराज की तरफ लपकते हुए उसने कहा—जनाब, लाइए मैं खोला देता हूं.

—अबे तू कौन है? छोटा अफसर एकदम चौंक गया. दरवाजे पर खड़े दो सिपाही अंदर आ गये.

—बात ये है जी कि मैं राशन लेने निकला था, सुखबीर ने हकला कर कहा.

—अबे तो ये राशन की दूकान है? देखो साले को! छोटा अफसर चिढ़ कर लगभग मार ही बैठने वाला था कि अंदर आए सिपाहियों ने बताया कि इसे अभी जुलूस से गिरफ्तार किया गया है.

—अबे हरामजादो तो इसे इस तरह मेरे खोपड़े पर क्यों खड़ा किया है! बंद क्यों नहीं किया अब तक?

—मगर जनाब आप मेरी बात सुनिए. . .

बात सुनने की वहां किसे फुरसत थी? और फिर इस हंगामे में आठवीं गाड़ी की चाभी खो गयी थी. सिपाहियों ने फुर्ती से सुखबीर का कालर पकड़ा और खींच कर एक कोठरी में बंद कर गये.

कोठरी का दरवाजा बंद होने के बाद सहसा उसे लगा कि उसके साथ कोई भयानक गड़बड़ी हो गयी है हालांकि उसे यह विश्वा[स] जरूर था कि अगर उसने धीरज से काम लिया तो गलतफहमी [दूर] भी हो सकती है.

हो जाता है. सभी के साथ हो जाता है, उसने सोचा. अभी दो रोज पहले वह बीवी को बता रहा था कि लोगों को किस तरह आम आदमी की मुश्किलों का ध्यान ही नहीं रह गया. वह एक बार दफ्तर जा रहा था कि बस रुक गयी. मालूम हुआ कोई जुलूस निकल रहा था. और कोई छोटा-मोटा जुलूस होता तो कहा जाता. कोई पच्चीस-तीस हजार लोग तो होंगे ही.

दो छोटे बच्चों की आवाज से सुखबीर का ध्यान बंट गया. पुलिस स्टेशन पर इस तरह बच्चों की आवाज सुन कर उसे ताज्जुब हुआ. कोठरी के दरवाजे की मोटी और मैल चढ़ी हुई छड़ों से उसने बाहर झांका. धकेल कर यहां लाए जाते वक्त उसने ध्यान ही नहीं दिया था कि थाने के अंदर एक बड़ा-सा आंगन था और उसके चारों ओर ऐसी ही कोठरियां बनी हुई थीं.

बाहर किसी ने आवाज दी—एई सुनो!

आवाज में रोष था. आवाज देनेवाला वहां से दिखाई नहीं दे रहा था. भारी-भारी बूट पटकता हुआ कोई भाग कर उस आवाज की दिशा में भाग कर जाता सुनाई दिया.

—सुनो नरिंदर कहां है?

—बुलाऊं हुजूर?

—नहीं रहने दो. सुनो ये मेरे कजिन के बच्चे हैं. ये चोर देखना चाहते हैं. जरा इन्हें चोर दिखा दो. नरिंदर से कहना, रात को कोठी पर मुझे फोन कर ले. रोबीली आवाज ने कहा.

—बाई अंकल, दोनों बच्चों ने एक साथ माउथ आर्गन जैसी आवाज में कहा. थोड़ी दूर से रोबीली आवाज सुनाई दी. 'बाई!'

—और सुनो बच्चों को चोर दिखा कर कोठी पर पहुंचाना.

—जी हुजूर.

सुखबीर कान लगाये रहा.

—उधर से नहीं, इधर से दिखाओ, किसी बच्चे ने कहा. इधर से सबसे पहली कोठरी सुखबीर की ही थी. दोनों बच्चे चिकने और चमकदार थे. उन्होंने चुस्त कपड़े पहन रखे थे. सुखबीर की कोठरी से थोड़े दूर खड़े हो कर बच्चे उसे देखने लगे. उसे अजीब शर्मिंदगी महसूस हुई. कोठरी में वह थोड़ा पीछे की ओर हट गया. बचपन में वह चोर देखने भी गया था. तब वह बहुत छोटा था. रात के पिछले पहर शोर से वह भी जाग गया था. मुहल्ले में कहीं चोर पकड़ा गया था.

सुखबीर ने बाप से जिद की कि वह भी चोर देखेगा. चोर देखने के बाद वह एकदम निराश हो गया था. चोर बेहद दुबला-पतला और आम आदमियों जैसा ही था बल्कि पिटने के बाद वह सबसे ज्यादा निरीह और भयभीत लग रहा था. चोर जैसी कोई बात उसमें थी ही नहीं.

सुबह के करीब उसने जब अपनी प्रतिक्रिया दी तो उसका बाप उसका मुंह देखता रह गया था.

दोनों बच्चों में लड़की कुछ बड़ी थी और तेज भी थी. लड़का अभी सुखबीर की कोठरी के सामने ही था कि लड़की सिपाही को घसीटती हुई तीसरी-चौथी कोठरी तक चली गयी थी.

बच्चा उसे अजीब निगाहों से देख रहा था. उन निगाहों में भय भी था और तिरस्कार भरा दर्प भी.

बच्चे को पता नहीं क्या सूझा कि वह दो कदम पीछे हटा. इधर-उधर खोज कर उसने एक पत्थर का टुकड़ा उठा लिया. सुखबीर जब तक कुछ बोले, तब तक बच्चे ने वह पत्थर उस पर फेंका. पत्थर इत्तफाक से अंदर नहीं आया. जंगले से टकरा कर बाहर ही गिर गया. बच्चे ने इधर-उधर देखा लेकिन और पत्थर नजर नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुद्राराक्षस (जन्म : २४ जून १९३३) : की कहानियों में आज के आदमी की मानसिकता और आर्थिक स्थितियों के टकराव का ब-खूबी चित्रण देखने को मिलता है. इनके अधिकांश पात्र परिस्थितियों से जूझने वाले विद्रोही हुआ करते हैं.

आया. एक बहुत ही छोटा पत्थर मिला लेकिन उसे फेंक कर बच्चे को खास मजा नहीं आया.

सुखबीर ने महसूस किया कि बच्चा वह पत्थर उठाते हुए डर रहा है. सुखबीर पहले तो इस पत्थरबाजी से चिढ़ा था लेकिन बाद में उसने सोचा कि बच्चा नासमझ है. उसे क्या पता कि वह कौन है. अगर बच्चा यह छोटा-सा मनोरंजन कर ही ले तो कौन वह घायल हो जायगा.

बच्चा तनाव भरी नजरों से उसे घूरता हुआ पत्थर की ओर झुक रहा था. सुखबीर उसकी बचकानी दहशत देख कर मुसकाराया. बच्चा जाने क्यों उसके मुसकराने से ही डर गया और डर कर दो कदम पीछे हटा. सुखबीर को उस पर तरस आ गया. अपनी मुसकराहट और ज्यादा फैलाते हुए उसने जंगले के पास आकर कहा— उठा लो बेटे, उठा लो.

बच्चा इस बार पीछे नहीं हटा. हां उसकी आंखें भय से और चौड़ी हो गयीं. उसके होंठ कांपे और वह जोर-से रोने लगा.

—रोमी, क्या हुआ? उसकी बहन ने पूछा. तब तक साथ वाला सिपाही भाग कर बच्चे के पास पहुंच गया था. बच्चा जोर-जोर से रोए जा रहा था. बड़ी मुश्किल से उसने हाथ उठा कर सुखबीर की तरफ इशारा किया.

—ओहो, सिपाही ने सुखबीर की तरफ देख कर दांत पीसे. सुखबीर खुद घबरा गया था. हकलाते हुए बोला, वो बात ये है कि वो डर गया—मैं...

—डर गया का बच्चा, सुअर साला!, सिपाही दहाड़ा और डंडा उठाकर सुखबीर की ओर झपटा. डंडा उसने मारा तो मगर वह जंगले से टकरा गया. इससे उसे और गुस्सा आ गया. इस बार उसने जंगले में हाथ डाल कर डंडा उसकी पसलियों में घंसा दिया. वह दर्द से तिलमिला गया. वह छटपटाने लगा. बच्चा चुप हो गया था. लड़की ने उसे एक बाजू में लपेट कर सटा दिया और सुखबीर की तरफ देख कर बोली — ईडियट!

—डेजी देख कितने चोर! बच्चे ने खुश हो कर कहा. थाने के आंगन में अचानक बहुत-से कैदियों की भीड़ जमा हो गयी. उन्हें एक बस में भर कर लाया गया था. उन्हें हथियारबंद पुलिसवालों ने घेर रखा था. एक-एक कोठरी खोल कर उन्हें भरा जाने लगा.

सुखबीर की कोठरी में आठ आदमी और ठूंस दिये गये. अब वहां बैठने की जगह भी मुश्किल से ही बची थी. आनेवालों में एक बुड्ढा आदमी भी था. बाकी छोटी उम्र के छात्र लग रहे थे. बुड्ढा दरवाजा बंद होते ही गालियां बकने लगा— उनकी मां को... साले जेल में बंद करेंगे. अरे कर दो. जेल क्या बुरी है. बहन... बाहर मेहनत भी करो और भूखे भी मरो. जेल में साली मेहनत होगी तो रोटी तो मिलेगी. हमें क्या!

लड़के बेहद खामोश, कुछ सहमे हुए लग रहे थे. सुखबीर बूढ़े को ताज्जुब से घूरने लगा. बूढ़ा खामोश होने की बजाय बोलता ही चला जा रहा था. आखिर सुखबीर ने टोका—जनाब आप गलती कर रहे हैं.

—क्या? बूढ़े ने ताज्जुब से उसे घूरा.

—मैं ठीक कह रहा हूं, जनाब. इस तरह तावखा कर आप अपना केस बिगाड़ लेंगे. सुखबीर ने कहा.

—केस बिगाड़ेंगे? बुड्ढे ने व्यंग्य से कहा. लो, इसकी सुनो. केस बिगाड़ेंगे. केस मां का... बनता कैसे है? ऐं?

—आप गाली क्यों देते हैं, जनाब?

—क्या है बे! करीब से गुजरते हुए एक सिपाही ने हाथ की फाइल जंगले पर ठोंकी.

—जनाब हवलदार साहब, बात ये है कि...

सुखबीर अभी अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि एक मोटी-सी गाली निकालता हुआ सिपाही आगे बढ़ गया. सुखबीर सकपका कर चुप हो गया. बुड्ढा चुप नहीं हुआ—लोग पुलिस वाले को जाने क्या समझते हैं. हद ही हो गयी है. बहन.. सोच कर देखो तो यकीन नहीं होता. अरे अंगरेज साले ने दो सौ साल में इतनी गोलियां नहीं चलायी होंगी जितनी इन हरामियों ने बीस बरस में चला दीं. आदमी की जान की तो कोई कीमत ही नहीं रह गयी.

—वैसे देखिए, मैं आपके खिलाफ कुछ नहीं कहता. सुखबीर ने सफाई देनी चाही.

—अबे कहा भी तो परवाह किसको है! क्यों? किसको परवाह है! कहो! बुड्ढा भिन्नाया.

छोटी उम्र का लड़का बहुत देर से कुछ कहना चाह रहा था. बुड्ढा चूंकि लगातार बोले जा रहा था इसलिए उसे मौका ही नहीं मिल रहा था. उसे दरअसल पेशाब लगी हुई थी लेकिन वह समझ नहीं पा रहा था कि कहां करे.

—अरे इतनी सी बात थी? बुड्ढा सुन कर हंस पड़ा, अरे बहन... यहीं कर दे. कौन अपना घर है.

लड़का और ज्यादा सकपका गया.

—लो साहबजादे डर रहे हैं. अरे अभी पुलिस वाला बर्फ पर लिटा कर हंटर लगाये तो अपने आप निकल जायगा या नहीं? उस वक्त क्या उसे पकड़ कर रखोगे? वैसे पेशाब तो मुझे भी लगी है...कह कर बुड्ढा अपना पायजमा खोलने लगा.

—अरेरे, यहीं. सुखबीर घबरा कर पीछे हट गया.

बुड्ढा तब तक अपना काम करने लगा था. लड़के ने फिर भी पेशाब नहीं किया. सुखबीर कुढ़ने लगा. एक तो इतने लोगों के आने के बाद वैसे ही बैठने की जगह नहीं बची थी, ऊपर से बुड्ढे ने दीवार के सहारे जो गंदगी फैलाई थी, वह सारे फर्श पर फैल गयी थी. वैसे भी उसे इन लोगों से कोई खास सहानुभूति नहीं थी. फिर इस गड़बड़ी के बाद तो उसका मन बिलकुल ही खट्टा हो गया था.

* *

थाने की गालियों और चिंघाड़ों के बीच शाम से एक आवाज शामिल हो गयी थी— किसी के कराहने और दर्द से चीख-चीख पड़ने की आवाज. हालांकि यह आवाज उतनी तेज नहीं थी, फिर भी सुखबीर को सबसे ज्यादा साफ सुनाई दे रही थी. बीच-बीच में जब वह आवाज कुछ ज्यादा ही तेज हो जाती थी तो वह कोठरी के बाकी लोगों की ओर देखने लगता था.

वैसे अब अंधेरा हो गया था और एक-दूसरे के चेहरे साफ नहीं दिखाई दे रहे थे, फिर भी न जाने कैसे बुड्ढा सुखबीर के मन की बात भांप लेता था. एक बार जब कराहने की आवाज बहुत ही तेज आयी तो बुड्ढा हंस पड़ा. फिर खुद ही जैसे अपनी हंसी पर टोका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता हुआ बोला—अभी साली हंसी आ रही है. दूसरे को तकलीफ हो तो ऐसा ही लगता है. जब अपनी. . .

—मैंने सुना है नाखूनों में कीलें ठोंक देते हैं, सुखबीर ने कहा.

—घबराते क्यों हो बर्खुर्दार, अभी पता लग जायगा. जब आ ही गए हो तो यह भी देख लेना, बुड्ढे ने मजे लेते हुए व्यंग्य किया.

बहुत देर से पेशाब रोके हुए छोटी उम्र का लड़का जैसे अचानक छटपटाया और लोगों को धक्का देते हुए जंगले तक आया. जंगलों से एकदम बंदर की तरह चिपट कर वह पूरे जोर से चिल्लाया—इन्कलाब जिंदाबाद!

—अरे ये सब को मरवाएगा, सुखबीर धीरे से भुनभुनाया.

बुड्ढे की नजरों में तरस उभर आया. वह समझ गया कि चीखने वाला लड़का दरअसल बहुत डर गया था. लड़के की आवाज फट गयी थी लेकिन वह बिना रुके नारे लगाये जा रहा था. उसके उत्तर में अब कुछ कोठरियों से भी नारे दुहराए जाने लगे थे. लेकिन लड़के की आवाज उन सबसे अलग थी.

सुखबीर डर रहा था कि अभी कोई सिपाही आएगा और लड़के को पीटने लग जायगा. हो सकता है, गुस्से में वह कोठरी के सभी लोगों को पीट डाले. ऐसे मौकों पर शांत और धीरज से काम लेना चाहिए, उसने सोचा. लड़के की आवाज जब तक बिल्कुल बैठ नहीं गयी तब तक वह जोर लगाता रहा.

सुखबीर को लगा, शायद वह खुद वहीं खड़े-खड़े ही सो गया था. उसे अपनी नींद पर ताज्जुब भी हुआ. जंगले वाले दरवाजे की खड़क से उसकी नींद खुली. बाहर कई बंदूकधारी सिपाही खड़े थे.

—एई, बाहर आओ. किसी ने उसे ललकारा. उसी को बुलाया जा रहा था. अचानक उसके पेट में एक मरोड़ जैसी उठी. उसके टखने कमजोर हो गये. उसने घबरा कर पूछा—जी मैं?

—बाहर आ!

सुखबीर यंत्रचालित-सा बाहर आ गया. उसके साथ के बाकी लोग भी बाहर निकाल लिये गये. अपने साथ बाकी लोगों के भी निकाले जाने पर वह थोड़ा आश्वस्त हुआ. उसने सोचा, अब मौका आ गया है, इन्हें असलियत बता देनी चाहिए. कह देना चाहिए कि वह नाहक पकड़ा गया है.

—भाई साहब, आप मेरी बात सुनेंगे? उसने हकलाकर बेहद दयनीय आवाज में कहा. लेकिन उसकी बात सुनने की जैसे किसी को फुरसत ही नहीं थी. उन्हें लगभग खदेड़ते हुए बाहर लाया गया. सड़क पर जबर्दस्त सन्नाटा था. एक बड़ी-सी काली गाड़ी वहां पहले से ही खड़ी थी. बड़ी फुर्ती के साथ उन्हें गाड़ी में ठूंस दिया गया. उनके साथ ही बंदूकधारी सिपाही भी बैठ गये. बुड्ढा अब बिल्कुल खामोश हो गया था. उनके बैठते ही गाड़ी रवाना हो गयी. गाड़ी के अंदर जबर्दस्त घुटन, अंधेरा और मनहूसियत थी. सुखबीर को अब थोड़ा संतोष हो रहा था क्योंकि उसे यकीन था कि नाखूनों में कीलें ठोंकने की बजाय उसे जेल ले जाया जा रहा था.

लगभग आधे घंटे बाद गाड़ी रुकी. सिपाही कूद-कूद कर नीचे मुस्तैदी से खड़े हो गये. उसके बाद कैदियों को उतारा गया. सुखबीर को ताज्जुब हुआ कि गाड़ी यहां क्यों रोकी गयी थी. यहां से करीब आधे फर्लांग पर नदी का पाट चमकता हुआ दिखाई दे रहा था. हवा बिल्कुल स्तब्ध थी. उनके साथ दो अफसर भी आए हुए थे. थोड़ी देर में एक अफसर इन लोगों की तरफ आया. उसने सब की ओर देखा और फिर एक आदमी छांट लिया—तुम इधर आओ!

उस युवक को साथ लेकर एक अफसर नदी की तरफ चला. दूसरे अफसर ने दो बंदूकधारियों को कोई इशारा किया. बंदूक वाले भी उनके पीछे चले गये. सड़क के बाद पथरीली ढाल और घनी झाड़ियां थीं. दो क्षण बाद ही चारों निगाह से ओझल हो गए. अभी कोई दो-तीन मिनट ही बीते होंगे कि दो गोलियां चलने की आवाज उसी ओर से आयी. पक्षी शोर करते हुए आसमान में उड़ने लगे.

सुखबीर यकायक समझ नहीं पाया कि वह क्या करे. उसने चाहा कि वह अफसर से कुछ कहे लेकिन उसकी आवाज गले में ही फंस कर रह गयी. उस आदमी के साथ गया हुआ अफसर वापस आ गया. पंक्ति में से एक और युवक की ओर इशारा करके उसने कहा—एई, तुम आओ!

बुलाया जानेवाला युवक कांपा और अपनी जगह खड़ा रह गया. एक सिपाही ने अपनी बंदूक के कुंदे से उसे धकेला. लगा वह गिर जाएगा लेकिन चलेगा नहीं. उसके खुश्क होंठ इस तरह फड़क रहे थे जैसे वह कोई मंत्र पढ़ रहा हो. सिपाही ने बांह पकड़ कर उसे खींचा तो वह गिरने लगा. दो सिपाहियों ने फुर्ती से उसे दोनों बाजुओं से लटका लिया और लगभग घसीटते हुए ले चले. युवक के गले से कुछ इस तरह की आवाज निकल रही थी जैसे वह नींद में हंस रहा हो.

दो गोलियां चलने की आवाज फिर सुनाई दी. सुखबीर को लगा जैसे वह आवाज कानों की बजाय कहीं और से शरीर के अंदर घुस रही हो. उसके मुंह में ढेर-सा कसैला पानी भर गया. जब तक वह उसे थूके, तब तक उसका कंठ फोड़ कर एक लंबी-सी उल्टी हुई. वह उल्टी करके अपराधी की तरह पुलिसवालों की ओर देखने लगा जैसे माफी मांग रहा हो. उसके कान अब बिल्कुल बंद हो गए थे और उनमें अजीब-सी सनसनाहट होने लगी थी. उसने कान के पास हाथ फेरा तो महसूस हुआ कि ठंडे पसीने से वह बुरी तरह भीग चुका है. लेकिन उसकी खाल इतनी मुर्दा हो गयी थी कि अपनी हथेली का स्पर्श भी मुश्किल से ही महसूस हो रहा था.

इस बार वे लोग बुड्ढे को ले जाना चाह रहे थे. बुड्ढा पीछे हटता हुआ बड़बड़ाया—तुम लोग गोली मारोगे? बहन के. . मुझे गोली मारोगे—मादर. . .

सिपाहियों ने उसे जबर्दस्ती घसीटना चाहा तो वह बुरी तरह दम लगाकर चीखने लगा—बचाओ, बचाओ!

पीछे से एक सिपाही ने तुरंत उसके कंधों के बीचोबीच बंदूक के कुंदे से भरपूर चोट की. बुड्ढा दुहरा होकर इस तरह आवाज करने लगा जैसे पानी में डूबते हुए हिचकियां ले रहा हो. उसके बाजू पकड़ कर घसीटते हुए वे लोग झाड़ियों में गायब हो गये.

ठीक इसी वक्त एक जबर्दस्त हंगामा हो गया. छोटी उम्र का लड़का किसी मरती हुई मछली की तरह तड़फड़ाया और जोर से चीखा—मारो! जब तक सिपाही सावधान हों तब तक वह छोटा-सा दुबला लड़का किसी नाराज बिल्ली की तरह एक बंदूकवाले पर टूट पड़ा. उस सिपाही की बंदूक शायद अनायास ही चल गयी. लड़का छटपटा कर, चीखता हुआ गिरा लेकिन उसी क्षण बाकी लोग बेतहाशा भागे.

अफसर ने पिस्तौल निकाल ली. सुखबीर को लगा जैसे वह सब कुछ किसी नशे में देख रहा है. भागते हुए लोगों पर सिपाही तेजी से गोलियां चलाने लगे. जैसे नींद में कोई चलता है, इस तरह सम्मोहित-सा आ कर वह अफसर के पास खड़ा हो गया. अफसर ने झटके से अपनी पिस्तौल उसकी ओर उठायी.

सुखबीर ने हाथ जोड़ दिये—जनाब देखिए, मैं तो नहीं भागा और फिर मैं इन लोगों में था भी नहीं. जनाब—मैं. . .

उसे लगा जैसे वह किसी भारी ट्रक से टकरा गया हो. गोली चलने की आवाज उसने नहीं सुनी. सिर्फ बारूद की एक लपट अंधेरे में दीखी, या शायद उसके दिमाग में. उसके बाद सब कुछ ढीला होता गया जैसे वह रेत की बोरी हो और रेत तेजी से निकल कर छितराती जा रही हो. □□□

ए १५१५ राणा प्रताप बाग, दिल्ली—११०००७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

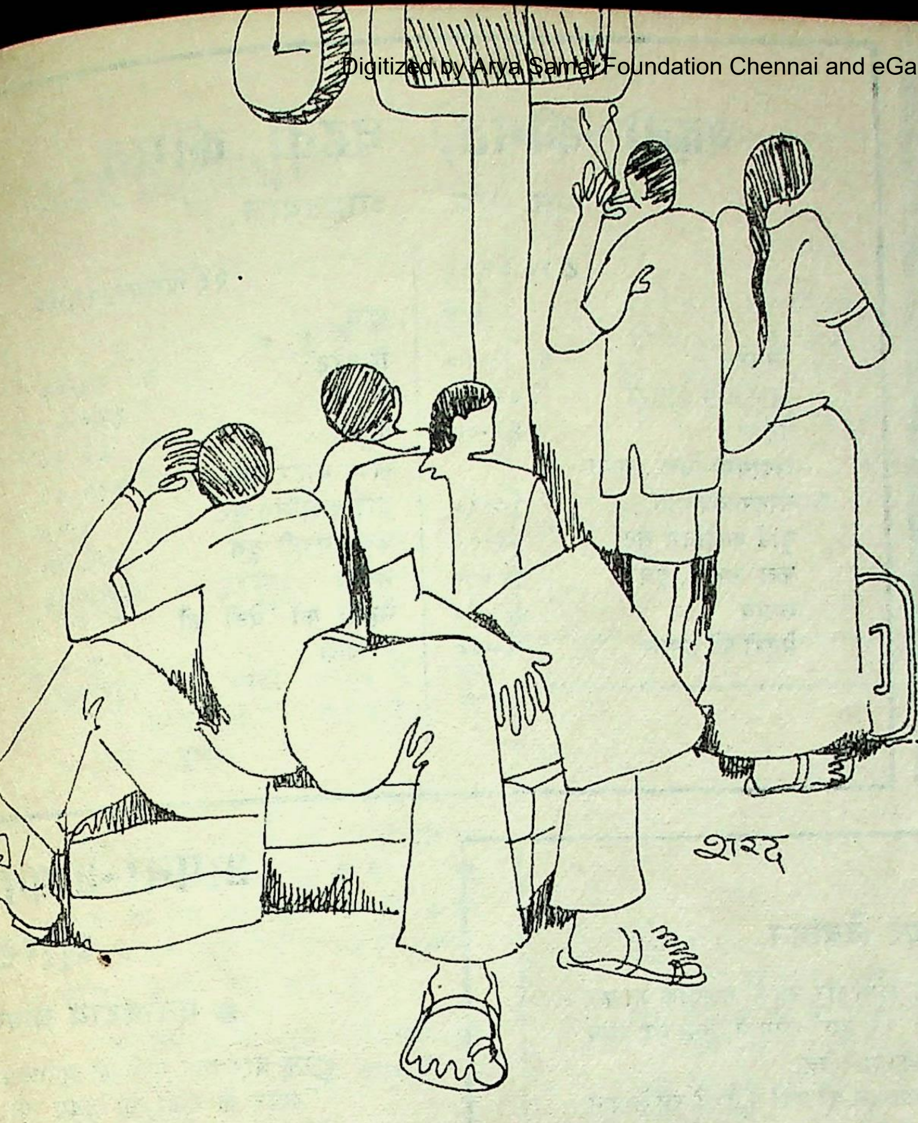

मिलावट

● हरजिंदर सिंह

कम तनख्वाह, बढ़ती महंगाई, बेभाव अभाव और तिसपर भी चीजों में मिलावट के कारण उसे अपना जीवन रसहीन लगने लगा था. खाद्य-पदार्थों में मिलावट इस कद्र बढ़ गयी थी कि उनका असली स्वाद ही न मालूम होता. घोड़े की लीद, लकड़ी का बुरादा, हड्डियों का चूरा मिली चीजें खा-खा कर, उसके चेहरे का रंग उड़ गया. ऐसी रूखी जिंदगी से तंग आ, एक रात उसने जहर खा लिया. मिलावटी जह्र ने उसे मरने नहीं दिया. अगली सुबह हमेशा की तरह वह उठा. जिंदगी फिर उसी पुराने ढर्रे पर चलने लगी.

वह भीतर से कुढ़ता, बेबस, नीरस जिंदगी जीता रहा. उसका स्वभाव भी चिड़चिड़ा हो गया और ऐसे ही एक दिन वह बिस्तर से लग गया. डाक्टर ने उसे चैक किया—घबराने की कोई बात नहीं, केवल ज्यादा सोचने की वजह से वह बीमार पड़ गया था. उसे आराम की जरूरत थी. डाक्टर ने दवा लिख दी. दवाई खाते ही वह मर गया. □

रखवाला

● हरजिंदर सिंह

बांसुरी बजाते हुए चरवाहा चला जा रहा है. बांसुरी की धुन पर अपना सिर हिलाते हुए उसकी भेड़ उसके पीछे-पीछे चली जा रही है. बांसुरी बजाने में तल्लीन लड़के को भेड़ का खयाल नहीं, बांसुरी की धुन पर झूमती भेड़ को आसपास की खबर नहीं. सहसा एक चीख सुन कर लड़का पलट कर देखता है—एक भेड़िये ने उसकी भेड़ को दबोच लिया है. ऐसा अकसर होता है. भेड़िया किसी-न-किसी चरवाहे की भेड़-बकरी खा जाता है. मायूस लड़का लौट पड़ता है.

गांव पहाड़ी की तलहटी में ही बसा है, जिसमें अधिकांशतः बस्ती चरवाहों की है. बांसुरी वाले की मायूसी देख कर गांव वालों को कारण समझते देर नहीं लगती. तुरंत कुछ युवक भेड़िये को मारने की योजना बना लेते हैं.

पहाड़ी पर चरागाह के क्षेत्र को कंटीले तारों से घेर दिया जाता है. पांच-छह लड़के कुछ भेड़-बकरियां ले कर वहां पहुंचते हैं. बांसुरी बजती है. लड़के झूमने लगते हैं. भेड़िया भी अपने शिकार की गंध पा कर वहां आता है और मौका देख कर चरागाह में घुस जाता है. भेड़िये को अंदर आया देख लड़के अपने-अपने हथियार ले कर भेड़िये पर टूट पड़ते हैं और उसे मार डालते हैं.

बांसुरी की धुन और ऊंची होती है. मरे भेड़िये को अपने कंधों पर उठा कर चरवाहे नाचते हैं, गाते हैं, खुश होते हैं और भेड़िया मारने का जश्न मनात हैं और इस जश्न में वे अपनी सभी भेड़-बकरियां भून कर खा जाते हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

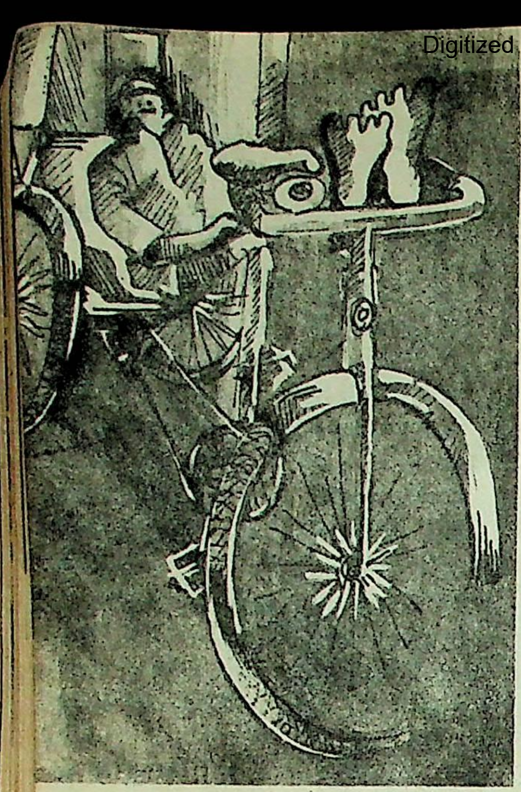

चढ़ती कीमत, घटती कीमत

● एस. एम. शाहनवाज

८.१०.१९६३ खर्च	
सिगरेट	रु. ५-००
हिल टॉप रेस्तरां	" ४२-३०
पेट्रोल	" १५-००
अदायगी बिल : खन्ना मोटर वर्कशाप	" ३८-५०
ड्राई क्लीनिंग सूट	" ३-००
फल, सब्जी, दूध	" १०-००
शराब	" ७०-००
मेहरी को इनाम	५-००

२३ दिसंबर, १९७४ खर्च	
सिगरेट	रु. १५-००
रेस्तरां	" १४०-००
पेट्रोल	" ६०-२०
खन्ना मोटर वर्कशाप	" २१५-००
ड्राई क्लीनिंग सूट	" ६-५०
फल, सब्जी दूध	" ४५-१५
शराब	३००-००
मेहरी की बेटी को बख्शिश	१-००

□

ब्लडप्रूफ

● रामशंकर देवांगन

एक खून की नदी बह रही है. उसमें कुछ लोग तैर रहे हैं. नजदीक जा कर देखने पर पता चला, तो वे अपने ही 'चुने हुए' लोग थे. कुछ देर बाद जब वे बाहर आये तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा.

—सज्जनो ! आप सब इतनी देर तक खून की नदी में तैरते रहे लेकिन आपके वस्त्रों पर खून का एक छींटा तक नहीं?

प्रत्युत्तर में एक समवेत अट्टहास हुआ, शायद मेरी बेवकूफी पर! एक ने अपना खद्दर उतारते कहा—श्रीमान ! हमने यह ब्लडप्रूफ जो पहन रखा था. □

आत्म-हीन

● अशोक दुबे

आखिर अ-न्याय मंत्री श्री 'रिश्वत प्रसाद जी भ्रष्ट' का अंतिम समय आ गया. यमलोक से यमदूत आये. उन्होंने 'भ्रष्ट जी' के शरीर का कोना-कोना छान मारा. परंतु उन्हें 'भ्रष्ट जी' के शरीर में 'आत्मा' का कहीं पता न चला.

हार कर यमदूत असफल ही वापस यमलोक लौट आये. अपनी असफलता उन्होंने यमराज के दरबार में निवेदित की.

—हूं. . .यमराज ने पूछा—क्या वह 'मंत्री' है ?

—हां महाराज, यमदूतों ने कहा.

—ठीक है. . .यमराज ने कुछ सोच कर कहा—वापस जाओ! उसकी 'आत्मा' कुर्सी में अटकी हुई है. □

अपना-अपना भाग्य

● मनीषराय यादव

एक बार एक मंत्री की अपील पर शहर के गुंडों का हृदय परिवर्तन हो गया. उन्होंने उनके समक्ष आत्म समर्पण करने की इच्छा व्यक्त की.

मंत्रीजी के लिए इससे प्रसन्नता की और क्या बात हो सकती थी. बड़ी धूमधाम से समारोह आयोजित किया गया.

जनता समर्पण का दृश्य देखने के लिए उमड़ पड़ी, पर गुंडे केवल दस-बीस ही उपस्थित हुए.

मंत्रीजी को बड़ी निराशा हुई. यहां तक कि वे तथाकथित संभ्रांत भी नहीं दिखाई दे रहे थे, जिनकी सेवाएं, आज से चार साल पहले चुनाव के समय उन्हें मजबूरन अर्जित करनी पड़ी थीं. उन्होंने तुरंत एस. पी. को बुला कर पूछा—बाकी समर्पणकर्ता कहां गये ?

—सर, कुछ जिला बदर कर दिये गये, कुछ पुलिस के मुखबिर बन गये और कुछ हिकमत अमली से कुर्सियों पर बैठे हुए हैं. एस. पी. ने नम्रता पूर्वक जानकारी दी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार लघुकथाएं

● कृष्णदेव झा

उम्मीदवार

चुनाव के दिन थे, एक इलाके के आदमी सही और योग्य उम्मीदवार की तलाश में थे. आम राय थी कि इस बार ऐसे उम्मीदवार को खड़ा किया जाये जो न तो बहुत उग्र हो और न एकदम दकियानूसी. मतलब यह कि वह ऐसा हो जो बीच रास्ते पर चले.

—क्या खयाल ह कि इस बार हम किसी बस ड्राइवर को खड़ा कर दें. किसीने सुझाव दिया.

पावर : एक

'क्या तुम्हें अपनी सफाई में कुछ कहना है?' न्यायाधीश ने अपराधी से पूछा.

—बस इतना ही हुजूर कि मेरे साथ सोलह आदमी और थे, दस को तो मुखिया ने छोड़ दिया और छह आदमी को दारोगा जी ने. तो क्या आपको इतना भी पावर नहीं कि एक मुझ गरीब को छोड़ सकें! अपराधी ने हाथ जोड़ कर कहा.

न्यायाधीश को अपने पावर का स्मरण हुआ. और उसने अपराधी को छोड़ दिया.

समीक्षक

किसी गरीब समीक्षक पर दया कर के एक प्रकाशक ने अपने घर में जगह दी. एक महीने तक खिलाया-पिलाया. एक दिन उसने समीक्षक महोदय को समीक्षार्थ एक पुस्तक दी.

समीक्षक ने इस टिप्पणी के साथ पुस्तक लौटा दी—पढ़ कर देखा पाया कि जो अंश मौलिक है वह अच्छा नहीं है, और जो अंश अच्छा है वह मौलिक नहीं है.

दूसरे दिन समीक्षक फिर दर दर भटकते लगा.

पावर : दो

—देखो मैं चलती गाड़ी को रोक सकता हूं पति ने अपनी पत्नी से कहा. और गाड़ी में लगी जंजीर को खींच कर गाड़ी खड़ी कर दी.

इसी बीच पता लगाते हुए टी. टी. आई. के साथ एक आदमी उस डिब्बे में घुसा.

उसने नजदीक आ कर इसे दो तमाचे जड़ दिये.

उन दोनों के चले जाने के बाद पत्नी ने पूछा—इन लोगों ने तुम्हें क्यों मारा?

—यह तो अपने-अपने पावर की बात है. मेरा पावर था गाड़ी को खड़ी कर देना, उसका पावर था मुझको पीट देना. पति ने मुसकराते हुए उत्तर दिया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह एक कस्बे का कालेज था, जिसकी स्टूडेंट्स यूनियन का सेक्रेटरी, पारसनाथ, पास के एक गांव का रहने वाला था.

पारसनाथ देखने में दुबला किंतु कसी और लाल देह वाला लड़का था. वह बड़ी-बड़ी मूंछें रखता था और भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद पर प्रायः बातें किया करता था. बी. ए. प्रथम वर्ष में ही कालेज को एक मील लंबी दौड़ में पहला स्थान प्राप्त कर, इस कुर्त्ता-पैजामा पहनने वाले लड़के ने लोगों का ध्यान अपनी ओर खींच लिया था. कालेज के प्रिंसपल ने उसे पुरस्कार दिया था, साथ ही एक आत्मीय मुस्कान के जरिये, मिलते-मिलाते रहने का आह्वान.

बस, तबसे, पहले से ही हुलसे (उत्साहित) पारसनाथ के पैरों में तेजी और आवाज में जोश आ गया था. वह जहां भी खड़ा होता, लड़के समझ जाते, वहां या तो राजनीति की बातें हो रही होंगी, या फिर भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद की कुर्बानी की चर्चा.

कालेज में पारसनाथ अभी नया ही था, लेकिन उसे किसी ने कभी अकेला नहीं देखा. राजनीति और स्वतंत्रता-संग्राम के बलिदानियों की बातों के अतिरिक्त कभी-कभार वह पंद्रह-बीस लड़कों की टोली के साथ किसी खाली कमरे में बैठकर किसी अच्छी-खासी तन्दुरुस्ती वाले लड़के से पंजा लड़ाता था. हर बार सामने वाला प्रतिद्वंद्वी बदला होता, मगर पंद्रह-बीस लड़कों की टोली गवाह थी कि पारसनाथ पूरे साल किसी भी लड़के से पंजा लड़ाने में हारा नहीं.

कसी और पतली देह,लंबी डील-डौल,घनी मूंछ और रोबदार आवाज के कारण, पारसनाथ का व्यक्तित्व, कुल मिलाकर, आक्रमक होने का एहसास कराता था. गलत बातों और चीजों के प्रति उसकी मुद्रा अक्सर विरोध लिये होती हालांकि यह सब बहुत दिनों तक सामान्य रहा. कस्बाई कालेज के दबे-दबे व्यक्तित्व वाले लड़के पारसनाथ को जानने तो लगे, पर अलग-अलग संदर्भों में. मसलन, कोई उसे एक मील लंबी दौड़ का प्रथम पुरस्कार प्राप्त करने वाले के रूप में जानता, कोई चंद्रशेखर आजाद और भगतसिंह पर धाराप्रवाह वक्ता के रूप में, तो कोई पंजा लड़ाने में माहिर के रूप में.

लेकिन पारसनाथ की विरोधी मुद्रा भी एक दिन सबके सामने आ गयी. फरवरी माह में कालेज के प्रयोगात्मक विषय वाले विभागों में प्रत्येक लड़के से नियमित रुप से पांच रुपये की वसूली की जाती थी. पर इस बार पारसनाथ ने भूगोल विभाग के लड़कों से राय-मशविरा करके तय किया कि कोई भी लड़का पांच रुपये नहीं देगा. कुछ लड़कों ने पारसनाथ को बताया कि वह रकम बाहर से आनेवाले परीक्षकों पर खर्च की जाती है, तो पारसनाथ ने कहा–– यह कतई जरूरी नहीं है. और फिर, परीक्षक को विश्वविद्यालय की तरफ से आने-जाने और ठहरने का खर्च मिलता है.

बात धीरे-धीरे अन्य विभागों में भी पहुंची. पारसनाथ ने अन्य विभागों के लड़कों को आश्वासन दिया और कहा––इस मुद्दे पर मैं प्रिंसिपल से बात करूंगा. हां, आप लोग दृढ़ निश्चय कर लें कि पैसा नहीं देना है.

कुछ लड़कों ने आशंका प्रकट की कि अगर पैसा नहीं दिया गया, तो हम लोगों को हमारे विभागाध्यक्ष प्रैक्टिकल में फेल करवा देंगे.

इस पर पारसनाथ ने कहा––फेल करवाना, पहले तो, आसान नहीं है. और फिर इतने लड़कों को फेल करने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता.

कुछ लड़कों ने प्रस्ताव रखा कि इस मुद्दे पर युनियन के वर्तमान सेक्रेटरी, वीरेंद्र से भी बात कर ली जाय, लेकिन लड़कों के बहुमत ने वीरेंद्र को प्रिंसिपल का चमचा कह कर इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया.

विरोध की खबर धीरे-धीरे पूरे कालेज में फैल गयी. युनियन के वर्तमान सेक्रेटरी, वीरेंद्र ने प्रिंसिपल को सारी बातों से अवगत करा दिया, और यह भी कहा, वह भरसक कोशिश करेगा कि बात रफा-दफा हो जाय और कोई हंगामे जैसी स्थिति भी न हो.

मगर बात रफा-दफा नहीं हुई. पारसनाथ ने प्रिंसिपल से बात करने का समय ले लिया. प्रिंसिपल के घर जाने से पहले उसने सक्रिय और उत्साही लड़कों की एक मीटिंग बुलवायी. मीटिंग में सारे मुद्दों पर एक बार फिर विचार हुआ. अन्ततः लोगों ने निर्णय किया कि पारसनाथ, उन सब लोगों का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रिंसिपल से इस संबंध में बात कर ले.

प्रिंसिपल की दलील थी कि अगर यह रकम वसूल नहीं हुई, तो कालेज बाहर से आये परीक्षकों को खिलाने-पिलाने में असमर्थ होगा जिससे न सिर्फ लड़कों का नुकसान होगा, बल्कि कालेज की भी बदनामी होगी.

––लेकिन सर, पारसनाथ ने कहा, परीक्षक को मानवता के नाते अगर खाना खिलाना है, चाय पिलानी है, तो विश्वविद्यालय के अन्य तमाम कालेजों की तरह उन्हें इन्टरनल इक्जामिनर के साथ भी रखा जा सकता है. एक-दो रोज के खाने-पीने में, हम समझते हैं, इतना खर्चा नहीं आयेगा कि इन्टरनल बर्दाश्त न कर सकें.

––वो तो ठीक है, प्रिंसिपल ने कहा, लेकिन यह एक नयी शुरु-

• सुशील भारती

मदारी

• राम सुरेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत होगी. और जहां तक मैं समझता हूं, संबंधित प्राध्यापक इस पर आपत्ति करेंगे.

—तो फिर खाने-पीने का इंतजाम हर माह ली जाने वाली प्रैक्टिकल फ्री के एकाउंट से कालेज को करना चाहिए. और नहीं, तो हम लोग शुरू में विभागों में जो दो रुपये एसोसियेशन फ्री देते हैं, उससे किया जा सकता है.

—उसमें भी दिक्कत है, पारसनाथ! प्रिंसिपल ने मुसकराकर किन्तु सख्त आवाज में कहा.

—तब, तो, सर, माफ कीजिएगा, दिक्कत ही दिक्कत है! .... हम पांच रुपये नहीं दे सकते!

—फिर कितना दे सकते हैं?

—इस बात के लिए एक पैसा भी नहीं!

—यह तुम लोगों के हक में नहीं रहेगा, प्रिंसिपल ने चेतावनी दी.

—ठीक है सर, देखा जायेगा, पारसनाथ ने कहा और 'नमस्ते' कहकर बाहर आ गया. सड़क पर लड़कों की एक टोली खड़ी थी, पारसनाथ ने कहा, मसला हल नहीं हो सका. लड़के जोर-जोर से नारे लगाने लगे.

—पारसनाथ, जिंदाबाद!

—धांधागर्दी, नहीं चलेगी! नहीं चलेगी!!

उधर प्रिंसिपल अपने पीछे वाले कमरे की जालीदार खिड़की से लड़कों का जोश देखते रहे और सोचते रहे. यह तो नहीं कहा जा सकता कि डेढ़-दो सौ लड़कों को इकट्ठा देखकर वे घबड़ा गए थे, हां, इतना जरूर था कि प्रिंसिपल इस मुद्दे पर गहराई से सोचने लगे थे. कहीं-न-कहीं से उन्हें लगा, इस बार पैसा जमा करवा पाना शायद मुश्किल हो. वह हल्के-से मुस्करा उठे. सामने दीवाल पर टंगी कालेज-व्यवस्थापक अपने स्वर्गीय मामा की तस्वीर की तरह. यह उनकी आदत थी, जो शायद मामा के साथ काम करते-करते पड़ गयी थी और अब मामा के बाद स्वयं ही कालेज का भार वहन करने में अकसर ही होंठों पर आ जाती थी.

ऐसा प्रायः तभी होता था, जब कठिन-से-कठिन परिस्थिति में पड़कर वे कोई दांव-पेंच में लग जांय, मामा की ही तरह लोगों के विचारों को मोड़ देना, किसी को अपने करीब ले आना, किसी को दूर कर देना, यह सब उनकी प्रिय बातें थीं, जिसे एक शासक के लिए वह जरूरी मानते थे. और शायद सोचते समय काट-छांट, तोड़-मरोड़ की एक हल्की रूपरेखा भी बना लेते थे, जिसे सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने की क्षमता उनमें थी.

लड़कों के नारों को सुनकर, सोचते-सोचते अनायास मुसकराने के पीछे भी शायद कोई ऐसी ही बात रही हो.

★ ★

दूसरे दिन शाम को प्रिंसिपल ने कालेज के सभी विभागाध्यक्षों की एक मीटिंग बुलवायी और लोगों से राय-मशविरा किया.

प्रिंसिपल की राय थी, इस बार लड़कों से पांच रुपये की वसूली न की जाय.

—लेकिन, विभागाध्यक्षों ने कहा, इस तरह तो लड़कों को और शह मिल जायेगी. और फिर पारसनाथ की नेतागिरी भी चमकेगी, जिसके परिणाम भविष्य में अच्छे नहीं होंगे.

प्रिंसिपल फिर मुसकराये और बोले — मैंने इस बात पर भी विचार किया है, लेकिन फिलहाल लड़कों को यह छूट देनी ही पड़ेगी. पारसनाथ को बाद में देखेंगे.

आखिरकार निश्चय किया गया कि इस बार लड़कों से रकम की वसूली नहीं की जायेगी और परीक्षकों को खिलाने-पिलाने का खर्चा कालेज बर्दाश्त करेगा.

अगले रोज कालेज में इसकी खबर कानों-कान लड़कों तक पहुंच गयी. लड़कों ने एकजुट होकर पारसनाथ के प्रयत्नों की सराहना की और जोश में आकर अगली बार पारसनाथ को यूनियन का सेक्रेटरी बनाने का प्रस्ताव रखा.

पारसनाथ ने कहा—भाइयो, मुझे सेक्रेटरी बनने का कोई लोभ नहीं है. सेक्रेटरी की हैसियत से, हमारे आपके काम में कोई फर्क आ जायेगा, ऐसा भी मुझे नहीं लगता. हम तो चाहेंगे, आप सब लोगों का सहयोग मिलता रहे, तो आनेवाले दिनों में किसी भी गलत बात के प्रति हम अपना विद्रोह प्रकट कर सकते हैं.

मगर लड़कों का उत्साह ढीला नहीं पड़ा. अगले साल की ही बात थी, और लड़के चाहते थे, तैयारी अभी से होने लगे.

पारसनाथ ग्रुप ने दूसरा विरोध शीघ्र ही फिर किया. उस दिन कालेज की ओर से लड़कों के नामों की एक टंकित सूची सभी विभागों में आयी थी. परंपरा के अनुसार सभी लड़कों को उस सूची पर हस्ताक्षर कर अपनी सहमति देनी थी कि लाइब्रेरी की जमा-निधि (काशन मनी) में स्वेच्छा से कालेज लाइब्रेरी को दान करता हूं हालांकि स्वेच्छा वाली बात कतई नहीं थी. जो लड़का दस्खत करने में आनाकानी करता था, उसे किसी-न किसी तरह से नुकसान उठाना ही पड़ता था. परसनाथ ग्रुप ने उसका विरोध किया.

प्रिंसिपल से की गयी एक मुलाकात में पारसनाथ ने कहा—सर, ये कॉशन मनी लड़के अपनी स्वेच्छा से नहीं, दबाव और डर से देते हैं, इसलिए हमारा अनुरोध है कि यह परिपाटी समाप्त कर दी जाय.

इस बार प्रिंसिपल ने बिना किसी बहस-मुबाहिसे के इस बात को मान लिया.

लड़कों में एक बार फिर सनसनी फैल गयी.

पारसनाथ को जो मानते थे, अपनाने लगे, जो नहीं जानते थे, जानने लगे, जिन्होंने देखा था, करीब आने लगे, जिन्होंने नहीं देखा था, पहचानने लगे यहां तक कि कालेज के अध्यापकों में भी पारसनाथ अनायास ही चर्चित हो उठा.

हालांकि यह बात लोगों के गले नहीं उतरती थी, प्रिंसिपल ने आज तक कभी झुकना नहीं सीखा था लेकिन महज आश्चर्य के सिवा, लोग कुछ कह या कर नहीं सकते थे.

★ ★

बी. ए. प्रथम वर्ष की परीक्षा देकर पारसनाथ पास हो गया. तमाम अन्य सहयोगी भी पास हो गये. जो नहीं हुए, वे भी साथ थे ही. कुछ लड़के नये आये, कुछ पुराने चले गये, लेकिन [illegible] भी कालेज खुलते-खुलते पारसनाथ लड़कों के दिमाग पर छा गया. पारसनाथ ग्रुप ने एक बार फिर पुराने फैसले को दुहराया और तय किया कि इस बार पारसनाथ को सेक्रेटरी अवश्य बनाया जाय.

लड़कों के इस फैसले की खबर वीरेंद्र ने शीघ्र ही प्रिंसिपल को दी. प्रिंसिपल सदा की भांति फिर मुस्कराये और बात समझते हुए बोले—तो ठीक है वीरेंद्र! इसमें परेशानी की कोई बात नहीं. लड़के पारसनाथ को चाह रहे हैं, तो वह सेक्रेटरी होगा ही.

—लेकिन सर, वीरेंद्र ने शंका प्रकट की, तब तो कालेज में और हाय-तोबा मचेगा. अभी पिछले साल पारसनाथ का रवैया तो आपने देखा ही है. इस वर्ष अगर वह सेक्रेटरी हो जायेगा, तब तो रोज ही आपको उसका मुकाबला करना पड़ेगा.

—तो क्या हुआ भई, मुकाबला करेंगे, प्रिंसिपल ने तटस्थ होकर कहा.

—इसके माने, आपकी भी यही इच्छा है कि पारसनाथ सेक्रेटरी बने, वीरेंद्र ने कुछ झुंझलाकर कहा.

—हां, हालत को देखते हुए तो यही इच्छा है, प्रिंसिपल ने कहा.

• • •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

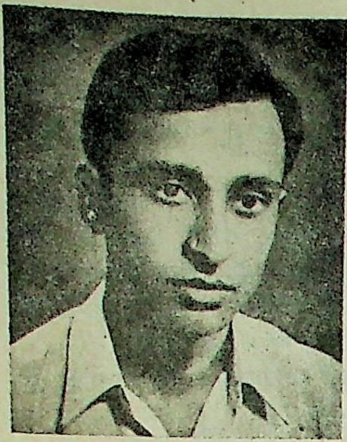

रामसुरेश (जन्म : १७ जुलाई १९४९) डी. ए. वी. कालेज, कानपुर में भूगोल के प्रवक्ता. छोटी-मोटी पत्रिकाओं में पिछले कई वर्षों से लिखते आ रहे हैं. इधर कुछ अर्से से 'सारिका' में भी इनकी कहानियां प्रकाशित हो रही हैं.

—फिर तो कोई बात ही नहीं है, सर! वीरेंद्र ने बात को समाप्त करने की मुद्रा में कहा.

—सुनो वीरेंद्र! प्रिंसिपल ने उसे टोका, तुम्हें खराब लग रहा है न, पारसनाथ का सेक्रेटरी बनना?

वीरेंद्र सिर झुकाये बैठा रहा.

—खराब मुझे भी लग रहा है, प्रिंसिपल ने वीरेंद्र की नस पकड़ते हुए कहा, लेकिन फिलहाल, पारसनाथ सेक्रेटरी बनेगा. इसलिए बेहतर है, ऊपरी तौर पर मैं उसके साथ रहूं. अपनी भलाई के लिए तुम चाहो तो किसी तरह पारसनाथ के करीब पहुंचो. समय आने पर मैं तुम्हें अगले कदम के बारे में बता दूंगा.

वीरेंद्र की समझ में कोई बात नहीं आयी. फिर भी, इतना विश्वास उसे हो गया कि मन से प्रिंसिपल उसी को चाहते हैं, और उसे अपना आदमी समझते हैं, अब भी.

इतनी बात वीरेंद्र के लिए काफी थी. वह प्रिंसिपल की राय के मुताबिक सेक्रेटरी के चुनाव के लिए जोर-शोर से तैयारियां करने लगा. कक्षाओं में चुनाव-प्रचार शुरू हो गया . यह देख कर पारसनाथ ग्रुप भी सक्रिय और सजग हो गया. चुनाव-प्रचार धीरे-धीरे जोर पकड़ने लगा. नामांकन पत्र दाखिल हो गये. सेक्रेटरी के लिए केवल दो लोग मैदान में थे— वीरेंद्र और पारसनाथ!

धीरे-धीरे वीरेंद्र का चुनाव-प्रचार रंग लाने लगा. लोगों की आशा के विपरीत कालेज में जीपें घूमने लगीं. लाउड्स्पीकर पर वीरेंद्र की चर्चाएं होने लगीं. तमाम पोस्टर्स वीरेंद्र के समर्थन की मांग करते हुए कालेज की दीवारों पर छा गये.

उधर पारसनाथ ग्रुप को लगने लगा, उनका चुनाव-प्रचार कमजोर पड़ रहा है. था भी ऐसा ही.पारसनाथ के पास न तो चुनाव में खर्च करने के लिए पैसा था, न बिपुल साधन. फिर भी, एकाध मीटिंग किसी तरह पारसनाथ ग्रुप वालों ने भी की.

नामांकन पत्र वापस लेने वाले दिन तक, लोगों को लगा, वीरेंद्र के चुनाव-प्रचार की आंधी-सी आ गयी है. लोगों का विश्वास डगमगाने लगा. मगर ऐन वक्त पर वीरेंद्र ने सबको आश्चर्य में डाल दिया. लोग यह देखकर दंग रह गए कि वीरेंद्र ने अपना नामांकन पत्र वापस ले लिया.

इतना ही नहीं, वीरेंद्र ने विद्यार्थियों के सामने घोषणा की कि—मैं यह चुनाव अपने लिए नहीं, आप सबके लिए लड़ रहा था. लेकिन जब मुझे मालूम हुआ कि मेरे प्रतिद्वंद्वी भाई पारसनाथ वही हैं, जिन्होंने पिछले वर्ष कालेज की तमाम गड़बड़ियों को, सेक्रेटरी न होने के बावजूद ठीक कराया था, तो मैंने भाई पारसनाथ से बातचीत करके, अपना नामांकन पत्र वापस ले लिया है. मुझे उम्मीद है, भाई पारसनाथ, बतौर सेक्रेटरी, आप लोगों का अधिक से अधिक भला कर सकेंगे और हमें भी उन कामों में शामिल रखेंगे.

इसके बाद वीरेंद्र ने पारसनाथ को गले लगाया और नारा दिया. हमारा सेक्रेटरी, पारसनाथ! पारसनाथ, जिंदाबाद!

देखते-देखते पूरे कालेज में पारसनाथ के निर्विरोध सेक्रेटरी होने की खबर फैल गयी. अगले दिन के चुनाव के बाद पारसनाथ और वीरेंद्र साथ-साथ प्रिन्सिपल के घर गये. प्रिन्सिपल ने पारसनाथ को हार्दिक बधाई दी और कहा—मुझे उम्मीद है पारसनाथ कि इस वर्ष तुम और वीरेंद्र मिलकर कालेज यूनियन को अच्छी तरह चलाओगे. पिछले वर्ष की भांति इस वर्ष भी कालेज या किसी विभाग में जो खामियां हों, उन्हें हमसे बताओ. मैं उन्हें ठीक करने का पूरा प्रयत्न करूंगा.

पारसनाथ एक आत्मीय बोझ के तले दबकर चुप खड़ा रहा. कालेज में शांतिपूर्वक पढ़ायी होती रही. लड़के चैन-से पढ़ते रहे. पूअर ब्वायज फण्ड और फीस माफी के लिए पारसनाथ और वीरेंद्र ने मिलकर एक सूची तैयार की, जिसे प्रिंसिपल ने न सिर्फ स्वीकार कर लिया, बल्कि पारसनाथ को आश्वासन दिया कि इस वर्ष जितनी भी उचित मांगे होंगी, उन पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेंगे.

प्रिंसिपल के आश्वासन और कुछ अपने बहुमत के बल पर पारसनाथ और वीरेंद्र ने मिलकर फैसला किया कि इस बार लाइब्रेरी की भारी अनियमितताओं को खत्म कराया जाय. यह कालेज का एक ऐसा भाग था, जिसमें तमाम-तमाम किताबें लापता थीं. लाइब्रेरी के क्लर्क मनमानी करते थे और जिसे चाहते थे, किताबें देते थे, जिसे नहीं चाहते थे, नहीं देते. क्लर्कों का यह 'चाहना' और 'न चाहना' व्यक्तिगत पहुंच और खिलाने-पिलाने पर निर्भर था.

पारसनाथ और वीरेंद्र ने मिलकर लाइब्रेरी में सुधार की एक रूपरेखा तैयार की, जिसमें प्रिंसिपल से अपील की गयी थी कि लाइब्रेरी की किताबों का हर वर्ष लेखा-जोखा हो, और उसे कालेज के विद्यार्थी यूनियन के सामने प्रस्तुत किया जाय. इसके अतिरिक्त, लाइब्रेरी में कुछ इस तरह की व्यवस्था हो, जिससे विद्यार्थी अपनी आवश्यकतानुसार पुस्तकें स्वयं निकालकर, उपस्थित क्लर्क से इशू करा सकें. और अंतिम बात—लाइब्रेरी का अध्ययनकक्ष नियमित रूप से रात के आठ बजे तक खोलने की व्यवस्था हो.

रूपरेखा तैयार होने के बाद पारसनाथ और वीरेंद्र ने आपस में विचार-विमर्श किया.

—मांगें तो उचित ही हैं. . .क्यों? पारसनाथ ने वीरेंद्र की राय ली.

—बिल्कुल उचित हैं, यार!

—लेकिन अगर प्रिंसिपल न मानें तो?

—तो मनवाना तो हम जानते हैं! वीरेंद्र ने दृढ़ता से कहा.

—कैसे?

—अरे, कैसे क्या, स्ट्राइक करवा दूंगा. . .आग लगा दूंगा कालेज को. . .जरा मना करके तो देखें!

—नहीं भाई, पारसनाथ ने कहा, यह तरीका ठीक नहीं रहेगा. इस कालेज में अभी तक शांतिमय हड़तालें हुई हैं, उसी का पालन हमें भी करना है.

—दुरुस्त! पर, हमारा अंतिम हथियार तो वही है. . . खैर, पहले प्रिंसिपल से इस मुद्दे पर बात करने के लिए समय तो ले लें.

पारसनाथ ने यह काम वीरेंद्र को सौंप दिया.

लेकिन वीरेंद्र ने प्रिन्सिपल से अलग ढंग से बात की. एक बात की जाती है, अपनी बात, योजना मनवाने के लिए, एक बात की जाती है, स्थिति को भड़काने के लिए.

वीरेंद्र ने कुछ इसी भड़काने वाली मुद्रा में सारी बातों को सामने रखा—सर, वीरेंद्र ने प्रिंसिपल से कहा, इस बार पारसनाथ की नजर लाइब्रेरी पर पड़ी है. उसने एक रूपरेखा बनायी है, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपसे बात-चीत के लिए समय मांगा है.

प्रिंसिपल ने पूरी रूपरेखा देखी. कुछ देर सोचा. फिर बोले—अच्छी बात है वीरेंद्र! परसों बात-चीत कर लो तुम सब. फिर उन्होंने वीरेंद्र को कुछ और हिदायतें दीं और कहा, लेकिन ध्यान रखना, तोड़-फोड़ का काम लाइब्रेरी के बरामदे वाले सेक्शन तक सीमित रहे. कालेज का वास्तव में कोई नुकसान न होने पाये.

वीरेंद्र ने हामी भरी—जी, ठीक है.

बातचीत वाले दिन पारसनाथ और वीरेंद्र दोनों आश्वस्त थे कि वार्ता जरूर सफल होगी. कल उन्होंने यूनियन के अन्य पदाधिकारियों के सामने भी पूरी रूपरेखा पर जमकर बहस की थी और तय पाया गया था कि पारसनाथ और वीरेंद्र इस रूपरेखा के आधार पर बात कर लें.

मगर बातचीत शुरू से ही उखड़ने लगी. प्रिंसिपल का कहना था, विद्यार्थी स्वयं पुस्तकें निकालकर इशू करायें, यह व्यवस्था फिलहाल संभव नहीं है. और यह भी संभव नहीं है कि पुस्तकों की अप-टू-डेट सूची हर वर्ष विद्यार्थी यूनियन के सम्मुख रखी जाय.

वीरेंद्र और पारसनाथ ने पहले तो इस बात पर जमकर बहस किया, लेकिन फिर वे लोग यूनियन के समक्ष सूची प्रस्तुत करनेवाली मांग को छोड़ने के लिए तैयार हो गये.

पर प्रिंसिपल फिर भी नहीं माने. आज उनका मूड एकदम उखड़ा हुआ था. उन्होंने पूरी रूपरेखा को अस्वीकार करते हुए साफ शब्दों में कहा—देखो पारसनाथ, ये व्यवस्था कालेज से संबंधित है, और मेरा ख्याल है तुम लोगों की दखलंदाजी ठीक नहीं है.

बात बिगड़ने लगी और धीरे-धीरे झड़प तक की नौबत आ गयी. वीरेंद्र और पारसनाथ रोष में वार्ता छोड़ कर उठ आए.

और अगले ही दिन हड़ताल का आह्वान कर दिया गया.

पारसनाथ ने विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा—दोस्तों, हम अपने सही मांगों के लिए लड़ रहे हैं. . हमारी हड़ताल शांतिपूर्ण ढंग से चलेगी. किसी प्रकार के तोड़-फोड़ को हमें प्रोत्साहन नहीं देना है.

लेकिन जलूस ज्यों ही लाइब्रेरी भवन के पास पहुंचा, गड़बड़ी शुरू हो गयी. पहले तो जमकर पथराव हुआ. लड़के उत्तेजित हो गए. कुछ विद्यार्थियों ने अंदर घुसकर तोड़फोड़ किया. लाइब्रेरियन को घसीटा, देखते-देखते स्थिति गंभीर हो गयी.

प्रिंसिपल को बाहर आना पड़ा. बाहर आते ही उन्हें भी घसीट लिया गया. नारों और गालियों की भरमार हो गयी.

. . . और पुलिस के आने और हड़तालियों पर काबू पाने तक स्थिति बेहद खराब हो गयी. प्रमुख नेता पारसनाथ को गिरफ्तार कर लिया गया. वीरेंद्र न जाने कहां गायब हो गया.

प्रिंसिपल ने समाचार एजेंसियों को लाइब्रेरी फर्नीचर और किताबों के नुकसान की अनुमानित धनराशि दस हजार रुपये लिखवायी, जबकि असलियत में कितना नुकसान हुआ था, यह लाइब्रेरियन प्रिंसिपल, और दो-एक विभागाध्यक्षों को छोड़कर कोई नहीं जानता था. हां, टूटी-फूटी सामग्री को अगर कोई ध्यान से देखता, तो उसे लगता, दस-बीस कुर्सियों और चंद पुरानी जिल्द वाली किताबों के अलावा वहां कुछ नहीं है. लेकिन प्रिंसिपल भी मूर्ख नहीं थे. उन्होंने तमाम रद्दी कागजों को जलवाकर मलवा इकट्ठा करा लिया था, जिसे वे पुस्तकों का मलवा कहते थे.

और लाइब्रेरियन तथा दो-एक विभागाध्यक्ष कहते थे, इसी तरह के पारसनाथ हर साल यूनियन के सेक्रेटरी हों, ताकि गायब और न खरीदी गयी पुस्तकों, फर्नीचरों तथा अन्य सामानों को आसानी से तोड़-फोड़ और आगजनी में दिखाकर फुर्सत पा लें, और कमा लें इधर-उधर से एक निश्चित रकम! □□□

१२८।३१७, 'के', किदवई नगर, कानपुर–११

तीन लघु कथाएं

निबटारा • माधुरी शाह

स्वास्थ्य-लाभ के लिए चित्रगुप्तजी छुट्टी पर गये थे. लंबी छुट्टी से स्वास्थ्य प्राप्त कर वह वापस लौटे. उनकी अनुपस्थिति में कर्मचारियों की लापरवाही के कारण सारा कार्य पेंडिंग में पड़ा हुआ था. करीब ६० करोड़ केस उनके सामने उपस्थित किये गये. इतने अधिक केस देख कर वह परेशान हो गये और उन्होंने बिना जांच-पडताल के ९० प्रतिशत व्यक्तियों को सदेह नर्क जाने की और १० प्रतिशत व्यक्तियों को सदेह स्वर्ग जाने की आज्ञा दे दी.

उन सबको भारत भेज दिया गया. □□□

समझदार भेड़िये

• रमेशबहादुर पोद्दार

एक राजनीतिक दल की ओर से एक सभा का आयोजन था. सामने दूसरे दल का मंच तैयार हो गया. तू-तू मैं-मैं, शुरू हो गयी. 'दल' के नेता दूसरे दल के 'नेता' से बोले– तुम भेड़िये हो, जनता के भक्षक!

दूसरे दल का नेता बोला – हम जो हैं, उजागर हैं, पर तुम भेड़ रूपी जनता में, भेड़िये होते हुए भी, भेड़ का मुखौटा लगाकर, भेड़ की जमात को, ऐसे भूल-भुलैया सब्जबाग का स्वप्न दिखा रहे हो जिसका कोई ओर-छोर नहीं. . , और तुम पर विश्वास करने वाली भेड़ जमात तुम्हारे पीछे है.

दल के नेता के मुंह हठात् निकला–हम समझदार भेड़िये हैं.' □□□

चर्चा

• मनीषराय यादव

दो प्रशासकीय अधिकारी बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों का मुआयना करने निकले हुए थे. दोनों को बड़ा भ्रम था कि वे बड़े विनोदी स्वभाव के हैं. दोनों में बड़ी गंभीर चर्चा चल रही थी. मुख्य विषय यह था कि बाढ़ का अतिरंजित रूप कैसे प्रस्तुत किया जाये और स्थानीय अखबारों में उनके भ्रमण की चर्चा कैसे छपे. चर्चा जब अपनी चरम सीमा पर थी, तभी सड़क के बीचों बीच दो गधे आवाज निकालते हुए आकर खड़े हो गए. ड्राइवर ने जोरों से हार्न बजाया पर जब वे नहीं हटे तो नीचे उतर कर हटाना पड़ा.

जब ड्राइवर गधों को हटाकर लौटा तो एक अधिकारी ने बड़े विनोद से पूछा–क्यों भाई, गधे सड़क के बीचो-बीच क्या कर रहे थे?

—सर, बाढ़ की समस्या पर गंभीर चर्चा कर रहे थे. ड्राइवर ने विनम्रता पूर्वक कहा.

इसके बाद दोनों अधिकारी यात्रा के अंत तक कुछ नहीं बोले. □□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक चालू आदमी • दिनेश पालीवाल

रमदीना अपनी जली हुई दूकान के सामने वाली पटिया पर चित्त पड़ा था. गुनगुनी धूप का सेंक उसे इस वक्त काफी अच्छा लग रहा था वर्ना सारी रात सिकुड़ते ही कटी थी. आज उसे किसी तरह की जल्दी नहीं थी वर्ना रोज उसे तड़के उठ कर भट्टी सुलगा देनी पड़ती थी. भट्टी का कड़वा धुआं वहां सारी सड़क पर फैल जाता था. उसी समय आ जाती थी सड़क झाड़ने वाली महतरानी. धूल और धुआं. . .सड़क से गुजरने वाले पेशल लोग या तो जल्दी-जल्दी, तेज कदमों गुजर जाते थे, या फिर जेबों के रूमाल नाकों पर रख लिया करते थे. . .कोई रमदीना से पूछे कितनी धूल नहीं फांकी है उसने? और कितना धुआं नहीं निगला है?. . .लेकिन रमदीना से कौन पूछेगा? किसे पड़ी है?

रमदीना न जाने क्यों. . .कल से लगातार एक ही बात सोचे जा रहा है. . . .एक ही बात के इर्द-गिर्द या एक ही बात के तमाम पहलू. कल से पहले उसे कभी फुर्सत ही नहीं मिली कि वह किसी बात को कभी बैठ कर सोचता. सोचने से उस जैसे आदमी का भला क्या वास्ता? लेकिन कल से उसे फुर्सत ही फुर्सत हो गयी है. सामने उसकी दूकान जली हुई पड़ी है. उसी की क्या, सामने की सारी दूकानें कल भीड़ ने फूंक दी थीं. पहले पत्थरबाजी हुई थी, फिर भीड़ ने आग लगा दी थी. पुलिस जब तक दमकलों के साथ आयी, आसपास की सारी दूकानें भस्म हो गयी थीं.

रमदीना को तब से फुर्सत ही फुर्सत है. . .कुछ भी सोचे और कुछ भी करे. कल से ही उसके दिमाग में लगातार एक ही बात घूमे जा रही है. . .पूरी दुनिया दो हिस्सों में बंटी हुई है. . . दुनिया. . .रमदीना की अपनी अलग दुनिया है. . .वह, जो उसने अपने चालीस सालों में देखी और समझी है. . .वह दुनिया जिसमें उसने इन चालीस सालों में तमाम ऊंच-नीच, अच्छा-बुरा, न्याय-अन्याय, जोर-जुलम सहा और भुगता है. दुनिया इसके अलावा भी बहुत बड़ी है, उसके बारे में रमदीना नहीं जानता. यह पूरी दुनिया दो हिस्सों में बंटी हुई है. . .एक पेशल और एक चालू! . . . उसकी दूकान पर भी दो तरह की चाय बनती थी, एक पेशल और एक चालू! . . .पेशल चाय पेशल लोगों के लिए और चालू. . .चालू लोगों के लिए. यह दुनिया दरअसल दो हिस्सों में बंटी हुई है, यह बात रमदीना की समझ में कल से ही पूरी तरह आयी है. . . पेशल चाय में दूध ज्यादा पड़ता था. चाय कड़क बनती थी और साथ ही इलायची के कुछ दाने डाले जाते थे. महकती हुई चाय पेशल लोग पी कर प्रसन्न हो जाते थे. और चालू चाय. . .हर वक्त केटली में खौलने वाली काढ़ा-नुमा होती थी जिसमें दूध डाला नहीं, सिर्फ दिखाया जाता था. चालू लोग उसे भी चाय ही मानते थे और चाय ही समझ कर चुस्कियों के साथ पी जाते थे. पेशल पीने वाले तो कभी-कभार शिकायत भी कर दें, लेकिन चालू पीने वालों ने कभी शिकायत नहीं की. अगर हो भी तो उनकी शिकायत सुनता कौन है. . .? सुने भी तो मानता कौन है. . .? माने भी तो . . .? इसलिए चालू लोग चुप रहते हैं और जहर हो या अमृत, चुपचाप गले उतार कर उठ जाते हैं.

सारी रात न जाने वह कहां-कहां भटका है, कहां-कहां अटका है और फिर सिकुड़ कर अपने भीतर की दुनिया में कैद हो-हो गया है. . .स्कूलों में जाने वाले बच्चे भी तो दुनिया के हैं, एक पेशल. . . जो रिक्शों, स्कूल की बसों या 'पराईवेट' गाड़ियों में टाई और प्रैस किये हुए लक-दक कपड़े पहन कर चिकने-चुपड़े, चमकते हुए मासूम चेहरों के साथ जाया करते हैं और दूसरे चालू. . .जो साबुत या फटे-पुराने कपड़ों में अंटे, मैले-कुचैले, गंदे, रूखे-सूखे बालों और चेहरों वाले. . .अपने मामूली-से बस्ते अपने कंधों पर लटके झोलों में रखे, नंगे पैरों जलती हुई सड़क पर दौड़े चले जाते हैं. . . पेशल बच्चों के चेहरों पर किसी भी प्रकार का न तनाव होता है, न चिंता की शिकनें. और चालू बच्चों के चेहरे किस कदर ऐंठे और सिकुड़े हुए होते हैं. . .लगता है, यह बच्चों के चेहरे नहीं हैं, बूढ़े और गृहस्ती के बोझ से दबे-टूटे आदमियों के चेहरे हैं. पेशल बच्चों में से एक रिक्शेवाला एक बच्चे को ले कर कहीं गायब हो गया था तो पूरे शहर में तहलका मच गया था. सारी पुलिस उसे खोजने के लिए भर्राई घूमती रही थी और चालू बच्चों में से एक बार एक कार के नीचे दब कर सड़क पर चिपक गया था. . .तो पुलिस ने कार वाले से जवाब-तलब तक नहीं किया था. पूरी दुनिया किस कदर दो दुनियाओं में बंटी हुई है. . .एक चालू और दूसरी पेशल.

औरतें भी दो दुनियाओं में बंटी हुई हैं. . . .एक पेशल और एक चालू! अमूमन पेशल औरतों के चेहरे कितने सौम्य, शांत, मुस्कराते हुए, तनावहीन, गोरे, चहकते हुए, चमकते-दमकते हुए, प्यारे-प्यारे,. . .मानों जरा छू दिया तो खून चुचिया पड़ेगा. . चालू औरतों के चेहरे. . .? चुसे हुए गन्ने की गंडेरी जैसे. . .फोक, थोथे, झुर्रियों और चिंताओं की रेखाओं से घिरे-उलझे हुए, रूखे-सूखे मुरझाए, पीले, रक्तहीन और बेजान! पेशल औरतों के मह-मह महकते हुए बदन और सरसराते हुए वस्त्र . और चालू औरतों के पसीने, धूल-मिट्टी से अंटे, चीकट और बदबू देते फटे पुराने वस्त्र! पेशल लड़कियों और औरतों के करीने से कटे बॉब हेयर या कंधों पर बिखरी हुई खुली लटें. . .और चालू औरतों के रूखे, उलझे, चिड़ियों के घोंसलों से झुंड! . . .वही हालत पेशल आदमियों और चालू आदमियों की.

कल से. . .जब से इस दुनिया का बंटवारा उसकी समझ में आया है, उसे साफ-साफ लगने लगा है कि सब बेकार है, या सब बेकार था, या सब बेकार रहेगा. पेशल दुनिया चालू दुनिया का खून चूस कर जी रही है, जी रही थी, जीती रहेगी. न कुछ किया जा

● सुरेश एन. शर्मा

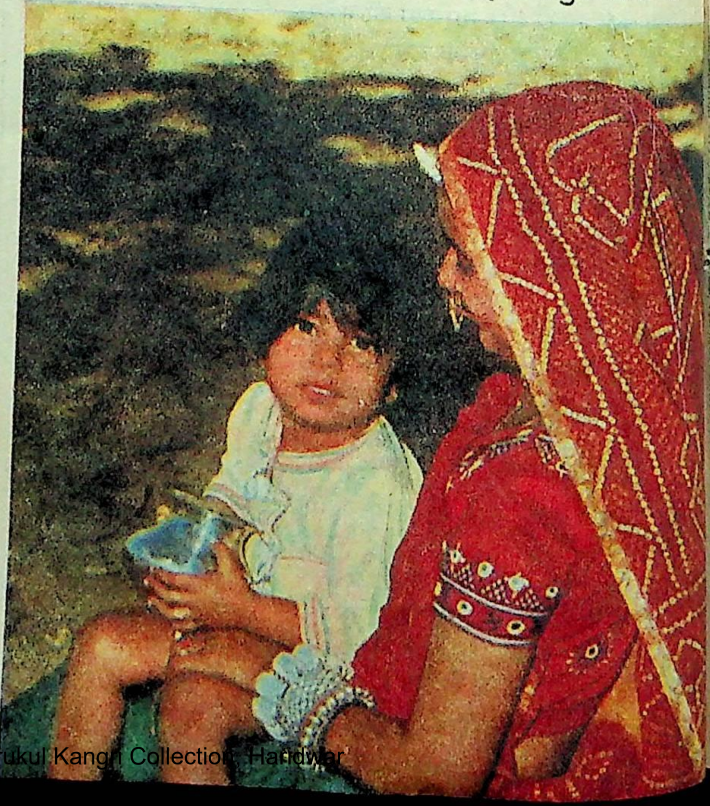

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

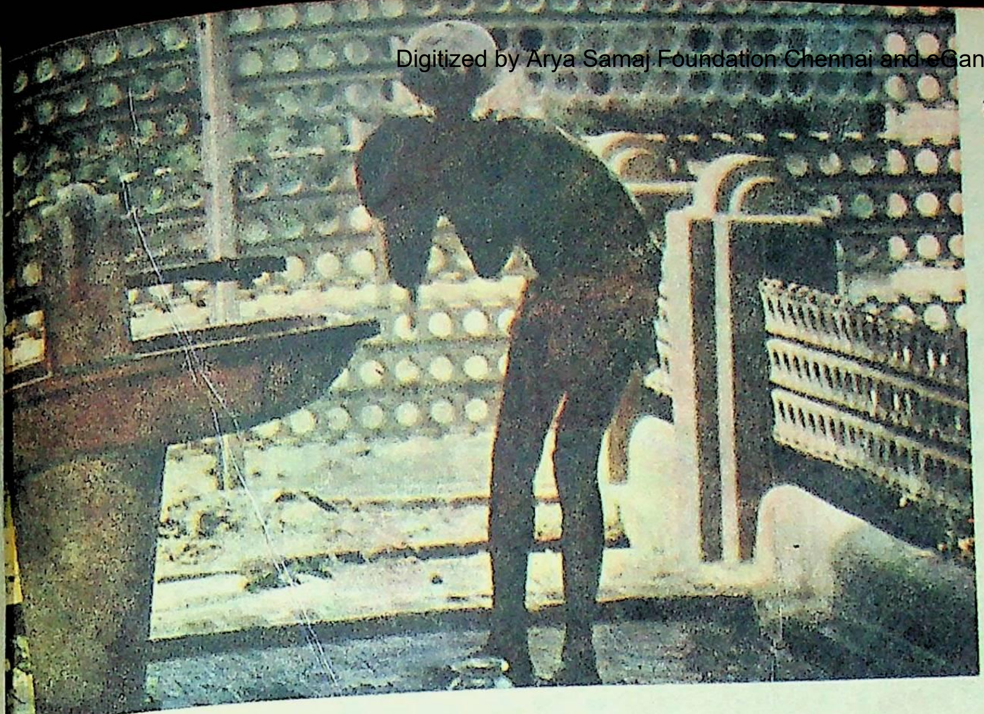

● एल. जे. उपाध्याय

ठाकुर. रामजी मिसुर, दीनानाथ वैश्य. लेकिन जगुआ धोबी और अपुआं थबई, मूरे बढ़ई अपने कामों से क्यों जाने जाते थे? यह उसकी छोटी समझ में तब नहीं आया था. अब. . .आज समझ में आ रहा है. . . यह सब भी इन्हीं दो दुनियाओं का रहस्य है.

बाप कभी थबई का काम करता था. ठेके पर इंटें थापता था. तभी से उसका नाम हो गया था अपुआं थबई. लेकिन ईंटें थापने से घर का काम न चलता था. किल्लत हर वक्त बनी रहती थी. तब वह और मां दोनों ही ठाकुर, मिसुर और वैश्यजी के खेतों पर जा-जा कर काम करने लगे थे. और ठाकुर, मिसुर और वैश्यजी के लड़के-बाले. . .वे पट्टी-बोदका ले कर स्कूलों में पढ़ने जाते थे.

सकता है, न कुछ किया जा पाया है, न कुछ किया जा पाएगा. यह नेता या अफसर जो इन दोनों दुनियाओं का अंतर खत्म करने की बातें करते रहते हैं, यह वास्तव में चालू दुनिया से अपने आपको निकाल कर पेशल दुनिया में ले जाने का ही स्वांग कर रहे हैं. यह सारी नारेबाजी, सारे आंदोलन, सारी भागदौड़ इस दुनिया से उस दुनिया में शामिल हो जाने के लिए की जा रही है. उन्हें सिर्फ अपनी परवाह या चिंता है, चालू जनता की न किसी को परवाह है, न चिंता. सब पेशलों की माया है और उन्हीं की माया में सब रमे हुए हैं या उन्हीं के इर्द-गिर्द घूम रहे हैं. कानून भी, पुलिस भी, अफसर भी, नेता भी, संविधान भी, सरकार भी, धन भी, देश भी, विदेश भी. कोई भी तो नहीं जो रमदीना जैसे चालू आदमियों के इर्द-गिर्द घूम रहा हो.

रमदीना की दूकान जल गयी है. लेकिन किसी ने आ कर पूछा तक नहीं कि कितना नुकसान हुआ? किस-किस की रोजी-रोटी गयी? और उस दिन बिजली के तारों की गड़बड़ी के कारण सेठ राम-रतनजी की कोठी के एक हिस्से में जरा-सी आग लग गयी तो सारा शहर उनकी कोठी की आग बुझाने दौड़ पड़ा और दमकलों की लाइन लग गयी. बीमा कंपनी ने फौरन कोठी का हर्जाना दिया और अखबारों में बड़े-बड़े अक्षरों में छपा कि सेठ का लाखों का नुकसान हो गया था. कितना अंतर है, पेशल और चालू दुनिया में!

रमदीना रोज अपनी बगल वाली राशन की दूकान के सामने लगी कुंजड़ियों की भीड़ देखता रहा है. उनकी लड़ाइयों, चखचखों, झगड़ों-झंझटों, मारपीटों, और राशन पहले ले जाने की कोशिशों को अपनी आंखों रोज देखता रहा है. बगल से गुजरते पेशल लोगों की कारें, मोटरें और उनमें बैठी हुई संगमरमरी औरतें और ड्राइव करते साहब. और पीछे की सीट पर बैठे हुए झबरा वालों वाले कुत्तों की झबरा पूंछें. . .कार की खिड़की से बाहर की हवा में लहराती हुई. . .रमदीना सोचे जा रहा था. गुनगुनी धूप उसे आज बहुत सुहा रही थी और वह इन दो दुनियाओं का अंतर भली प्रकार समझता जा रहा था.

★ ★

आज अचानक ही याद आया रमदीना को. . .रमदीना अपुआं थबई का लड़का है. नहीं गलती हो गयी, अपुआं थबई का लड़का था. वह यह कभी नहीं जान पाया कि उसका बाप थबई क्यों कहलाता है. सारे गांव के लोग अपनी जाति से जाने जाते थे. भरोसे

अपुआं थबई ने गलती की थी. . .उसे भी स्कूल भेजना चाहा था. फीस नहीं लगती थी. स्कूल सरकारी था. पर. . .नंगी क्या नहाए, क्या निचोड़े? अपुआं थबई यानी बाप बीमार पड़ गया. मां कूट-पीस कर किसी न किसी पेड़-पौधे की पत्ती या छाल छान-औटा कर बाप को पिलाती रही. और बाप. . .खाट में लगा-लगा सूखता चला गया. गांव में भरोसे ठाकुर की पली हुई बिल्ली मरी तो पूरे गांव में मातम मनाया गया. बाकायदा अर्थी सजा कर श्मशान की तरफ शवयात्रा ले जायी गयी और रमदीना का बाप सूख-सूख कर किसी बीमारी से मर गया तो मां घर-घर जा कर रोती फिरी कि कोई उसके आदमी को कंधा दे दे, तो उसे मुर्दघटा ले जाए.

अपुआं उसका बाप था. . .बीमार पड़ा तो स्कूल जाना छूट गया. मर गया तो उसका गांव भी छूट गया. मूरे बढ़ई का लड़का सोना, चौपिया का लड़का किसना और अपुआं का लड़का वह. . .यानी रमदीना. . .इन तीनों की तीनों की पक्की दोस्ती थी.

सोना का मन अपने बाप की बढ़ईगीरी की दूकान में नहीं लगता था. काम बहुत और दाम बहुत कम मिलते थे. सोना दिन भर बाप की गालियां सहता और लातें खाता था, चौपिया अपने लड़के किसना को ढोर-डंगरों के साथ हाट में ले जाता था. किसना ढोर-डंगरों को चराया करता और बाप किसी दूसरे चौ[illegible] के साथ जुआ खेलता या ठर्रा या ताड़ी पिया करता. संझा होते जब दोनों ढोर-डंगरों के साथ घर लौटते तो चौपिया के पांव ताड़ी के असर से लड़खड़ाते होते और किसना चुपचाप पशुओं को हांकता रहता. मढ़ैया में आने पर चौपिया किसना की मां को मारना शुरू कर देता. मां चौपिया को गाली देती जाती और मार से चीख-चीख कर सारी मढ़ैया को सिर पर उठाती रहती. मौका मिल जाता तो रमदीना, किसना और सोना तीनों 'बच्चा छाप' बीड़ी एक-दो पैसे की ले आते और किसी न किसी खेत की मेंड़ पर ओट में बैठ कर अपने-अपने बापों की तरह उन्हें सुलगाते और उनका धुआं भीतर सूंतते और अगर खांसी का ठसा न लगता तो नाक में से धुआं निकाल कर खुश होते थे.

उस दिन सोना ने ऐसे ही वक्त पर कहा था—रजऊआ को जानते हो? वह दोनों चकराये थे. . .रजऊआ. . .? वह कौन है! तभी किसना बोला था—राजाराम.

—हां वही! सोना ने कहा था, फौज में भर्ती हो कर राजा-राम बन गया है वर्ना पहले गांववाले उसे रजऊआ कहा करते थे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

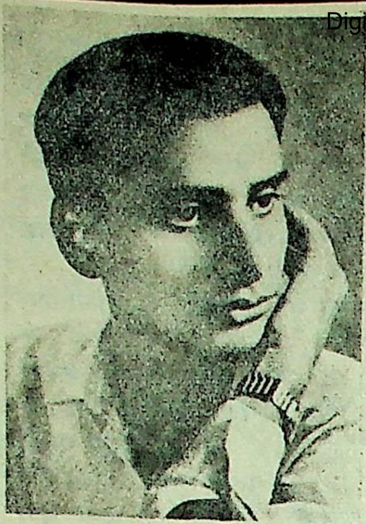

दिनेश पालीवाल : पिछले तीन-चार वर्षों से कहानी-लेखन के क्षेत्र में क्रियाशील हैं. आम आदमी की जिंदगी को इन्होंने करीब से देखने-परखने का यत्न किया है अतएव वही इनकी कहानी का प्रमुख पात्र हुआ करता है.

रजऊआ फौज के हालचाल सुना रहा था. बड़ा मजा आता है. हर आदमी को भर पेट खाना मिलता है, दोनों वक्त! 'नासता' अलग से. पीने को ठर्रा से भी बढ़िया चीज. कपड़े और तनखा ऊपर से. मजे ही मजे हैं. बीड़ी का बंडल मुफ्त मिलता है. चाहे जितनी पिओ.

—लेकिन सुनते हैं, आजकल अंगरेजों की लड़ाई और देशों से चल रही है. . .उसमें हमारे फौजी जवान जा रहे हैं और मारे जाते हैं, किसना ने कहा था.

—मरना तो एक दिन सबको है. सोना बोला था. उसके स्वर में लापरवाही थी. मरने की बात रमदीना को कुछ जमी नहीं थी. वैसे उसे फौजी नौकरी काफी लुभावनी लगी थी क्योंकि उस नौकरी में दोनों जून का खाना और तनखा मिलती थी. यहां, इस गांव में दोनों जून का खाना मिल जाना, उन दिनों बड़े नसीब की बात थी.

★ ★

वे तीनों दोस्त थे और तीनों के नसीब फूटे हुए थे. इस देश के नसीब की तरह. सोना, किसना और रमदीना. . .तीनों को अपने पुश्तैनी धंधे पसंद न थे लेकिन मजबूरी थी, और करें तो क्या करें? सोना ने फौज में भरती होने के सपने देखे तो एक दिन भरती के समय गांव से भाग गया. बाप ने मुंह भर गालियां दीं. . .स्साला हरामी! अच्छा रहा कहीं जा कर मरा तो. चौपिया किसना और अपुआ खबई का लड़का वह. . .दो ही रह गये. और दोनों परेशान. रात-दिन [illegible]ते थे, सोना अच्छा रहा, घर से भाग गया. अगर उन्हें भी कहीं कोई काम मिल जाए तो वे भी भाग जायें. घर में क्या रखा है? खूसट मां और चें-चें भाई-बहनें.

किसना बोला था—मालदार बनने का सबसे आसान तरीका जानता है, क्या है. . .!

रमदीना की आंखें चमक उठी थीं—क्या?

—कहीं से एक बंदूक मिल जाए तो डकैतियां डाली जाएं. धनवानों को लूटो और धनी हो जाओ.

—लेकिन उसमें तो बड़ा खतरा है. पुलिस पकड़ लेगी. सारी जिंदगी जेल में चक्की पीसते निकल जाएगी.

—क्या हो गया? जेल में भूखों तो नहीं मरेंगे. यहां तो यही डर खाए जाता है कि कल पता नहीं भर पेट रोटी मिलेगी या नहीं?

—और बदनामी होगी सो. . .? वह अचकचाया था.

लेकिन किसना हंसने लगा था—गरीब का नाम भी होता है! बदनामी ही होगी.

रमदीना की समझ में नहीं आया था. और किसना चौपिया चोर बन गया था. डाकू बनने के लिए बंदूक जरूरी थी. बंदूक का इंतजाम वह कर नहीं पाया तो चोरों से दोस्ती गांठ कर छोटी-मोटी चोरियां करने लगा. रमदीना को किसना का यह काम बुरा न लगता. लेकिन उसमें उसे कोई खास आकर्षण न दिखा क्योंकि चोरियों के बावजूद किसना धनी नहीं बन पाया, न ही खतरे से उबर पाया. वह हर समय परेशान रहता. बेचैनी घेरे रहती. कहीं पकड़ा न जाए. कहीं रंगे हाथों पकड़ गया तो गांव वाले लाठियों से मार डालेगें. . . .जोखिम हर वक्त बनी रहती.

रमदीना समझ नहीं पाता, वह करे तो क्या करे! फौज में भरती हो चुकने के एक साल बाद किसी छुट्टी में सोना आया था. . रमदीना उससे रोया-गाया. कहीं उसे भी हिल्ले से लगा दे. लेकिन सोना उसकी कोई मदद नहीं कर पाया था. हां, एक रास्ता सुझा दिया था. . .शहर भाग जा! वहां कोई काम मिल जाएगा. कुछ न मिले तो रिक्शा ही चलाने लगना.

और वह एक रात चुपके से अपना घर छोड़ कर भाग आया था. . .वह दिन और आज का दिन, रमदीना वापस कभी भी घर नहीं गया. उसे नहीं पता, उसकी मां मर गयी या जीती है. दूसरे भाई-बहन जीते हैं या मर गए. जीते हैं तो किस हाल में हैं. और मर गए तो किस हारी-बीमारी से.

शहर में आ कर रमदीना ने सब कुछ किया. बड़ी हसरत थी, किसी तरह अमीर बन जाए. बड़ी कोशिशें कीं. लेकिन अमीर यहां अमीर ही बन सकते हैं,यह उसकी समझ में अब आया. . .गरीब यहां जब-जब अमीर बनने की कोशिश करता है,वह और गरीब हो जाता है. . .जैसे उसकी दूकान का मालिक रातदिन अमीर बनने के लिए चालें और तरकीबें सोचता रहता था. . . .वह रमदीना को अपना नक्शा रात-दिन समझाता रहता था और वह समझता रहता था. लेकिन हुआ कुछ नहीं. बगल वाली राशन की दूकान पर लोगों की भीड़ थी. चीजें मिल नहीं रही थीं. भीड़ बढ़ती जा रही थी. लोगों को गुस्सा आ गया. पहले गाली-गलौज हुआ. फिर पत्थरबाजी हुई. बाद में गुस्सैल भीड़ ने आग लगा दी.

आग की लपटों में राशन की दूकान के अगल-बगल वाली सारी दूकानें भी जल कर भस्म हो गयीं. उनमें उसके मालिक की चाय की दूकान भी थी, जिसमें वह पिछले दसियों साल से पेशल और चालू चाय लोगों को प्यालों से बांट रहा था और उनके जूठे प्यालों को धो-धो कर रखता रहा था. मालिक की दूकान क्या जली, वह एकदम माथा पीट कर घर में जा बैठा. और वह दूकान के सामने पड़ी इस पत्थर की पटिया पर सदा की तरह ही लेटा रहा. . .पूरी दुनिया दो भागों में बंट गयी है. . .बंटी हुई थी. . .एक पेशल, दूसरी चालू.

भीड़ ने आग कल शाम को लगायी. पुलिस रात को आग बुझा गयी थी. आज सुबह पुलिस तहकीकात करने आयी हुई थी. . . आग कैसे लगी, किसने लगायी? किसी को पहचानते हो? पहचानते हो तो नाम बताओ. पुलिस उन्हें पकड़ेगी और सजा देगी.

रमदीना बोला—हमारे मालिक को चाय के इस होटल का हरजाना दिला दो जिससे हमारा मालिक फिर यह होटल जिंदा कर सके और मेरी रोजी-रोटी चल सके.

पुलिस वाले उसके गले पड़ गए— पहले आग लगाने वालों के नाम बताओ.

भीड़ का कोई नाम होता है, यह वह नहीं जानता. वह सिर्फ भीड़ थी जो गुस्सा थी, और जो पहले पत्थरबाजी पर उतर आयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी, फिर आगजनी पर. राशन की दूकान में हजारों का सामान जल गया था, वह सामान जो पेशल लोगों की सहायता से ऊपर ही ऊपर बिक जाया करता है. लेकिन कभी-कभी चालू लोगों के सब्र का समंदर भी सीमाएं तोड़ देता है, और राशनकार्डों के बदले पत्थर उठा लेता है या आग की चिनगारियां. पुलिस पूछती है कि आग लगाने वाले लोग कौन थे? उस भीड़ का क्या नाम बताए वह? रमदीना तो सिर्फ इतना जानता है कि वह भीड़ भूखों और नंगों की, चालू लोगों वाली भीड़ थी. उसमें कोई पेशल नहीं था. हां, भड़काने वाले जरूर पेशल लोग थे. . .जो किसी न किसी चुनावी 'पालटी' से टिकट ले कर चुनाव में खड़े हुए थे.

रमदीना को याद है. . .एक मोटर आ कर उस भीड़ के सामने रुकी थी. भीड़ ने उसमें से निकलने वाले कुर्त्ता-धोती को घेर लिया था. और वह कुर्त्ता-धोती बोल पड़ी थी—देखते क्या हो, यह पूरी सरकार भ्रष्ट हो गयी है. इस भ्रष्ट सरकार को नष्ट किये बिना कुछ नहीं हो सकता. अगर तुम लोग चाहते हो कि तुम्हें खाना मिले, राशन मिले, तेल और शक्कर मिले तो मेरी सुनो. . .इस पूरी सरकार को नष्ट करो. सब कुछ जला कर भस्म कर दो. न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी.

और भीड़ तुरंत बेकाबू हो गयी थी. उसी का परिणाम आगजनी थी. लेकिन पुलिस पूछ रही थी, आग किन लोगों ने लगायी? पुलिस जानती हुई भी आग लगाने वाले को क्यों नहीं पकड़ती, यह भी एक रहस्य है. पुलिस भी पेशल लोगों की ही रक्षा के लिए है. चालू लोगों को ही धमकाती है, गिरफ्तार करती है और जेलों में डालती है.

* *

उस आगजनी के बाद पूरे शहर में हवा बन गयी थी. . .इस बार के चुनाव में सरकारी 'पालटी' का आदमी जरूर चुनाव हार जाएगा. चालू लोग बहुत नाराज थे. मंहगाई, गरीबी, बेरोजगारी अन्याय और भ्रष्टाचार का दानव सीधे चालू लोगों की हड्डियां पेलता हुआ तेल निकाल रहा था. पेशल लोगों को इस सरकार के रहते फायदे ही फायदे थे. वे सब इस सरकार को जिताने की कोशिश कर रहे थे और चालू लोग हराने की.

चुनावों में उसकी कभी रुचि नहीं रही थी. वह जानता था, इनसे कुछ नहीं होगा. गलत लोगों द्वारा गलत लोग चुन लिये जाते हैं और गलत सरकार बन जाती है. वह गलत नियम और गलत व्यवस्था चलाती रहती है. उस गलत व्यवस्था में पेशल लोगों को ही लाभ होते रहते हैं और बहुत बड़ी चालू लोगों की आबादी उन पेशलों की मनमानी की शिकार होती रहती है. रमदीना भी उन्हीं का शिकार है, होता रहा है,होता रहेगा. . .लेकिन इस बार चालू लोग सरकार से बहुत नाराज थे. रमदीना को जाने क्यों यह विश्वास हो गया था कि पेशल लोगों की छोटी जमात हार जाएगी और चालू लोगों की बड़ी आबादी जीत जाएगी. लेकिन नतीजा कुछ और ही हुआ. पेशल लोग ही जीत गए और चालू लोगों की बड़ी संख्या जमानत तक न बचा पायी. . .उसको यह कतई समझ में नहीं आया कि रातोंरात हो क्या गया. आग लगाने वाली चालू जनता की भीड़ कैसे सरकारी आदमी को ही वोट दे आयी.

रमदीना सब कुछ समझ गया है. . .लेकिन समझ कर भी वह कर क्या सकता है. इस दैत्याकार व्यवस्था का वह अकेला कैसे बदल सकता है. . .कैसे भी तो नहीं. वह तो अपनी व्यवस्था नहीं बदल पाया, इस दैत्याकार व्यवस्था को क्या खा कर बदलेगा.

* *

रमदीना अपनी ठंडी पीठ को धूप की तरफ किये सेंक रहा था. सेंकने के साथ-साथ ही सोच भी रहा था कि दुनिया दो हिस्सों में बंटी हुई है.

उसी समय यकायक एक पुलिस की जीप भरभराती हुई आयी और उसकी पटिया के ऐन सामने आ कर रुक गयी. जीप में से एक अदद धोती-कुर्त्ता निकला. साथ ही कई वर्दीधारी और लट्ठधारी. अचानक ही एक लट्ठ उसकी पीठ पर आ कर पड़ा तो वह हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ. उसकी कुछ समझ में आए, उससे पहले दस-पांच लट्ठ और पड़ गए. वह घबराया—क्या कुसूर है, हुजूर. . .मालिक?

—हुजूर के बच्चे! जरा कोतवाली चल, तब पता चलेगा. गालियों के साथ लताड़.

खींच-घसीट कर कोतवाली ले जाया गया.

वहां भी कुसूर तो पता नहीं चला. . .अलबत्ता लट्ठ जरूर उस पर बजता रहा. रमदीना बौखलाया-घबराया हुआ चीखता-चिल्लाता रहा.

तभी कुर्त्ता-धोती ने रपट लिखाते हुए कहा—हां साब! यही वह आदमी है, जिसने भीड़ को भड़काया और राशन की दूकान में आग लगवायी. . .उस आग से आसपास की सारी दूकानें जल गयीं. लाखों का नुकसान हुआ! वह उस धोती-कुर्त्ता को पहचान गया था लेकिन पहचानने से क्या होता है. चालू लोगों की पहचान का इस पेशल लोगों वाली दुनिया में कोई अर्थ नहीं होता.

कुर्त्ता-धोती ने और भी कई रहस्य खोले. यह आदमी फलां गांव का है. . .इसका बाप अपुआं थबाई था. लेकिन रिक्शा चलाना मेहनती लोगों का काम है. यह मेहनत से हमेशा जी चुराता रहा था. वह काम इसे पसंद न आया इसलिए यहां भी इसने कई बार चोरियां कीं. जेबें काटी. भीड़ में गुजरती महिलाओं के जेवर छीने. . .यह अरसे से इस शहर में गुंडई करता रहा है. . .कहने के लिए इधर यह चाय की दूकान पर नौकरी करता था, लोगों को चाय दिया करता था और उनके जूठे प्याले धोया करता था लेकिन सच बात यह है कि यह बड़ा खतरनाक किस्म का आदमी है. . .यह व्यवस्था के खिलाफ है और व्यवस्था का अमन-चैन इसे पसंद नहीं है. उस दिन मैं राशन की दूकान के सामने लगी लाइन से वोट मांगने गया था. यह आदमी पास की चाय की दूकान पर चाय दे रहा था. मेरे सामने ही इसने लोगों को भड़काया था और दूकान में चीजें नहीं मिल रही थीं तो आग लगाने की सलाह दे रहा था.

अनगिनती लाठियों की मार से उसकी हड्डियां [illegible]री हो गयी थीं और मांस कई जगह से फूल-फूल गया था. क[illegible]ह नीलें उभर आयी थीं और कई जगह खून झलक आया था. धोती-कुर्त्ता का बयान लिख लिया गया था. यही रपट थी. धोती-कुर्त्ता कार में बैठ कर चला गया था और उसे. . .यानी चालू आदमी रमदीना को हवालात में बंद कर दिया गया था.

वह एक खतरनाक आदमी था क्योंकि उसकी समझ में आ गया था दुनिया दो हिस्सों में बंटी हुई है. एक पेशल और दूसरी चालू. पेशलों की पेशेलिटी तभी तक चलती रह सकती है, जब तक चालुओं की समझ में यह रहस्य न आए. अगर चालू यह रहस्य समझ जायेंगे तो पेशलों की पेशिलिटी खत्म हो जाएगी. इसलिए जरूरी है कि ऐसे खतरनाक डाकुओं को उम्र-कैद करके रखा जाए. □□□

राधाकृष्ण भवन,
न्यू कालोनी, इटावा, (उ. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि • प्रभातकुमार त्रिपाठी

बहुत छोटी-सी बात थी. और अगर अभी भी वह किसी गुबरैले कोड़े की तरह भनभना रही है, तो इसका जिम्मेदार कोई नहीं है. ऐसा सोच कर भी मैं उस बात को स्थगित नहीं कर सका. वह वहीं थी. कितनी भारी जीवित-शक्लों को उभारती हुई . . .

बिल्कुल बगल में पत्नी थी और उसके बाद थोड़ा हट कर छोटा भाई. वह फर्श पर कंथरी बिछा कर नींद में गाफिल था. बरामदेनुमा इस कमरे का एकांत स्वामित्व, हमारे दांपत्य के क्रमशः प्राचीन होते जाने की वजह से हमसे छिन गया था, इसकी दूसरी वजह मकान की तुलना में परिवार की बढ़ी हुई जनसंख्या थी. मेरे बाद एक छोटी बहन, दो छोटे भाई और हैं. माता-पिता और दादी भी. कुल तीन कमरों के मकान में यहएक बरामदा है, जो पीछे की तरफ खुलता है. पीछे की तरफ आंगन है. यह अच्छा है. हमेशा गरम रहने वाले इस इलाके में, लकड़ी की जाफरी से घिरा यह बरामदा, मुझे जब शादी के बाद पहली बार मिला था, तो पत्नी खुश हुई थी. मुझे तब पहली बार लगा था कि मकान में अपने लिए किसी अलग कमरे का होना कितनी अच्छी बात हो सकती है. लेकिन धीरे-धीरे मैं भूल गया कि इस अच्छी बात को याद करता रहूं. अब कभी छोटी बहन, तो कभी छोटा भाई यह याद नहीं करने देते कि बैंगन और मिर्ची के पौधों,अमरूद के दरख्त के पत्तों से छन कर आने वाली हवा को अंकोरने वाले इस बरामदे में मैंने कुछ निजी दिन जिये हैं और बिना यह सोचे, कि मैं गधा हूं, या कुत्ता हूं, या सुअर हूं, मैं मग्न रहा हूं.

आज भी यह बात याद नहीं आती. थकान और स्मरण के संग्राम में आज भी थकान जीतती और मुझे अपनी गोद में मेमने की तरह सुला लेती लेकिन वह बात हो गयी. और अब किसी गुबरैले कीड़े की तरह मेरी सुअर नींद से टकरा रही है.

मैं बहुत थका हुआ था. दोपहर का खाना भी मैंने नहीं खाया था. रात दस बजे लौटा, तो आंतें कुलबुला रही थीं. पत्नी नींद में डूबी हुई थी. बरामदे में टिम टिम तारे वाले अंदाज में जल रहे बल्ब की पीली रोशनी में मैंने उसके चेहरे की ओर देखा. थकान की मार के निशान उसके सुते हुए चेहरे में देखे जा सकते थे. उसके कपड़ों से हल्दी और पिसी मिर्च के साथ, पसीने की बदबू भी आ रही थी और जिसे सूंघ कर मैंने अचानक मौसम के बारे में सोचा था. यह मार्च की शुरुआत थी और थोड़े दिनों में लू और सनस्ट्रोक वाली ग्रीष्म-ऋतु का आगमन संभावित था.

मुझे दिन भर की भूख थी. कचहरी केंटीन के गरम पकौड़े पेट के किसी कोने में दफ्न हो चुके थे. भूख की याद से भूख तेज हो गयी. पत्नी को सोती देख कर गुस्सा लगा. भूख और तेज हुई. स्टूल पर गिलट का डिब्बा रखा था,जिसमें मेरा खाना और पत्नी का पातिव्रत्य एक साथ मौजूद थे.

मैं खाट पर बैठे-बैठे सारा डिब्बा खाली कर गया. मटके से पानी निकाल कर पीने के बाद लगा कि फिर एक सुबह बिना बुलाये अभी इसी क्षण आ जायेगी. तभी वह करिश्मा हुआ. पत्नी की तरफ करवट लेने पर मैंने देखा कि बालों का एक गुच्छा उसके कपोल पर आ गया है और अच्छा लग रहा है. यही वह बरामदा है, जहां अच्छा लगने वाले जुमले का शरीर-संस्करण मैंने पढ़ा था. वह अनुभव चंद्रकांता संतति के कई संस्करणों का योगफल था. एक धुंधली-सी याद ने, एक गैरजरूरी याद ने मुझे थोड़ा आगे धकेला. मैंने पत्नी के ओठ चूम लिये. यह मेरा अधिकार था. और/बल्कि कई बार यह मेरी जिम्मेदारी थी, लेकिन इस वक्त यह मेरा खेल था. बचपन के खेलों जैसा एक अभिप्रायहीन खेल. चूमने पर भी पत्नी की नहीं खुली. मेरा खेल थोड़ा आगे बढ़ा और मैं उसके ब्लाउज हाथ फेरने लगा. रूखे बालों का वह गुच्छा वहीं था और उस अच्छा लगना मुझे बाहर-भीतर से हिला रहा था.

तभी वह बात हो गयी. पत्नी की नींद खुली. उसकी आंखों भाषा में ही इतनी लाल आग थी कि उसे जुबान खोलने की जरू नहीं थी. लेकिन उसके पास भी इस चीज के उपयोग के लिए उ जगह का नितांत अभाव था.

——जानवर हो गये हो क्या? देखते नहीं नरेश सोया है.

मैं चुपचाप अलग हो गया. पत्नी दूसरी ओर मुंह फेर कर गयी. थोड़ी देर बाद फिर पलटी. मेरा उलटना-पलटना देख उसे लगा, शायद गुस्से की वजह से मुझे नींद नहीं आ रही है. उस आहिस्ते से पूछा —— नींद नहीं आ रही?

मैंने कुछ नहीं कहा.

——नाराज हो गये क्या? उसने दुबारा पूछा.

मैं चुप था. पत्नी को यह समझाना कितना कठिन था कि गुस्सा नहीं हूं. मैं न दुखी हूं, न क्रोधित. और अब उसकी बात, उस बात कहां रह गयी है? कितने सारे गुबरैले कीड़े हैं. . .और मैं सो रहा हूं.

दो मिनट सोच कर ही मुझे लगा कि पत्नी जानवर शब्द के जगह, खास शब्द का उपयोग करना चाहती होगी. वह खास शब्द कुत्ता है. और कुत्ता सोचते ही मुझे मिसेज सिन्हा की याद आयी और कचहरी की और कीचड़ तालाब की और बाबूजी की— यानी कुल मिला कर मैं सुबह के इलाके में पहुंच गया.यह बीती हुई सुबह की बातें हैं, लेकिन आने वाली सुबह की भी हो सकती हैं. . .

★ ★

सुबह छह बजे उठना मेरी आदत नहीं मजबूरी है. मैं ही नहीं, सारा परिवार छह बजे पूरी तरह जागृत हो जाता है और ठीक सात बजे सबके सब कर्मलीन हो जाते हैं. पत्नी और मां रसोई घर में, छोटी बहन मुहल्ले के नल में और छोटे भाई अपनी किताबों में डूब जाते हैं. सुबह की यह शुरुआत हमारे चरित्र को जड़ता और आलस्य जैसे मध्यवर्गीय दुर्गुणों से बचाये है.

मैं उठा. चाय पीने के बाद, अपने पहले ट्यूशन की तैयारी में अपने बरामदेनुमा कमरे में कपड़े पहन रहा था कि सरला (मेरी पत्नी) आयी.

अमूमन पत्नी से मेरी मुलाकात रात को होती है. और वह भी महीने में दो-तीन बार, क्योंकि मेरे दूसरे ट्यूशन के खत्म होने के पहले, वह दूसरी सुबह के लिए तैयार हो रही होती है, यानी सो चुकी होती है. पत्नी कारण सहित कमरे में आयी थी. रसोई घर के धुएं की मार से उसका सद्यःस्नात रूप बिखर चुका था.

——जाने के पहले बाबूजी से मिल कर जाना. पत्नी ने कहा. मैंने सिर उठा कर पत्नी के चेहरे को गौर से देखा. वहां उसके ससुर का इरादा नहीं लिखा था. फिर मैं कमीज के बटन लगाने लगा.

सरला दुबारा बोली —— मेरे दोनों लहंगे बिलकुल तार-तार हो गये हैं, आते वक्त लहंगे का कपड़ा लेते आना.

जिस इच्छाहीन स्वर में उसने यह मांग की थी, उतने ही अनुत्साह से मैंने पूछा —— कितना कपड़ा?

और उसके कुछ कहने के पहले पल भर को लगा था— क्या हो गया है हमारी भाषा को? हम आदमी हैं या किराने की दुकान का बही-खाता?

पत्नी की फर्माइश के ऐन बाद मैंने सोचा था, साहू के तीस रुपयों में से कुछ नहीं तो बारह तो निकल गये —बाकी बचे अठारह— अब इतने में पानवाले का और ऑफिस केंटीन का पिछला कर्ज चुकाऊंगा या महीने भर का खर्च चलाऊंगा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं म्युनिसिपैलटी के दफ्तर में नौकर हूं.
कुल दो सौ दस रुपये मिलते हैं. सुबह और
शाम के ट्यूशन से साठ रुपये और. बाबूजी
सिविल कोर्ट की नौकरी से रिटायर हो चुके हैं
और अब कोआपरेटिव की एक दुकान में पार्ट
टाइम काम करते हैं. रिटायर होने के ऐन
पहले न सिर्फ उन्होंने मुझे बी. ए. पास
करा दिया था, बल्कि सरकारी वकील
सिन्हा साहब से कह कर म्युनिसिपल स्कूल
के मिडिल सेक्शन में नौकरी भी दिला दी थी.
दो साल पहले जब मिडिल सेक्शन सरकार
के हाथ में चला गया तो उन्होंने यह कह
कर मुझे म्युनिसिपल दफ्तर के स्वास्थ्य विभाग
में क्लर्की दिला दी थी कि सरकारी नौकरी
में हर मिनट ट्रांसफर का खतरा है, कहां-
कहां भटकते फिरोगे? हाईस्कूल तो कमेटी
के हाथ में ही है, अपने सिन्हा साहब हैं ही
(मिसेज सिन्हा पिछले तीन चुनावों से म्युनि-
सिपैलटी की चेयरमेन (वुमेन) हैं) भगवान
ने चाहा तो हाईस्कूल के लेक्चरर ग्रेड तक
पहुंच ही जाओगे. मुझे पता था कि बाबूजी
को मेरे दर-दर भटकने की फिक्र क्यों
हुई थी. तब बाबूजी वास्तविक रिटायर्ड आदमी लगे थे
और तब ऐसा भी लगा था कि को-आपरेटिव की जिस
दुकान पर बाबूजी सेल्समेन हैं, वह अगर उनकी खुद की
होती तो वे बिजनेस में कितने सफल होते. और तब यह भी लगा
था कि मेरे और बाबूजी के बीच भी बिजनेस है. रिटायर्ड बाप और
कमाऊ पूत के बीच संपर्क की एक मोटी रस्सी अर्थशास्त्र की होती
है और जगन्नाथ का रथ इसी रस्सी से खींचा जाता है. सोच-विचार
का रथ तो शादी के बाद रुक गया. उसके चक्के एक वृत्त में चक्कर
लगाते रहे. आज उस चक्कर की कौन सौवीं वर्षगांठ है —— यह
याद किये बगैर मैं बाबूजी के कमरे में दाखिल हुआ.
को-आपरेटिव की दुकान में जाने से पहले वह अपनी फटी
धोती सी रहे थे. उनके हाथ में सिलाई करने का फ्रेम था. धोती का
फटा हिस्सा उसमें फंसा था. वह अपनी दैनिक प्रार्थना में तन्मय थे.
—बैठो, उन्होंने सिर बिना उठाये ही कहा.
उनकी कुर्सी के सामने के लंबे बेंच पर मैं बैठ गया. बाबूजी की
टेबल - घड़ी में सात बजने को दस मिनट थे. मेरे पास दस मिनट का
बिलकुल निजी वक्त था और बाबूजी उसे चाट लेने पर तुले थे. क्या
मैं बाबूजी का जरखरीद गुलाम हूं, सोच कर मैंने उनकी तरफ देखा.
—तुम्हारी कितने दिन की छुट्टी बची है? उन्होंने ध्यान
तोड़े बगैर प्रश्न किया.
—दस दिन की.
—तुम आज की छुट्टी ले लो, अब की बार उनका चेहरा
दिखा. चेचक के दागों वाला सांवला चेहरा बुढ़ापे की वजह से डरा-
वना-सा लग रहा था— तुम जरा सिविल कोर्ट चले जाओ. उसके
पहले वकील साहब के यहां हो आना. वह कोई चिठ्ठी देंगे. बाबूजी
रुके. उन्होंने मेरी तरफ देखा. वह मेरे चेहरे का भाव पढ़ना चाहते
थे. क्या वहां कुछ है? मैंने सोचा.
—सिन्हा साहब कह रहे थे कि तुम उनकी बच्ची की अंग्रेजी
थोड़ा देख लेते तो अच्छा रहता, बी. ए. में तुम्हारी अंग्रेजी थी न?
बाबूजी ने पूछा.
—हां, मैंने कहा. सिन्हा साहब की बच्ची की अंग्रेजी क्या मुझे
बेगारी में देखनी होगी, जैसी एक शंका मेरे दिमाग में घुसने को थी

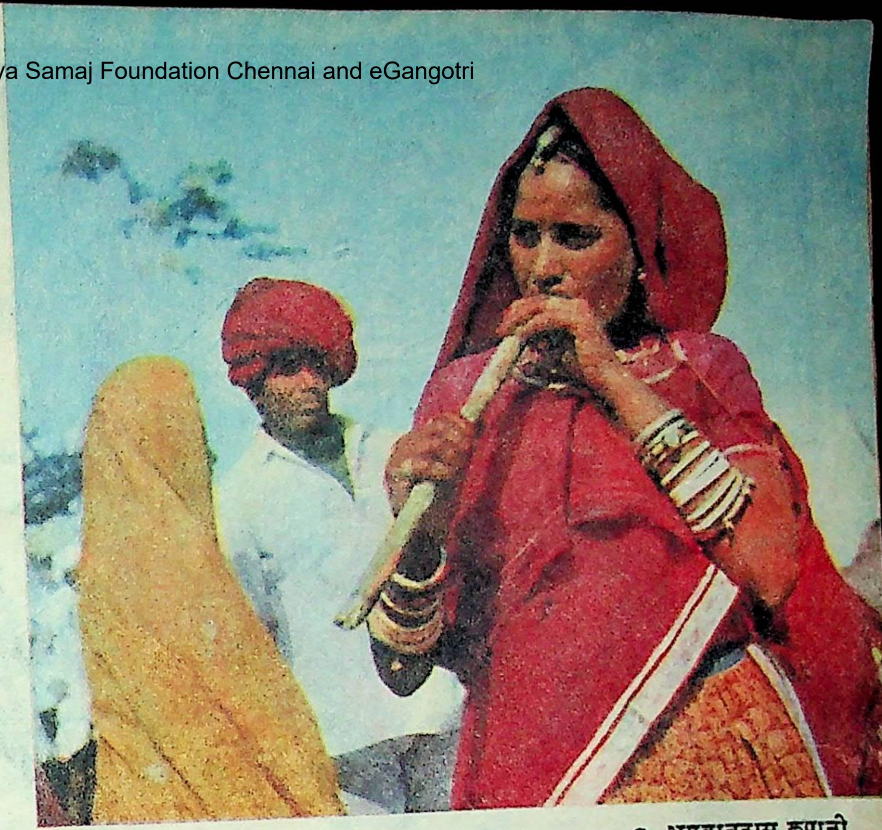

• भगवानदास रूपानी

कि बाबूजी ने साफ कर दिया. —सिन्हा साहब कह रहे थे कि अगले
सेशन से हाई स्कूल में अंग्रेजी की एक जगह खाली होने वाली है...
बाबूजी पक्के बिजनेसमैन हैं. सिर्फ उनके पास पूंजी नहीं है.
पूंजी के नाम पर खुद के मैट्रिकुलेशन का सर्टिफिकेट है और मेरी
बी. ए. की डिग्री.
क्या मैं बाबूजी की पूंजी हूं? पूछना था. मैंने दूसरा सवाल
किया—लेकिन कोर्ट में क्या काम है?
बाबूजी मुसकराये — वही पेंशन वाला केस.
मैं उठने लगा. बाबूजी ने रोका — और सुनो, साहू के ट्यूशन
वाले रुपये तो मिल गये न?
—जी. मैंने कहा.
—तो राशन कार्ड लेते जाना, इस महीने की शक्कर ले आना,
रामौतार की दुकान भी तो कोर्ट के रास्ते में ही पड़ती है. बाबूजी
रफू करने लगे.
बेंच से उठ कर मैंने अपनी पीठ सीधी की और साहित्य की
तरह सोचने लगा, कि पीठ पर पेट का एक पहाड़ है औ[illegible] उसे लादे
दौड़ लगा रहा हूं. कहीं कोई आम का दरख्त नहीं, कहीं नदी नहीं,
तालाब नहीं, सिर्फ पेट को लादे दौड़ती-हांफती पीठ है —पीठ
दिखाते रहने की दिनचर्या में डूबा मैं हूं और आत्मा लापता है.

★ ★

सोचने का विलास मिनट भर भी नहीं चलता. कोई धौल जमा
कर कहता है, गणित की बात सोचो प्यारे! राशन कार्ड जेब में डाल
कर, थैला सायकिल के हेंडल से लटका कर, मैं जब निकला, तो एक
नया गणित मेरे मन में घुमड़ रहा था. एक सौ पचास रुपये की बेसिक
में महंगाई कितनी मिलती है, इसका ठीक-ठीक पता नहीं होने के
बावजूद मैंने अंदाज लगाया कि सब मिला कर पौने तीन सौ के
आस-पास बैठेंगे. मैं खुश हुआ. और तभी सिन्हा साहब के बंगले
पर मेरी सायकिल रुकी.
बंगला था. बड़े आदमियों के घर जैसा घर. गेट के कोई तीसेक
गज बाद असल मकान. सामने की खुली जगह पक्की चारदीवारी
से घिरी थी. बीचो - बीच बजरी का रास्ता. दोनों तरफ खूबसूरत
फूलों के पौधे. करीने से कटी हुई क्यारियां. हरी घास की नरम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

the merry world of
Shreelon & Shreester
the yarns that make beautiful fabrics

श्रीलॉन नायलॉन यार्न– जानकार
महिलाओं की मनमोहक साड़ियों और मनोरम ड्रेस मटीरियल्स
(पोशाकों के कपड़े) बनानेवाला यार्न (धागा)
श्रीएस्टर पोलिएस्टर यार्न– तरक्कीपसन्द पुरुषों की
आधुनिकतम सूटिंग और शर्टिंग बनानेवाला यार्न (धागा)
इसलिए जब हो श्रीलॉन और श्रीएस्टर का मिलन,
तो छा जाता है उमंगभरी खुशियों का सावन!

श्री

बनानेवाले: श्री सिन्थेटिक्स लि., नौलखा, उज्जैन
सेल्स ऑफ़िस: श्री निवास हाउस, एच्. एम्. सोमानी मार्ग, बम्बई - ४०० ००१

JAISONS 427 Delhi

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चादर. मुझे लगा, कितने अरसे बाद फूल देख रहा हूं. मन-ही-मन तय किया कि सिन्हा साहब की लड़की को जरूर पढ़ाना है. कम-से-कम दिन में एक बार फूलों की महक तो नाक से टकरायेगी. जीभ न सही नाक का स्वाद तो बदलेगा.

मेरे खोलने पर लकड़ी का फाटक चरमराया. बगल के पौधों में फव्वारे से पानी सींचता हुआ माली चौकन्ना हुआ. उसने इधर-उधर नजर घुमायी.

—कौन है?

—मैं—रमेश वर्मा. मैंने कहा.

माली तब तक सामने आ गया था. उसके हाथ में फव्वारा था. उसने अपनी आंखों से मेरा मुआयना किया तो मुझे लगा, वह मुझे सूंघ रहा है. मुझे फाटक में टंगी तख्ती की याद आयी–बी वेयर ऑफ डॉग्स. क्या सिन्हा साहब के घर में कोई कुत्ता नहीं है? मैंने बावजह मुसकरा कर माली की तरफ देखा. वह प्रश्नवाचक मुद्रा में संदेहभरी आंखों से मुझे घूर रहा था. शायद उसे लगा कि इतनी विपन्न सूरत का आदमी उसके साहब का मुलाकाती नहीं हो सकता. मैंने कपड़ों के महत्व पर धन्य धन्य की अस्फुट ध्वनि के बाद पूछा—सिन्हा साहब हैं?

वह भौंका — आप कौन हैं?

मुझे गुस्सा लगा. उघड़े बदन वाले उस काले चेहरे तक की आंखों में मेरी हैसियत गड़ती थी. दुबारा अपना नाम बोलने की बात मुझे अपमान जैसी लगी. मैंने यथाशक्ति रुआब डालने की कोशिश की— सिन्हा साहब ने मुझे बुलाया था, और उसकी पूछती-ताकती आंखों की परवाह किये बिना मैं आगे बढ़ गया.

बिलकुल पहले के कमरे का दरवाजा खुला था लेकिन हद है क्या मेरे पांव बिल्ली के पंजे हैं कि सुंदर सन्नाटे वाले उस सजे सजाये कमरे में मेरी पदचाप तक नहीं गूंजी. कोई नहीं था. सिर्फ कमरा. सजा हुआ. किसीके आने, न आने के व्यर्थ इंतजार में पड़े रहने की आदत न कमरे को थी, न कमरे के मालिकों को. क्या मैंने गलती की कि उस कुत्ते की औलद के थ्रू मैं यहां नहीं घुसा? अब यहां इस चुप मकान में, मेरी मिमियाती पुकार को सिन्हा साहब तक पहुंचाने का काम कौन करेगा? लेकिन जब तक थोड़ा टहल कर मैं कमरे के असूर्यम्पश्या–सौंदर्य को अपनी लालची आंखों से चाटूं – बगल के कमरे का पर्दा हिला. मुझे लगा कि मेरे पांवों में वजन है. ये मेरे पांव हैं. आखिर मैं खड़ा हूं उन पर.

पर्दा हिलने के बाद, अपने वजनी होने का एहसास सोचते न सोचते गायब हो गया. कमरे का पर्दा खिसका कर, जिस सुंदर महिला ने प्रवेश किया–वह मिसेज सिन्हा थीं. उनके आने की महक से मेरे बोल लड़खड़ा कर फूटे—जी, वो, सिन्हा साहब ने. . . मैं ओम प्रकाश वर्मा का लड़का हूं. . .

—ओह, तो तुम हो, क्या नाम है तुम्हारा, रमेश, रमेश ही हो न, वह मुसकरायीं, मुसकराती ही रहती होंगी हमेशा—आओ अंदर आओ न.

उन्होंने पीठ कर ली. पीछे की तरफ उनका ब्लाउज दिल के आकार का कटा था. ब्लाउज स्किन कलर का था और पता ही नहीं चलता था कि उन्होंने कुछ पहना है. अचानक अपने को, उन्हें घूरते हुए पा कर मैं थोड़ा सकपका गया, लेकिन बाद में लगा कि मेरा सकपकाना फिजूल है. मिसेज सिन्हा कोई म्युनिसिपल में क्लर्क तो नहीं हैं कि पीठ की आंखों से चीफ म्युनिसिपल अफसर को, अपनी गपबाजी के दौरान देख लें और उसी क्षण फाइल में डूब जायें—और मैं क्या चीफ म्यु. अफसर हूं? अगर होता भी तो, मिसेज सिन्हा तो चेयरमेन-वुमेन हैं और चेयरमेन को पीछे मुड़ कर देखने की जरूरत पांच साल में सिर्फ एक बार पड़ती है.

मिसेज सिन्हा का अनुकरण करते हुए मैं जिस जगह में पहुंचा,

प्रभातकुमार त्रिपाठी (जन्म : १४ सितंबर १९४१) मूलत : कवि हैं. इन्होंने कविता और कहानी के माध्यम से अपने भीतर के उस आदमी की तलाश की है जो एक बेहतर मानवीय जिंदगी के लिए लड़ते हुए टूट रहा है और टूटते हुए लड़ रहा है. इन्होंने कहानी को सही आदमी की तलाश का माध्यम माना है.

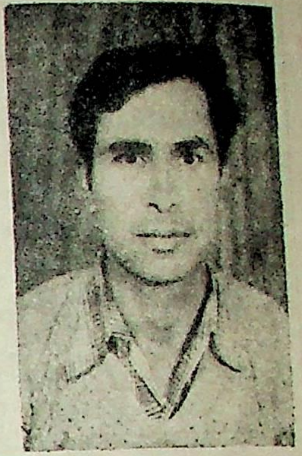

उसे अंग्रेजी की भाषा में डायनिंग स्पेस कहा जाता है. वहां एक गोल टेबल थी और अपनी पुत्री के साथ महामहिम वकील साहब विराजमान थे. उनके चलते हुए मुंह और तन्मय चेहरे को देख कर अंग्रेजी सभ्यता के एक दूसरे शब्द का स्मरण हुआ—ब्रेकफास्ट. वह ब्रेकफास्ट कर रहे थे. मिसेज सिन्हा आधे में उठी थीं. मुझे वहां मौजूद पा कर मिस्टर सिन्हा की तन्मयता टूटी. मैंने नमस्कार किया.

उन्होंने सिर ऊपर उठाया—आओ भाई रमेश, आओ बैठो. फिर मिसेज सिन्हा की ओर मुड़े—अरे भाई, रमेश के लिए नाश्ता मंगवाओ, फिर मेरी ओर — अरे भई, तुम्हारे बाबूजी वाला केस तो बिलकुल फाइनल हो चुका है, कोर्ट में तो और कोई काम नहीं है, तुम जरा मेरी चिट्ठी के साथ ट्रेजरी ऑफिसर से मिल लेना. . . अरे, तुम अभी तक खड़े हो.

मुझे इतने में ही यकीन हो गया कि सिन्हा साहब अपने पेशे में सफल हैं. उनकी वाणी में अपनावे की मिठास है, मैं गिरफ्तार हो रहा था, मुवक्किल भी जरूर होते होंगे. पर उनकी शालीनता के बावजूद मुझे अपने कपड़ों पर लिखी अपनी हैसियत का खयाल था और यह भी पता था कि कमीज के नीचे चमड़ी का जो भी रंग है [illegible] उस कुत्ते-माली के भाई बंद के रंग के करीब का है. यह खय[illegible] मुझे कोंच रहा था कि अदब से खड़े रहो, लेकिन मैं बैठ गया. मेरे पास अपनी चमड़ी के रंग के अलावा अंग्रेजी में आनर्स का सर्टिफिकेट भी था.

मिसेज सिन्हा नौकर को आवाज दे चुकी थीं. नौकर मेरे सामने की प्लेट पर टोस्ट और आमलेट रख कर जा चुका था. कांटे-छुरी वाली भोजन प्रक्रिया मेरी वर्गीय आदतों के इलाके के बाहर की, एक खास शहरी चीज थी, और बावजूद इसके कि पिछले दिनों हमारे शहर में नया एयरकूल सिनेमा हाल चालू हो गया है और वहां एक काफी हाउसनुमा जगह में दोसे के साथ छुरी-कांटा भी रखा जाता है, मैं अभी भी इस प्रक्रिया में पारंगत नहीं हो सका था. सो पहले तो अंडे का आमलेट देख कर मुझे अपनी जीभ की कमीनगी का अनुभव हुआ, लेकिन दूसरे पल से मैं सोचने लगा, यह तय था कि अगर मैं शहरी औपचारिकता की रक्षा के लिए कांटे-छुरी का उपयोग करता, तो आमलेट के साथ-साथ प्लेट के भी टुकड़े-टुकड़े हो जाते.

अचानक, मिसेज सिन्हा का मुंह की ओर उठा हाथ देख कर मुझे राहत मिली. वह टोस्ट हाथ में ले कर कुतर रही थीं—देखो भाई रमेश, ये है हमारी बेबी वाणी, इसने इसी साल कलकत्ते के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेज़र से त्वचा कटाकर और खूंटे-से बाल उगाकर झेंपते रहिए या...

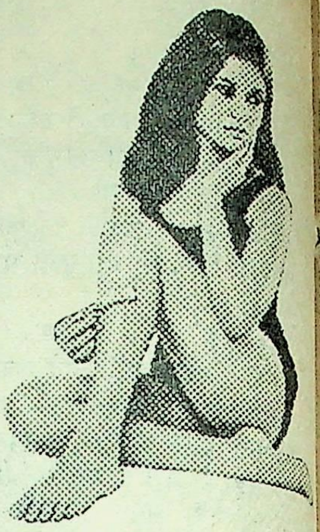

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर से रेशम-सी कोमल त्वचा पाइए

शेविंग ? नहीं, यह तो पुरुषों के लिए है। फिर त्वचा कटने और बाल कड़े उगने का भी डर। तो ? इसके लिए एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर लगाइए। कैसे ? बिल्कुल आसान है : अनचाहे बालों पर क्रीम लगाइए; थोड़ी देर ठहरिए, फिर गीली रूई से पोंछ डालिए। यह त्वचा के नीचे जाकर कार्य करता है। देखा बाल ग़ायब। आपकी त्वचा हफ़्तों मुलायम। तो छोड़िए रेज़र, एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर अपनाइए।

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर

अनचाहे बालों को हटाने का मनचाहा क्रीम

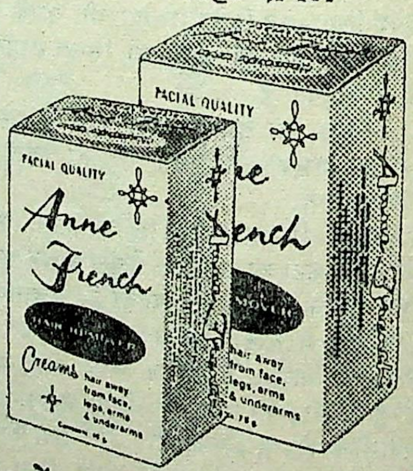

Licensed user of TM : Geoffrey Manners & Co. Ltd.

126 HR-203 Hin

२ साइज में सुलभ : ४० ग्रा. और ७५ ग्रा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डिसोजा-कान्वेंट से सीनियर कैंब्रिज किया है और अब की यहीं डिग्री कॉलेज में फर्स्ट इयर साइंस में दाखिला ले रही है, हम तो चाहते थे कि . . . मिसेज सिन्हा रुकीं. मेरा नाश्ता अभी शुरू नहीं हुआ था. मैंने अपना अकारण झुका हुआ चेहरा ऊपर उठाया. वाणी सिन्हा ने मुझे नमस्कार किया. वह अपनी सुंदर मां की सच्ची बेटी थी. उसके चेहरे में उसके घर का मेनू लिखा हुआ था.

—हम तो चाहते थे कि वह वहीं कलकत्ते में रह कर ह्यु मेनिटीज में ही कंटीन्यू करती, लेकिन बेबी कहती है कि मेडिकल में जायेगी, वे फिर रुकीं. उन्होंने पहले बेबी की तरफ , फिर मेरी तरफ देखा. बेबी मुसकरायी.

मैं सोच रहा था कि सबकी नजर बचा कर टोस्ट के टुकड़े के साथ आमलेट को मुंह में डाला जा सकता है. इससे टेबलवालों का सौंदर्यबोध भी नहीं मसकेगा और मेरी जीभ को अपने कमीने सपनों का चेहरा भी दिख जायेगा. मैंने अपने सोच को निरापद भाव से पूरा करने के लिए मिस्टर सिन्हा की तरफ देखा. वह चाय बना चुके थे और सिगरेट का कश ले रहे थे. बातचीत में उनका मत जरूरी था, —अब तुम्हीं बताओ भई रमेश, आजकल मेडिकल में धरा क्या है, एक तो पहले दाखिले का चक्कर और दाखिला मिला तो छह साल की रटाई और पढ़ाई और उसके बाद शायद सरकार ने देश-सेवा के लिए भी कुछ साल तय कर दिये हैं, क्यों भई?

—जी, सिन्हा साहब को अपनी तरफ देखते हुए मुझे लगा कि अब शायद नाश्ता कर्म हो ही नहीं सकेगा. वह पता नहीं कितने सवाल करेंगे और इस जगह मेरे पास जी-जी के अलावा और कौन-सा शब्द है. मैं नहीं जानता था कि गरीबी की वजह से वोकाबुलेरी इतनी क्षीण हो जाती है.

इस सारी बातचीत का मोटिव अभी तक छिपा था. हाफ कंसील्ड, हाफ रिवील्ड वाली आर्ट अदा के साथ मिसेज सिन्हा ने कहा — मेरी तो राय है कि ब्रिलियंट स्टूडेंट को कांपिटिशन में ही बैठना चाहिए, दूसरी जगह इतना खून जला कर पढ़ने के बाद भी आपको एडमिनिस्ट्रेटिव अफसरों की जी हुजूरी करनी पड़ती है और . . . ओह नो नो, नो टायगर नो. . . मैं चौंका. मिसेज सिन्हा के मग्न व्याख्यान के दौरान मैंने टोस्ट में आमलेट जमा कर हाथ ऊपर कर लिया था. पहला कौर अंदर जा चुका था. दूसरा जाने की तैयारी में था कि मैं चौंका.

मिसेज सिन्हा की साड़ी पर अपने पवित्र पंजे गड़ा कर उनका प्रिय टायगर खड़ा था और उनकी जांघ चाट रहा था. यह देख कर अव्वल तो मुझे किसी अश्लील पुस्तक में देखी तसवीर की याद आयी और दुबारा मैंने सोचा कि मिसेज सिन्हा मुझे आमलेट खाने के लिए मना नहीं कर रही थीं.

टायगर को पुचकारते हुआ मिस्टर सिन्हा ने प्लेट में बचा टोस्ट का टुकड़ा उसकी तरफ फेंका और कहने लगे—इस साल म्युनिसिपल स्कूल में जगह खाली हो रही है, किसी तरह वहां लग जाओ तो. . . एम. ए. कर कराके. . . वरना इनके दफ्तर में तो. . . मिस्टर सिन्हा मुसकराये. मिसेज ने उनका साथ दिया. टायगर दुम हिलाता रहा. क्या मेरी कोई पूंछ है? सोचता हुआ मैं मि. सिन्हा के पीछे-पीछे उनकी स्टडी तक गया. वहां मैंने चिट्ठी ली. क्या मेरी कोई जुबान है, सोचता हुआ मैं सड़क तक आया और खोया-खोया-सा चलने लगा.

* *

एक लंबी सड़क पर सायकिल चला कर मुझे कचहरी तक पहुंचना था. चिट्ठी मेरी जेब में थी. टोस्ट का टुकड़ा मेरी आत्मा के पेट में था. आत्मा सायकिल चलाने में महारत हासिल करती हुई कहां जा रही थी?

मुझे याद आया, बाबूजी ने कहा था, रास्ते में रामौतार की दुकान पड़ती है, वहां से शक्कर खरीदनी है. कार्ड थैले में था. साहू के ट्यूशन के रुपये मेरी जेब में थे. पत्नी की फर्माइश रह रह कर मेरे दिमाग में झनझना रही थी. इन सबके साथ, सबसे पहले मैं मुहल्ले के चौराहे की पान की दुकान पर रुका. मुझे जैसे किसी किरानी का इंतजार करना था और छुट्टी की दरख्वास्त पहुंचवानी थी कि वारदात हुई. वह कोई दुर्घटना नहीं थी. अभी, इस वक्त, जब मैं सोच कर याद कर रहा हूं, जब जाने कई दिनों बाद, इतनी थकान के बाद भी मुझे नींद नहीं आ रही है, तब यकायक मामूली दृश्यों की कतार मुझे एहसास के एक नये प्रदेश में छटपटा कर जीने का मौका दे रही है. अपने दिमाग को काम करता देखने की इस मनुष्य-इच्छा का आकस्मिक-उदय मुझे कहां ले जायेगा, मैं नहीं जानता.

चौराहे की पान की दुकान पर बैठने के लिए तख्ता था. उस कठियल सतह पर बैठ कर मैं सिन्हा साहब के बंगले को भुलना चाहता था. एक ट्रक दुकान के ऐन सामने खड़ा था. उसमें सीमेंट के बोरे भरे थे. तीन-चार कुली बोरों को लाद कर मंसाराम सेठ के गोदाम पर पहुंचा रहे थे. मैं पान की दुकान में दाखिल हुआ. पान वाले ने इशारे से पूछा कि क्या पान चाहिए. मैंने हां कहा और देखने लगा. वे काली पीठ वाले चेहराहीन मनुष्य थे. उन्हें, काम करते हुए नहीं थकने का, कभी नहीं थकने का वरदान प्राप्त था. इतने में एक शापग्रस्त अपवाद आया और तख्ते के नीचे फर्श पर बैठ कर बीड़ी सुलगाने लगा. उसने दो-चार कश लिये होंगे कि पान की दुकान के सामने वाले गोदाम से एक तोंद बाहर आयी और उसकी आवाज चौराहे में गूंज गयी—साले, वहां बैठ कर मस्ती मार रहा है. एक बोरा उठा कर पहुंचाने में घंटे भर लगायेगा, तो बगीचे का काम क्या तेरा बाप देखेगा?

आवाज अपने चेहरे के साथ पान की दुकान तक आयी. वह मंसाराम का प्रामाणिक पुत्र था. प्रमाण उसकी तोंद नहीं, उसकी जुबान थी. क्या हुआ? उसकी बीड़ी का क्या हुआ? मैं जब तक सोचूं, पान वाले ने मसालेदार मुसकान से कहा—कुछ तो रहम करो सेठजी, बेचारे सुबह से गधे की तरह ढो कर तुम्हारा गोदाम भर रहे हैं.

—तो कोई एहसान नहीं कर रहे हैं दादू. आदमी अपनी अक्ल से आदमी होता है, दो हाथ , दो पैर होने से ही हर गधा आदमी नहीं हो जाता.

मैं चिल्लाया. यह बकवास है. मैं गधा नहीं हूं. मैं सौ फीसदी आदमी हूं. मेरी पीठ पर सीमेंट का कोई बोरा नहीं लदा है. मैं सिर्फ कुछ पेट अपनी पीठ पर लादे हूं. मेरी पीठ पर एक बनियान है. और उसके ऊपर कमीज. मैं गधा नहीं हूं. मेरी सायकिल के हैंडल में राशन का थैला भर अटका है. मैं गधा नहीं हूं. थोड़ी देर बाद थैले में चार किलो शक्कर भरी होगी. और मेरी जेब में इस वक्त वकील साहब की चिट्ठी है.

लेकिन मेरी आवाज नहीं निकली. दरअसल मैं चिल्ला ही नहीं रहा था. कुछ शब्द बिना किसी मतलब के वहां थे, मैं उन्हें पीक के साथ निगल गया. मैं पान चबा रहा था. फिर पान वाले को एप्लिकेशन थमाते हुए मैंने कहा—राम सहाय आये तो उसे दे देना.

और उस दृश्य या वारदात को आंख में गिरे कचरे की तरह बाहर निकाल कर मैं सायकिल की सीट पर यथास्थिति में आ गया. □□□

हिंदी-विभाग
राउरकेला साइंस कालेज,
राउरकेला (उड़ीसा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबिरा खड़ा बजार में (१२)

● हरिशंकर परसाई

इस बार कबीरदास की भेंट अटलबिहारी बाजपेयी से

कबीर अटैची लेकर निकला तो वही कनछेदी बरामदे में बैठा दिख गया. मैंने कहा—कहो कनछेदी क्या कर रहे हो?

कनछेदी ने जवाब दिया—सोच रहा हूं.

कबीर ने कहा— अरे, तुम भी सोचने लगे! मत सोचा करो. बड़ी बुरी लत है. जिसे लग जाती है, दुबला हो जाता है. पर सोच क्या रहे हो?

कनछेदी ने कहा—देश के बारे में सोच रहा हूं.

कबीर ने कहा—यह और भी बुरी बात है. बड़े-बड़े नेता तो अपने ही बारे में सोचते हैं और यह पिद्दी कनछेदी इतने बड़े देश के बारे में सोच रहा है.

कनछेदी ने कहा—यही सोच रहा हूं कि ईश्वर है या नहीं? और इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि ईश्वर है. ईश्वर न होता तो यह देश कभी का मर गया होता. इसे सिर्फ ईश्वर ही मरने से बचा रहा है—यही सबसे बड़ा सबूत है. पर तुम कहां चले?

मैंने कहा—एक और नेता से मिलने जो कई की तरह अपने को देश का भाग्य-विधाता समझता है—अटलबिहारी बाजपेयी.

कनछेदी ने कहा—अरे खतरनाक आदमी है. लच्छेदार भाषा और अदाओं में फंसाता है. दो घंटे भाषण उसका सुनो. बड़ा मजा आता है. पर घर जा कर सोचो कि इसने क्या कहा, तो जवाब निकलता है कि कुछ नहीं कहा. वह बस बोलता है. क्या? यह मत पूछो. बस मूंगफली खाते जाओ और भाषण सुनते जाओ.

कबीर ने कहा—वह मुझसे ऐसा नहीं बोलेगा, क्योंकि मैं 'पबलिक मीटिंग' नहीं हूं. ये ऐसे नेता लोग जब जनता को सामने देखते हैं तो कहते हैं—आज सुरन मोंहि दीन्ह अहारा! जैसा हनुमान को देख कर सुरसा ने कहा था. पर इस हनुमान रूपी जनता का यह कमाल है कि—

> **जस जस सुरसा बदन बढ़ावा,**
> **तासु दुगुन कपि रूप दिखावा.**

खैर चलूं. गाड़ी का समय हो रहा है.

कबीर अटलजी के कमरे में दाखिल हुआ तो यह पूछे बिना ही कि मैं कौन हूं, वे गवकने लगे—इस इंदिरा गांधी की तानाशाही ने...

मैंने रोका—अटलजी, मैं पबलिक मीटिंग नहीं हूं और तुम्हारे सामने माइक भी नहीं है. मैं कबीरदास.

अटल थोड़े हतप्रभ हो गये. कहने लगे—अरे साधु, मुझसे भूल हो गयी. पर यह बात बाहर नहीं फैलना चाहिए कि मैंने ऐसा किया. मेरी छबि बिगड़ेगी. बैठो-बैठो. कैसे आये?

मैंने कहा—यों ही. मिलने और बात करने.

अटल जी ने कहा—पर मैं ब्राह्मण हूं और तुमने ब्राह्मणों के खिलाफ बहुत कहा है. तुम शूद्रों से मिला करो.

मैंने कहा—शूद्रों से भी मिलता हूं. पर तुम ब्राह्मण ब्राह्मण भी एक नहीं हो. इंदिरा गांधी भी ब्राह्मण और तुम भी ब्राह्मण. और सुभद्रा जोशी भी ब्राह्मण जो बलरामपुर में तुम्हें चुनाव हराती थीं. आपस में क्यों लड़ते हो?

अटलजी ने कहा—यह राजनीति है. इसमें कोई किसी का नहीं होता. तुम अपढ़ साधु को यह राजनीति समझ में नहीं आयेगी.

तुम तो कहते हो—ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय! अक्षर-ढाई प्रेम में ही नहीं घृणा में भी होते हैं. हमारे विरोधी से हमें घृणा ही करना चाहिए.

कबीर ने कहा—करो घृणा! पर यह बताओ, तुम 'शाखा' से आये हो न?

अटल जरा तैश में बोले—तुम्हें क्या मतलब?

कबीर ने जवाब दिया—मतलब है—क्या तुम भी शाखामृग हो? यही जानना चाहता हूं.

अटलजी ने कहा—यहां कोई स्वयंसेवक नहीं है, वरना तुम्हें दिखा देता.

कबीर ने कहा—याने तुम 'शाखामृग' हो, तभी ऐसी बात साधु से कहते हो. क्या यही 'भारतीय संस्कृति' है, जिसका तुम नारा लगाते हो? भारतीय संस्कृति की क्या परिभाषा है?

अटलजी ने कहा—भारतीय संस्कृति कोई खाने की चीज नहीं. पीने की चीज नहीं. वह भारतीय है और संस्कृति है. समझे?

कबीर ने कहा—समझ गया. तो इस भारतीय संस्कृति में कबीरदास है कि नहीं?

अटल जी ने कहा—तुम जुलाहे बुनकर भारतीय संस्कृति में कैसे आ सकते हो? गुरुजी के शब्दों में तुम 'स्वकीय' नहीं 'परकीय' हो. तुम्हारा भारतीयकरण नहीं हुआ.

मैंने पूछा—पर इस 'भारतीयकरण' के सिद्धांत को प्रतिपादित करनेवाले बलराज मधोक से तुम्हारा क्या झगड़ा है? बेचारे ने एक पूरी किताब लिखी है, इस पर.

बाजपेयी ने कहा—वह समझता था कि वह 'थियरी' दे रहा है. मगर नेता तो अटलबिहारी बाजपेयी है.

मैंने कहा—इसलिए कि आया उसी जगह से, पर जनतंत्री होने का रोल अच्छा खेलता है.

अटलजी खुश हुए. फिर बोले—ये इंदिराजी हम लोगों को फासिस्ट कहती हैं. और हम इंदिराजी को फासिस्ट कहते हैं. यह 'फासिस्टवाद' क्या है?

कबीर ने कहा—पढ़ो. समझो. अपने देश की हालत देखो.

अटलजी बोले—इन हजारों लड़के-लड़कियों को जो नक्सलवादी हैं, जेलों में इतने साल बंद रखना क्या 'फासीवाद' (लोहिया की भाषा) नहीं है?

कबीर ने कहा—है. पर लाखों स्वयंसेवकों को छुरा, लाठी से लैस रखना, उनका आतंक के लिए उपयोग करना क्या फासीवाद नहीं है? फिर इन नक्सलवादियों से कबीर को कोई शिकायत नहीं है. पर अगर ये छूट गये, तो खतरा पहला तुम्हें है, दूसरा कांग्रेस को. वे पहले वर्गभेद को मिटायेंगे. और आपकी पार्टी तथा कांग्रेस पार्टी कहती है कि वर्ग हैं ही नहीं. तो इन नक्सली लड़के-लड़कियों का शत्रु कौन है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अटलबिहारी थोड़े चौंके. बोले—म भी कुछ पढ़ा-लिखा
इनके वर्ग-शत्रु हम लोग हैं. हां यह वर्गसंघर्ष है. पर लोहिया
कई बार कहा था कि वर्णसंघर्ष भी है.
कबीर ने सीधा पूछा—एक नीचे वर्ण का सूदखोर क्या उस
ब्राह्मण को माफ कर देगा, जिसने उससे कर्ज ले लिया है? वह उस
ब्राह्मण को मार डालेगा पर बाद में दूसरे ब्राह्मण के चरण भी
छुएगा. वह धर्म के साथ धंधा भी निभाता है. कहां रहा, तुम्हारा
वर्णसंघर्ष? क्या बैंक से कर्ज इस कारण मिलता है कि वह
ब्राह्मण है? पर हां सामंती सभ्यता में इस ब्राह्मण का महत्व था,
अब भी है. अब देखो न, हमारी अणु-विज्ञान सफलतावाले
दोनों पारसी हैं—भाभा और सेठना 'ब्राह्मण भी होंगे. पर यदि
तुम्हारे परम पूज्य (पूप्पू) गुरुजी की बात चलती तो किसी
ब्राह्मण मुंशी को वे एटामिक इनर्जी कमीशन का अध्यक्ष बना देते,
क्योंकि भाभा और सेठना 'परकीय' हैं, मुंशी स्वकीय हैं. अटलजी,
यह ब्राह्मण ही है जिसने बुद्ध काल के बाद रिसर्च नहीं होने दी.
नागार्जुन के बाद कौन महान 'केमिस्ट' हुआ? मैंने एक बहुत बड़े
अंग्रेज विशेषज्ञ की किताब पढ़ी है—'दी कान्क्वेस्ट आफ पेन'—
याने आपरेशन के लिए दी जानेवाली दवा जो दर्द नहीं होने देती.
उसने लिखा है कि 'एनेस्थीसिया' भारत में २५ सौ साल पहले
इतना अच्छा था, जितना पश्चिम के पास १९२५ तक नहीं था. पर
इसके बाद ब्राह्मणों ने कहा—चुप! सारा. ज्ञान हमारे पास है,
पोथी में.

और पोथी बंद कर ली. फिर यह देश पैदा कर सका केवल शंकराचार्य, अरविंद. और कबीर जैसा जुलाहा, कुंभनदास कुम्हार, रैदास चमार! पर इस संस्कृति ने दूसरा नागार्जुन, दूसरा चरक, दूसरा बाग भट्ट पैदा नहीं किया. याने विज्ञान से यह संस्कृति अविज्ञान की तरफ बढ़ी है.

अब अटल बिहारी थोड़ा अधिक चौंके. कहने लगे— कबीरदास तुम्हारी तरह कविता मैंने भी लिखी है. पर कविता से क्या फायदा? मैं किसी समय कवि-सम्मेलनों में बड़ी तालियां पिटवाता था. पर कविता से समाज को क्या होता है?

कबीर ने कहा—पर कविता को समाज से कुछ होता है. कविता को समाज से 'कुछ' नहीं होता, तो वह सार्थक कविता नहीं होती. अटलजी पर हम लोग राजनीति की बात करें न? इस समय रणनीति क्या है?

कबीर ने कहा—फिर तुम दूसरे की भाषा बोले. यह रणनीति वर्गसंघर्ष की भाषा है. यह कोई कौरवों का व्यूहचक्र नहीं है.

भारतीय लोकतंत्र के रक्षक जयप्रकाशनारायण (लोक नायक) के शब्दों में अटलजी बोले—हमें पूर्ण क्रांति चाहिये.

मैंने पूछा—यह पूर्ण क्रांति क्या है? क्या हिंदू और मुसलमान उन लड़के-लड़कियों की रक्षा करता है, जो भाग कर शादी कर लेते हैं? तो फिर क्रांति विभाजित नहीं होती. क्रांति होगी तो पूरे सामाजिक जीवन में, इसे ही पूर्ण क्रांति कहते हैं और विप्र तुम शास्त्र मानते हो, मैं नहीं. पर शास्त्र वचन सुनना चाहो तो यह कि मार्क्स और लेनिन ने कहा है—क्रांति लगातार होती है.

बाजपेयी ने कहा—तुम तो साधु हो. बताओ न, मध्यावधि चुनाव होगा या नहीं?

कबीर ने कहा—सब लोग यही पूछते हैं. जब तुम्हें संसद पर विश्वास नहीं है तो मध्यावधि चुनाव के बारे में क्यों चिंतित हो?

तब अटलजी ने मेरे कान में कहा—अरे संसद से इस्तीफा देने, की घोषणा तो एक स्टंट था. कौन लगी-लगाई नौकरी छोड़ेगा? पर बोलो, क्या मध्यावधि चुनाव होगा?

कबीर ने कहा—नो बडी नोज दी लेडीज माइंड! पर तुम्हारी रणनीति क्या है?

अटलजी ने कहा—मुझे तो होना है अगला प्रधान मंत्री. अब यह जयप्रकाशी फौज दिल्ली पर हमला कर रही है. जब दिल्ली पर कब्जा कर ले तो पुकारे—अटलजी, आइये न! प्रधान मंत्री हो जाइये.

कबीर ने कहा—अटलजी, आपको किसका डर है? किसे पुकारा जा सकता है? मोरारजी भाई को?

अटलजी ने कहा—नहीं, वे बहुत बूढ़े हैं.

कबीर ने कहा—राजनीति में कोई बूढ़ा नहीं होता. मरने तक जवान रहता है. बहरहाल, किससे डर है?

अटलजी ने कहा—इस चौधरी चरणसिंह से! यह अभी से प्रधान मंत्री की तरह बोलने लगा है—शेडो प्राइम मिनिस्टर. कहीं यह चौधरी कूदकर दिल्ली के तख्त पर न चढ़ जाय! मैं अभी से सावधान हूं.

कबीर ने कहा—नहीं, आप ही बनेंगे. पर मध्यावधि चुनाव हो गये तो?

अटलजी ने कहा—यही तो मैं तुमसे पूछता हूं, साधु? क्या होंगे? अरे, 'पूर्णक्रांति' पूर्ण होने के पहले कहीं मध्यावधि चुनाव हो गये तो सारा खेल बिगड़ जायगा.

इसके बाद अटलजी रिहर्सल करने लगे. बोले—देखो साधो, मैं राष्ट्रपति फोर्ड से यों हाथ मिलाऊंगा. और कोसिजिन से यों. ऐसा हाथ न नेहरू ने मिलाया, न इंदिरा गांधी ने.

कबीर ने कहा—आप डटकर रिहर्सल करो. मैं चलता हूं.

अटलजी बोले—अरे, ठहरो.. यह तो बता जाओ कि मध्यावधि चुनाव होंगे या नहीं.

कबीर ने कहा—स्त्री का मन साधु भी नहीं जानता.

लौटा तो कनछेदी ने पूछा—कहो कैसे रहे अटलबिहारी?

मैंने कहा—अच्छे हैं. हाथ मिलाने का रिहर्सल कर रहे हैं. प्रधान मंत्री होना ह न?

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिल्में

मीनाकुमारी की डायरी : १३

चालीस मील लंबी मौत

• गुलज़ार द्वारा प्रस्तुत

> नवंबर, '७३ अंक से सारिका में मीनाकुमारी की इस काव्यमय डायरी की शुरुआत की गयी थी, जिसे सारिका के लिए विशेष रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं मीनाकुमारी के अंतरंग मित्र व प्रसिद्ध शायर गुलजार. उन्हीं के शब्दों में "मीनाजी की डायरियों में उस कबीले का इतिहास भी है, जिसे लोग 'फिल्म वाले' कहते हैं, और साहित्य भी. . वे निजी ज्यादा हैं. लेकिन उस वक्त की झलक जरूर देती हैं, जिसमें वह जी रही थीं—या उनके अपने लफ्जों में 'मर रही' थीं." (इस रचना के किसी अंश का उपयोग करने से पहले श्री गुलजार, ९१ ए, कोजी होम, २५१, पाली हिल, बंबई, से अनुमति लेना जरूरी है.)

रात इस कदर गहरी नींद आयी कि सुबह भी बड़ी मुश्किल से आंख खुली. फिर सईद भाई और भाभी के साथ 'सलावा' झरना देखने गये. यह जगह सरधना के करीब है और मेरठ से पंद्रह मील दूर है. नहर गंगा के किनारे-किनारे वहां तक सड़क चली गयी है. इस नहर को देख कर चंदन को अकबर इलाहाबादी का वह मिस्रा (पंक्ति) याद आ गया : 'काटली साहब ने गंगा काट ली.' यह वही कटी हुई गंगा की नहर है जिसे 'काटली' साहब ने काटा था. देहातों से होते हुए सलावा पहुंचे. यहां का डाकबंगला देख कर वहीं रहने को जी चाहने लगा और अगली दफा के लिए प्रोग्राम फिलहाल मुलतवी (स्थगित) किया. बिजलीघर के ग्राउंड में गुलाब के फूलों का बाग है. इस कदर बड़े और खुशबूदार गुलाब के फूल मैंने पहली बार देखे. हमने फौरन एक गुलदस्ता बना लिया. वापस आते हुए जब सईद भाई वहां के निगरान (पहरेदार) बूढ़े को रुपये देने लगे तो उसने पुरानी रवायात (परंपरा) को बरकरार रखते हुए, यह कह कर लेने से इनकार कर दिया कि 'आप तो हमारे देहात में इतनी दूर से आये हैं, हमारे मेहमान हैं; बल्कि हमें आपका चाय-पानी करना चाहिए.'

फिर हम सरधना का मशहूर चर्च देखने गये जो सरधना की बेगम जेब-उलनिसा ने बनवाया था, चूंकि वह इसाई हो गयी थीं. बाद में उनका नाम जूलियाना हुआ. इस चर्च में इटली के बने हुए मुजस्समे (मूर्तियां) रखे हुए हैं. ये मुजस्समे बहुत खूबसूरत हैं. खास तौर पर एक औरत का मुजस्समा बहुत ही हसीन है. बुत इस तरह का है कि एक औरत सीढ़ियों पर सर झुकाये बैठी है और घुटनों तक उसका घूंघट कढ़ा हुआ है. उसके हाथ में एक सांप है. यह बुत संगमरमर का बना हुआ है और इस कदर नेचुरल दिखायी देता है कि बस! लेकिन मैंने महसूस किया कि इस चर्च में 'बेगम' ज्यादा हैं और मजहबियत कम. हर चर्च की तरह यहां का माहौल भी बहुत पुर-असर था. हर तरफ एक खामोशी-सी थी. न जाने कहां से और किस कोने से ऑर्गन की हलकी-हलकी आवाज आ रही थी.

वापसी में काफी देर हो गयी और कल की तरह आज भी चार बजे खाना खाना पड़ा. मुझे चांदी का, कानों में पहनने का जेवर 'मगरमच्छ' खरीदना था. शाम को जब हम बाजार जाने के लिए निकले तो दरवाजे पर अजीब हंगामा था. भला सईद भाई के यहां हम आयें और मेरठ वालों को पता न चले! अब तक घर में औरतों और लड़कियों के कई ग्रुपों से तो मिल चुकी थी, मगर बात आखिर बाहर चली ही गयी. भाभी चूंकि बुर्के में मेरे साथ थीं, इसलिए सोचा कि बचाव हो जायेगा. और हम हिम्मत करके बाजार को चल ही दिये. मगर यू.पी. में बचाव कैसे हो सकता है? कुछ लोग साइकिलों पर हमारी गाड़ी का पीछा करने लगे. उनमें से एक आदमी तो काफी गुस्ताख और बदतमीज था. वह खुद तो पीछे आ ही रहा था, इशारे से बाजार के और लोगों को भी बुलाता जा रहा था. चंदन को तो बहुत ही गुस्सा आया और उनके कहने से बाकर भाई ने उसकी साइकिल को टक्कर लगा दी. लेकिन गिर कर उठने के बाद फिर उसने वही हरकत की. फिर हम रुके. इसी परेशानी में एक गलत आदमी से बाकर भाई का झगड़ा भी हो गया. मैं तो बिलकुल घबरा गयी. लोग इकट्ठे होने लगे और मैंने बाकर भाई से वापस चलने को कहा. इस गुंजान बाजार में अगर यह तूफान खड़ा होता तो मुकाबला मुश्किल था. जान बचा कर भागे. भाभी ने कहा कि 'मगरमच्छ' वह मुझे भिजवा देंगे. वाकई सईद भाई और भाभी के इखलाक का जवाब ही नहीं. मैं तो इनकी मेहमान-नवाजी और मुहब्बत देख कर हैरान रह गयी. आज शाम को मैं और चंदन सईद भाई के वालिद और चचा साहब का बैंड का कारखाना 'नादिर अली एंड संज' देखने भी गये थे जो मकान के नीचे ही है. बैंड के सारे इंस्ट्रुमेंट्स (वाद्ययंत्र) यहां बनते हैं और सारे हिंदुस्तान में भेजे जाते हैं. यहां ज्यादा काम हाथों से होता है. मशीनें भी काफी हैं. कारीगरों को साज बनाते हुए देखना मुझे तो बड़ा दिलचस्प मालूम हुआ.

आज हमें घर से निकले हुए पूरा एक महीना हो गया. कल सुबह मेरठ से भी रुखसत हो जायेंगे.

(१-१२-५७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक नज़्म

सूरज के ज़ख्मों से रिसता लाल लहू
दूर उफ़क से बहते-बहते इस साहिल तक आ पहुंचा है
किरनें मिट्टी फांक रही हैं
साये अपना पिंड छुड़ा कर भाग रहे हैं
थोड़ी देर में लहरायेगा चांद का परचम.

रात ने फिर रण जीत लिया है
आज का दिन फिर हार गया हूं.

□ गुलज़ार

सुबह जब गाड़ियों पर सामान लादने लगे तो सब लोगों को मालूम हो गया कि हम जा रहे हैं. मजमा इकट्ठा होने लगा. लोग शोर मचाने लगे. हमने यह तरकीब की कि अपनी दोनों गाड़ियों में काफिले को रवाना कर दिया और एक घंटे के बाद सईद भाई की गाड़ी में हम रवाना हुए. पहली गाड़ियों को जाते देख कर लोग छंट गये थे, इसलिए हमको परेशानी नहीं हुई.

सईद भाई हमें अपनी नौचंदी मैदान की कोठी दिखाने ले गये. नौचंदी मेरठ का मशहूर मेला है. उर्स होता है और मजार के कुछ फासले पर, मगर सामने ही, चंडी का मंदिर है. कहते हैं कि इसीलिए इस मेले का नाम 'नौचंडी' है. मेरठ तारीखी हैसियत से भी काफी अहमियत रखता है; क्योंकि 'गदर' यहां से ही शुरू हुआ था. और जिस जगह पहला आदमी हिंदुस्तान पर कुरबान हुआ, वहां अब अट्ठारह सौ सत्तावन की यादगार बनायी जा रही है, जो इसी साल, १९५७ के खत्म होने तक मुकम्मिल हो जायेगी. यह यादगार अशोक लाट की शक्ल में है.

मेरठ से विदा ले कर आगे चले. गढ़ मुक्तेश्वर के बाद ही गंगा पार करनी थी. कितनी सफेद और चमकीली रेत है गंगा की कि आंख नहीं ठहरती! पांच मील के पाट में से अब सिर्फ साठ कश्तियों के पुल के पाट में गंगा बहती है, क्योंकि इसकी बहुत-सी शाखें इधर-उधर फैला दी गयी हैं. कश्तियों के पुल पर लिखा था—'सूरज छुपने से सूरज निकलने तक यह पुल बंद रहता है.' यहां कुछ देर रुकना पड़ा. मजरौला के बाद हसनपुर इस रास्ते से हट कर आता है. इसका बोर्ड पढ़ कर मुझे 'दायरा' याद आ गयी, क्योंकि 'दायरा' में हसनपुर का जिक्र था.

यहां के बाद अचानक मेरी अजीब हालत हो गयी. हाथ-पैर ठंडे हो गये. दिल की धड़कन तेज हो गयी. गला खुश्क हो गया और अपनी घबराहट छुपाने के लिए मैं उलटी-सीधी हरकतें करने लगी; क्योंकि मेरा [illegible] और आखिरी घर अमरोहा क[illegible]ब आ रहा था.

चंदन चुपके से मुझे दादा जी के मजार पर सलाम कराने के लिए लिये जा रहे थे. इतने बड़े बुजुर्ग के हुजूर में जाने से इनसान कांप ही जाता है. और फिर मैं तो पहली बार अमरोहा जा रही थी.

अपने इस घर को देखने का किस कदर शौक था मुझे! यहां के घरों, सड़कों, मोहल्लों के नाम मुझे इसी तरह याद हैं जैसे कि मैं हमेशा से यहां रहती रही हूं. अमरोहा स्टेशन को मैं इस तरह देख रही थी, जैसे इससे पहले मैंने कोई स्टेशन न देखा हो. (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain ... Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● जतीनदास

राकेश के पहले / राकेश के साथ / राकेश के बाद : यादों का एक लंबा सिलसिला

चंद सतरें और (८)

● अनीता औलक

पिछले अंकों में आपने पढ़ा है कि देश विभाजन ने अनीता औलक के परिवार को भी विभाजित कर दिया था. घर जगह-जगह स्थापित हो रहा था और उखड़ भी रहा था. इस बीच राकेशजी से भी परिचय बढ़ रहा था. राकेशजी के पत्र आने लगे. दोनों एक दूसरे के सामने खुलने लगे और स्पष्ट हो गया कि दोनों ही एक दूसरे को प्यार करते हैं. अनीताजी ने घर में कह दिया कि वह राकेशजी से शादी करना चाहती हैं. घर में हंगामा हो गया और कुछ फैसले किये गये. राकेशजी से उनका मिलना-जुलना बंद कर दिया गया लेकिन फिर भी कालेज के बहाने वे मिलते रहे. एक दिन उन्होंने चुपके से शादी की और बंबई चले आये अब आगे पढ़िए. . .

हम सब ३१ अगस्त को राकेशजी के छोटे भाई से मिलने गये. उसे साथ ले कर हम लोगों ने रात बाहर खाना खाया. राकेशजी ने हम दोनों का परिचय भी करवाया था -- यह है वीरेन, मेरा छोटा भाई और यह है अनीता, तुम्हारी 'भाभी'. उसने मुझे हाथ जोड़ कर नमस्कार किया. लेकिन 'भाभी' नाम से तो घबरा गया था. इस घबराहट को मैंने तत्काल ही भांप लिया था. मेरा अनुमान ठीक ही निकला था क्योंकि राकेशजी इस बात से सहमत थे कि वह 'भाभी' नाम से अब बहुत एलर्जिक हो गया है.

स्वीट डिश खाते-खाते जब रात के बारह बज गये तो टेबल पर बैठे सभी लोगों ने वीरेन को हैपी वर्थ डे विश किया. पहली अगस्त को उसकी सालगिरह थी.

हम लोग उसे ३ अगस्त को मेरी सालगिरह का निमंत्रण दे कर विदा हुए. सालगिरह के दिन राकेशजी ने अपने कई मित्रों को सिर्फ इसलिए भी बुलाया था कि वह चाहते थे कि मैं सभी से मिल लूं--अर्थात् वह अपने नये जीवन के बारे में सबको सूचित करना चाहते थे. अन्य दोस्तों के अलावा उस दिन श्री क्रश्नचंदर, सलमा सिद्दीकी, ऐनी, मनहर, राजेंद्र अवस्थी और अब्बास साहब भी आये थे.

इस सालगिरह का दूसरा महत्व यह था कि अब मैं बालिग हो चुकी थी. इक्कीस की हो गयी थी.

यहां एक बात याद आयी. सालगिरह के दिन की बात है कि यह तो सभी जानते थे कि राकेशजी कितने फक्कड़ आदमी हैं, इसीसे क्रश्नचंदरजी राकेशजी को ५०० रु. यह कह कर दे गये थे कि यह मैंने एक बार तेरे से उधार लिया था जब तू सारिका में था. तब का यह करजा मुझपर चढ़ा हुआ था जो आज मैंने उतारा है. जहां राकेशजी यह जानते थे कि क्रश्नचंदर झूठ बोल रहे हैं वहां क्रश्नचंदर यह भी जानते थे कि राकेशजी का ईगो वह किसी कीमत पर नहीं तोड़ सकते थे. फिर भन्नू जी ने भी ३०० रु. का चेक भेजा, लिख कर --बहुत छोटी रकम है मिलते ही भूल जाना.

फिर एक-दो दिन बाद कमलेश्वरजी भी बंबई पहुंच गये, जैसा कि उन्होंने वादा किया था. वह सिर्फ यही देखने आये थे कि सब कुछ कैसा चल रहा है. उन्होंने पहुंच कर बहुत मजेदार किस्से सुनाये. उन्होंने बताया कि जिस दिन मैं घर नहीं पहुंची उस दिन मां कमलेश्वरजी के दफ्तर पहुंच गयी थीं. उन्हें धमकी देने लगीं कि वह उन्हें गिरफ्तार करवाने के लिए पुलिस ले कर आयी हुई हैं. तब कमलेश्वरजी चाय पी रहे थे. बोले--तो पुलिस को बाहर क्यों खड़ा किया हुआ है. अंदर लाइए न -- आखिर चाय का वक्त भी तो हो गया. है. जब वह बहुत गिड़गिड़ायीं कि वह बता दें कि मैं कहां हूं तो वह बोले--आप घबरायें नहीं वो दोनों भी बड़े आराम से बंबई के किसी - न - किसी होटल में चाय-वाय पी रहे होंगे. कहने के साथ उन्होंने मां के आगे चाय की प्याली रख दी.

एक और मजेदार सूचना जो कमलेश्वरजी ने आ कर दी वह यह कि पुलिस ने मां का यह केस दर्ज करने से सरासर इंकार कर दिया था. यह कह कर कि अठारह साल की उम्र में तो व्यक्ति बालिग हो जाता है.

जहां मां को इस बात का शाक लगा होगा, वहां हम लोगों को भी कम नहीं लगा. बहरहाल कमलेश्वरजी हमें यह सलाह जरूर दे गये कि अभी काफी देर तक दिल्ली जा कर रहना हम लोगों के हित में नहीं होगा. इसीलिए हम लोग बंबई में ही रहने के लिए मजबूर हो गये थे. कमलेश्वरजी कुछ दिनों बाद दिल्ली लौट गये.

जिंदगी में पहले नंबर पर मेरे लिए लेखन है, दूसरे नंबर पर मेरे दोस्त और और तीसरे नंबर पर तुम--लेकिन तीनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे लिए आवश्यक हैं—यह एक ध्रुव सत्य था.

हम जितनी देर बंबई में रहे राकेश किसी-न-किसी मित्र से घिरे ही रहे और कभी अकेले हुए तो आत्मलीन रहते तना कि हम दोनों एक दूसरे को सिर्फ उतना ही जान पाये जितना जिंदगी शुरू करने से पहले जानते थे—और वह जानना, जैसा कि मन्नूजी ने मुझसे कहा था, कोई जानना नहीं था.

और वह घर, जिसके बारे में राकेशजी ने बात की थी, मुझे दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहा था. मुझे लगा कि जितना बड़ा चैलेंज मैंने उसे महसूस किया था वह आज कहीं उससे भी ज्यादा बड़ा था.

कैसे और कब उनसे कोई बात पूछूं या या करूं यही अपने में एक बहुत बड़ी समस्या हो गयी थी. इसलिए जितना थोड़ा समय भी मिलता उसमें हम सिर्फ एक दूसरे से उलझ कर ही रह जाते. फिर एक दूसरे को सिर्फ मनाने-संभालने की जद्दो-जहद—अभी पहली गलतफहमी ही नहीं सुलझती कि दूसरी में उलझ जाते. जब भी कभी अलग होते तो सिर्फ एक दूसरे से शिकायत करते-करते ही अपने को फना कर देते. नतीजा, हमें कभी यह मौका नहीं मिला कि हम एक दूसरे के अच्छे पहलू को भी देखें, समझें. हमें सिर्फ इतनी ही फुरसत मिलती कि एक दूसरे को यह बता सकें कि हम दोनों में किस-किस चीज की कमी है.

सिर्फ इतना ही नहीं हम उन दिनों जिन परिवारों से संबद्ध थे वह लोग मुझे देख कर पहले ही दिन घबरा गये थे कि मैं उस दुर्द्धर्ष आदमी के साथ कैसे पूरी उतरूंगी.

अनीताजी : शादी के बाद पहला जन्मदिन

नतीजा कि मेरे एक-एक व्यवहार, एक-एक बात को ले कर चीमी गोइयां होने लगीं. मेरी किसी भी की गयी बात को मैग्नी-फाइंग ग्लास से देखा जाता—नतीजा, मैं कोई व्यक्ति न हो कर केवल एक केंद्र बन कर रह गयी थी.

मुझे सिर्फ आस-पास के लोगों से ही पता चलता था कि राकेश क्या है, क्या नहीं है. उसे क्या पसंद है क्या नहीं है— यहां तक यह बात भी मुझे मित्रों से ही पता चली कि वह एक बहुत बड़े लेखक हैं. यह बात तो एक तरफ की थी—मुझे तो राकेशजी के मित्रों से उनके बारे में सब कुछ पता चलता रहा लेकिन मेरे बारे में राकेशजी तक कुछ भी पहुंचाने वाला कोई नहीं था. मुझे वहां कोई भी नहीं जानता था कि मैं क्या हूं—और शायद इस बात की जरूरत भी किसीने महसूस नहीं की.

यह बात पूरी तरह मान ली गयी थी कि अगर मैं राकेशजी के जीवन में आयी हूं तो सब कुछ सोच-समझ कर ही आयी होऊंगी—और वह सब कुछ क्या था, इसी पर शोध करते-करते मैं अपने आपको भूल गयी—और यहीं पर शोध समाप्त हो गया था—मैं राकेशजी को समझ गयी थी लेकिन यह बहुत बाद की बात है. अभी तक तो यही सच था, 'बस के दुश्वार है—'.

दीवाली से कुछ दिन पहले हम दोनों बंबई के पास माथेरान हिल स्टेशन चले गये. वहां राकेशजी ने एक बहुत बड़ा काटेज बुक करवाया था. दो दिन बाद उज्ज्वला मामी (मिसेज वेदी) हमें खाने-पीने की ढेर सारी चीजें दे गयी थीं—दीवाली पास ही थी. फिर दिवाली के दिन माई (मिस्टर वेदी) अपना कैमरा ले कर पहुंचे. हम तीनों ने एक बहुत ही प्यारी दीवाली शहर से दूर उन घाटियों में मनायी थी. वो दीवाली मुझे जिंदगी भर नहीं भूल सकती. मैं अंदर कमरे में रंगोली बना रही थी. माई ने अंधेरे में दीयों की रोशनी में मेरी सालों तक याद रहने वाली दीवाली को कैमरे से कैद किया था.

बाहर राकेश जी दीये जलाते-जलाते दुःखी हो गये थे. वह मुझे अंदर से बाहर खींच लाये—माई के कैमरे ने वहां भी मेरा पीछा किया. उस अंधेरे में प्रकाश देती मेरी परछाइयां निश्चित ही ठीक उतरी थीं.

फिर दीवाली के बाद सभी मित्र निमं-त्रित किये गये. बासू-रिंकी और उनकी मौसी—श्री और श्रीमती वैद—श्री और श्रीमती कपूर—माई-मामी और बच्चे. एक मेला-सा लग गया था. कैसे दिन निकल गये, पता ही नहीं चला. कितना हो-हुल्लड़ हुआ, तोबा-तोबा.

धीरे-धीरे सब लोग चले गये—रह गये पीछे सिर्फ बासू—रिंकी. वह लोग भी जाने लगे तो राकेशजी ने तय किया कि हम लोग भी क्यों न कुछ दिनों के लिए बंबई हो आयें.

प्रोग्राम बन गया था—हम लोग सब एक साथ रवाना हुए. मैं उस दिन का डकन क्वीन का सफर कभी नहीं भूल सकती.

मैं और रिंकी उस पूरे सफर में अपने कंपार्टमेंट में ही बैठे बातें करते रहे. फिर अचानक रिंकी बोली—अरे, वो दोनों कहां हैं? फिर वह कंपार्टमेंट से निकल कर उन्हें ढूंढ़ने गयी. आयी तो बोली—वह दोनों उसी लड़की को घेरे डाइनिंग कार में बैठे हैं. आज मैं समझ[illegible] बासू को भी.

'उसी लड़की' से तात्पर्य उस एक लड़की से था जिसे स्टेशन पर सी-आफ करने पूरा माथेरान आया हुआ था. फिर जब गाड़ी रवाना हुई तो उस लड़की को सी-आफ करने में जो शोर उस स्टेशन पर मचा था उसमें इंजन की आवाज भी डूब गयी थी.

रिंकी और बासू 'दादर' स्टेशन पर उतर गये और हम लोग बंबई सेंट्रल पर. स्टेशन पर राकेशजी ने उस लड़की से जब मेरा परिचय कराया तो मैंने उसे 'विश' नहीं किया. फिर क्या था—घर जा कर जो हुआ, उसे सिर्फ कल्पना पर ही छोड़ :देना चाहिए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राकेशजी ने अपने सब मित्र इकट्ठे कर लिये थे और मुझे बीच में बैठा कर उन्होंने मुझे क्या कुछ नहीं कहा—क्या कुछ नहीं सुनाया. राकेशजी मुझे उज्ज्वला भाभी के पास छोड़ कर अकेले ही माथेरान चले गये थे. यह कह कर कि मैं इसी तरह बनी रही तो उन्हें मेरे से कोई लेना-देना नहीं है. मुझे भाभी के पास रहना है और वही सब कुछ करना है जो वह कहती हैं.

हमारी नयी जिंदगी का अंत यहां हो सकता था लेकिन नहीं हुआ. क्योंकि जिस घर की जरूरत की बात राकेशजी ने मुझसे की थी—उसी 'घर' की जरूरत कहीं मुझे थी.

राकेशजी से रिश्ता जोड़े मुझे छह महीने ही हुए थे—लेकिन उन छह महीनों में हम दोनों एक दूसरे से और भी बेगाने हो गये थे. यह अलग बात है कि जिस रूप को हमने एक दूसरे में पाया उसकी हम दोनों में से किसी को भी जरूरत नहीं थी. घर से चले थे हम तो खुशी की तलाश में—लेकिन कैसी नियति थी. कैसी विडंबना थी.

राकेशजी जब माथेरान से लौटे तो काफी बदले-बदले से थे—यों एक तरह से और भी बेगाने—उनसे मैं कोई बात भी कर सकती हूं ऐसा मुझे नहीं लगता था.

एक दिन वह मुझे बाहर एक होटल में ले गये.वहां बैठा कर उन्होंने मुझसे बहुत आत्मीयता से बात करने की कोशिश की, लेकिन हम लोगों के बीच अब तक इतनी खाई पैदा हो गयी थी कि बात नहीं बनी. उन्होंने जितने विश्वास के साथ बात करनी शुरू की उतने ही अविश्वास के साथ समाप्त भी हो गयी.

उस छिन से बात नहीं हो सकी और हम यों के यों ही वापस घर लौट आये, इतना जरूर उन्होंने मुझसे कह दिया था कि हम लोग जल्दी ही एक फ्लैट अलग से लेंगे.जो हमने भाभी के घर से चार बिल्डिंग छोड़ कर ले भी लिया था.

इस सब में मैं आपको यह बताना भूल गयी कि करवाचौथ पर अम्मां ने इलाहाबाद से मुझे लाल साड़ी, सिंदूर और शगुन भेजा था. उसे पाने पर जो सुख मुझे तब मिला था वो आज नहीं भूलता. इसीसे जनवरी में जब राकेशजी दिल्ली श्री ओमप्रकाश जी की लड़की विनीता की शादी में गये थे तो प्रोग्राम यह तय हुआ कि मैं इस बीच इलाहाबाद जा कर अम्मां से मिल आऊं. उसके बाद राकेशजी मुझे इलाहाबाद से लेते हुए वापस बंबई आ जायेंगे.

अम्मा से मिल कर बड़ा सुख मिला था. वहां उनके पास कुछ दिन रहने से फिर से यह विश्वास मन में पैदा होने लगा था कि मैं भी किसीकी बीवी हूं, किसीकी बहू हूं. राकेशजी आये तो मुझसे रहा नहीं गया—ऐसा ही—ऐसा ही मैं एक घर चाहती हूं—जहां हम तीनों हों—बस.

रात हुई तो अंधेरे में राकेशजी टटोलते-टटोलते मेरी चारपाई तक आ गये. मेरे सीने में सिर छुपा कर वह चुपचाप उसे भिगोते रहे. एक बार फिर मन में विश्वास जागा था—आने वाले कल में.

हम दोनों को ही यह विश्वास हो गया था कि अम्मां के साथ रहने से हम दोनों को ही बल मिलेगा—शक्ति मिलेगी—एक मजबूत धरातल—एक 'घर' बनाने के लिए राकेशजी ने यह बात स्वीकार कर ली थी.

दोनों का ही मन नहीं कह रहा था अम्मां को छोड़ कर जाने का. कितना-कितना अच्छा लगता था मां का अंगीठी जलाना, उस पर उबलती दाल—फूलते फुलके फिर अम्मां के दोनों तरफ बैठ कर ताजा, ताजा फुलका खाना—फिर करारे करारे फुलकों के लिए लड़ना—और अम्मां के न्याय में विश्वास करना—सभी कुछ तो कितना अच्छा-अच्छा था.

अम्मां इतनी निश्छल और निर्मल थीं कि देखते ही बनता था. लगता था कि कोई कितना भी असंभव या दुर्लभ क्यों न हो, वहां आ कर बदल सकता है. वो सिर्फ प्रेरित ही नहीं करती थीं बल्कि शक्ति भी देती थीं—हर उसको जिसे उसकी जरूरत होती और हम, हम तो थे ही भिखमंगे—दर-दर भटकने वाले. . .

अम्मां से हम वादा करके आये थे कि हम उन्हें जल्दी ही अपने पास बुला लेंगे—अपने घर में. बंबई पहुंचे तो राकेशजी का वहां मन नहीं लगा. उन्होंने बहुत सोचा, फिर मुझसे बोले—चल, दिल्ली चलें.

दिल्ली में वही पहले वाला घर था. वहां पर कभी राकेशजी ने मुझसे पूछा था कि क्या मैं उस घर से कभी जाना चाहूंगी. उस घर को देखते ही कितना कुछ आंखों के आगे घूम गया. सब कुछ याद करके एक बार आंखें फिर भर आयीं—अपनी एक और ही प्रकार की असमर्थता लिये.

इस बार हम सब थे. अम्मां भी तार मिलते ही ठीक उसी दिन गयी थीं.

बीच की मंजिल पर अब कमले जी और गायत्री भाभी रहते थे. और बरसाती में हम तीनों ने एक छोटा घोंसला बनाया था. राकेशजी को अभी मैं सिर्फ इतना ही समझ पायी थी कि सुबह देर तक सोते हैं इसलिए आस कोई चिड़िया भी नहीं फड़कनी चाहिए. इस एक बात को समझने के बाद मुझसे बहुत प्रकार की गलतियां होती रहती थीं जिन्हें मैं बारबर कंठस्थ करती रहती कि फिर कभी न हों.

हर रोज मुझे लगता था कि मैंने राकेशजी को समझ लिया है कोई परेशानी नहीं रही, लेकिन हर दिन लगता था कि बस यही एक और समझने को रह गयी थी—बस, सब ठीक होगा. . .

दिल्ली पहुंच कर मुझे याद आया अगर मैं अपने बी. ए. की परीक्षा इस जून में नहीं दूंगी तो फिर कभी पंजाब यूनि वर्सिटी से प्राइवेट एपीयर नहीं हो सकूंगी क्योंकि प्राइवेट कंडीडेट के लिए वह आखिरी वर्ष था.

मैंने जब राकेशजी से यह बात कही तो वह मान गये. उस दिन जा कर मैं किताबें भी खरीद लायी.

जब कुछ समय ऐसे ही निकल गया और फार्म भी चले गये राकेशजी को लगने लगा कि वहां रह कर मेरी पढ़ाई ठीक से नहीं हो पा रही. आधे से अधिक समय तो मैं उनके इस या उस काम में ही लगी रहती फिर खाना बनाती और शाम को उनके मित्रों को अटैंड करने में निकाल देती.

उन्होंने मुझे सलाह दी कि मैं पढ़ाई के लिए बंबई चली जाऊं. वहां मुझे काफी समय मिल जायेगा. लेकिन जैसे ही मैंने उनकी बात मान ली, मैंने देखा कि उनका चेहरा उतर गया था. कहने के बाद ही उन्हें लगने लगा कि उन्होंने गलत सलाह दी है.

वह नहीं चाहते थे कि मैं जाऊं लेकिन एक बार कह कर उसे वापस लेना उनके ईगो के खिलाफ था. मैं बंबई चली आयी.

अगले अंक में

जिस घर की राकेशजी को तलाश थी, क्या वह घर उन्हें मिल सका?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्ग तथा वर्ग संघर्ष और समांतर साहित्य

● डॉ. रामवचन राय

रतीय समाज स्वरूपतः सामंती रहा है. वह वर्ण और वर्ग के चौखटे में बद्ध हो कर किसी भी अज्ञात-कुलशील सामने प्रश्नचिह्न लगाता आया है. कर्म दुहाई देते हुए भी व्यवहार में वह कुल ही व्यक्ति की श्रेष्ठता का आधार तता रहा है. यही वजह है कि समाज का क बहुत बड़ा हिस्सा अछूत के नाम पर दियों से शोषित, पीड़ित और तिरस्कृत आजादी के बाद संविधान में इस दलित र्ग के उत्थान के लिए कुछ प्रावधान रखे ये और इन्हें समाज में समान दर्जा दिलाने ी बात उठायी गयी. किंतु आज तक मारे समाज की सवर्ण मानसिकता ने से स्वीकार नहीं किया है.

दूसरी ओर गरीबी और अशिक्षा के ारण दलित-वर्ग के भीतर वर्ग-चेतना हीं विकसित हो पायी है, जिससे वह पने अधिकार की लड़ाई लड़ सके. व्यव-ार में देखा यही गया है कि हमारे यहां र्ग-चेतना के विकास के मार्ग में वर्ण सबसे ड़ी बाधा है. जब तक वर्ण की दीवार हीं टूटती, वर्ग की लड़ाई तेज नहीं हो सकती. यहां की वर्ण-व्यवस्था भले ही कभी उदार रही हो; किंतु इसका संकीर्ण, घातक और घिनौना रूप ही हमारे सामने ज्यादा है. उच्च वर्ग हमेशा से सुविधाभोगी और अधिकारयुक्त रहा; अतः समाज में उसका प्रभुत्व बना रहा. हिंदुस्तान में यही (उच्च) वर्ण (उच्च) वर्ग के रूप में विकसित हुआ है. यह जन्मना अभिजात, सामंत और संपत्तिशाली है. इसके साथ नव-धनवान वर्ग को भी शामिल कर लेना चाहिए जो आजादी के बाद उद्योग-धंधे, ठेकेदारी और तस्करी के कारण बढ़ा है. दोनों ही समान रूप से समाज का शोषण करते हैं. ये अपने बचाव के लिए वर्ण को ढाल के रूप में इस्तेमाल करते हैं. यानी जब भी वर्ग पर हमला होता है, पूंजीपति गरीबों को अलग-अलग जातियों में विभक्त कर फूट डाल देते हैं और हमारी लड़ाई कारगर नहीं हो पाती. यही कारण है कि गरीबों और शोषितों का संगठन नहीं बन पाता; अगर कोई बनता भी है तो उसका नेतृत्व सवर्णों और धनवानों के हाथ में होता है और वे अपनी मर्जी के अनुसार उसका इस्तेमाल करते हैं.

साहित्य इस सामाजिक गैर-बराबरी, को पाटने में अपनी भूमिका निभा सकता है. किंतु अब तक इस दिशा में छिट-फुट प्रयास ही हुआ है. उसके चिंतन के मूल में वर्ण और वर्ग के संस्कार निहित रहे हैं. इसलिए दलितों और शोषितों के प्रति वह न्याय नहीं कर पाया है.

मराठी में दलित-साहित्य का जो आंदोलन चला है, वह परंपरागत सवर्ण और सामंती साहित्य की ही प्रतिक्रिया है.

हिंदी में कथा-साहित्य के माध्यम से इस वर्ग-चेतना का विकास हो रहा है. चूंकि कथा में घटनाएं प्रधान होती हैं और ये घटनाएं सामान्य आदमी के जीवन में निरंतर घटती रहती हैं, अतः जागरूक कथाकार इस सामाजिक सत्य को अनदेखा नहीं कर सकता. हिंदी कहानी आज अपनी यात्रा के जिस मोड़ पर है, वहां लेखन की अन्य विधाओं की तुलना में उसका ज्यादा लोकप्रिय होना अकारण नहीं है. आम आदमी के सुख-दुख और उसकी जीवन-चर्या से कहानी सीधे जुड़ती है. सच पूछा जाये तो आदमी से अलग कहानी का अस्तित्व भी नहीं. उसके मूल में संघर्ष-शील आदमी होता है और कहानी उसके अनुभवों, क्रिया-कलापों और संबंधों का दस्तावेज होती है.

यह एक जाहिर तथ्य है कि पूंजीवादी व्यवस्था की विकृतियों के फलस्वरूप सामाजिक संघर्ष तीव्र होता जाता है और ऐसी दशा में मानवीय संबंधों का विघटन होने लगता है. प्रेमचंद ने मानवीय संबंधों के इस विघटन को अपनी **'कफन'** कहानी में अत्यंत गहराई के साथ उपस्थित किया.

बाद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ की जगह मनोविश्लेषण ने ले ली. जैनेंद्र, जोशी और अज्ञेय इस धारा के प्रमुख कहानीकार हुए, जिनमें वर्ग-चेतना का नितांत अभाव था. व्यक्ति की काम-कुंठाओं को कहानी का विषय बना कर इन लोगों ने एक वृहत्तर सामाजिक जीवन से अपने को काट लिया.

इसके बाद कमलेश्वर, यादव और राकेश ने कहानी को फिर से सामाजिक यथार्थ से जोड़ने की कोशिश की. किंतु यह मध्य वर्ग का यथार्थ था. इनकी कहानियों में घर-बाहर, दफ्तरों में अनेक तरह की समस्याओं से जूझते हुए लोग हैं. कम-लेश्वर के अनुसार इस 'मरते हुए मध्यवर्ग की आखिरी सांसें कहानी में सन् '६४-६५ तक सुनायी देती रहीं'. इस बीच रेणु ने गांव को केंद्र बना कर वहां के जन-जीवन को कहानियों में उपस्थित किया. एक ओर **'रसप्रिया'** कहानी में पचकौड़ी, मृदंगिया और मोहना के माध्यम से वर्णाश्रित वर्ग-चेतना को अभिव्यक्ति दी, दूसरी ओर **'मैला आंचल'** में निम्न-वर्ग पर होने वाले सवर्णों के अत्याचार और शोषण के सजीव चित्र उपस्थित किये.

सामाजिक और आर्थिक स्वार्थों के संघर्ष के फलस्वरूप जो परिस्थितियां पैदा हुई हैं, उनमें जीवन की सच्चाइयां आज और अधिक नंगी हो कर सामने आयी हैं. कमलेश्वर ने इन स्थितियों का विश्लेषण करते हुए लेखन की दो अनिवार्य भूमिकाएं स्पष्ट की हैं — 'मूर्त्त प्रतिरोधी शक्तियों से सीधे संघर्ष करना और अमूर्त्त प्रतिरोधी शक्तियों को वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषित करके टकराना और संस्कार-बद्ध या उसका शिकार हो गये आदमी को उन गुंजलकों से मुक्त करना — लेखन की यही दो भूमिकाएं हो सकती हैं.'

कहानी में सन् '६७ के बाद ये भूमि-काएं साफ और स्पष्ट हुई हैं, और लड़ाई का असली मुद्दा सामने आया है. कामता-नाथ, सुदीप, मधुकर सिंह, जितेंद्र भाटिया, से. रा. यात्री, इब्राहीम शरीफ आदि की कहानियों में ये भूमिकाएं लक्षित होती हैं. सचमुच, यदि कहानी वर्ण और [illegible] के सामंती शिकंजे में फंसे आदमी की मुक्ति के लिए एक सार्थक लड़ाई लड़ सके, तो सामाजिक परिवर्तन की दिशा में यह बहुत बड़ा कदम होगा. □□□

● व्यंग्य कल्पना : अरविंद मालवीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सही पालन पोषण का आधार

पराग

(स्प्रे-ड्राईड)
शिशु दुग्ध आहार

'पराग' नवजात शिशु के सही पालन पोषण के लिए विश्वसनीय दुग्ध आहार है। इसे आप शिशु को जन्म के बाद पहले ही सप्ताह से दे सकती हैं। स्वादिष्ट तथा शक्तिदायक 'पराग' पिलाने से शिशु सदा स्वस्थ और सक्रिय रहेगा।

ताज़े दूध से अत्याधुनिक स्प्रे-ड्रांइग प्रक्रिया द्वारा निर्मित, पलभर में तैयार प्रोटीन, विटामिनो (आठ), खनिज पदार्थों तथा अन्य पौष्टिक तत्वों से भरपूर 'पराग' को आप अपने शिशु की कोमल पाचन शक्ति के अनुकूल पायेंगी।

एकमात्र वितरक : स्पैंसर एण्ड कं० लिमिटेड

प्रादेशिक कोआपरेटिव डेरी फेडरेशन लिमिटेड, लखनऊ द्वारा इन्फेंट मिल्क फूड फैक्टरी, दलपतपुर (मुरादाबाद) में निर्मित

ASIAN/PIMF/82

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

☐ सदानंद झा

जन्म ७ जून १९४२ को झाझा, मुंगेर (बिहार) में. सात साल से लिख रहा हूं. रचनाशील रहूंगा— अब तक जिंदा हूं. उस क्रम में बहुत कुछ लिख चुका हूं. सात उपन्यास, दर्जनों कहानियां. कुछ कहानियां प्रकाशित जहां-तहां से. दो उपन्यासों की पांडुलिपि प्रेस में.

मेरी यह दृढ़ आस्था है—जो कुछ भी लिख रहा हूं, वह आम आदमी की जिल्लत है. व्यथा है. टीस है. देख रहा हूं. अनुभव कर रहा हूं. आज की अर्थ-व्यवस्था की चोट से बुरी तरह संत्रस्त है, घायल है—आम आदमी. इस

नयी पौध

कारण, वह तड़प रहा है. छटपटा रहा है आर्थिक स्वतंत्रता के लिए. यह पूर्ण सत्य है कि निम्न मध्यवर्गीय परिवार टूट रहा है. बिलट रहा है. सच यह है कि वह जानवर से भी बदतर जिंदगी गुजार रहा है. इस आर्थिक खींचातानी के बीच वह परिवार खिसकता जा रहा है सर्वहारा की तरफ. लेकिन दुर्भाग्य है यह कि वह वहां भी अपने पैर को जमा नहीं पाता है. भ्रमजाल को तोड़ नहीं पाता है. तब, इस भाग-दौड़ विघटन की प्रक्रिया के मध्यम से एक नयी क्रांति का जन्म होता है. मैं इस तथ्य को नजर अंदाज नहीं कर सकता हूं. मेरी कलम दोगली अर्थ-व्यवस्था के बूट के नीचे चरमराते आम आदमी की अभिव्यक्ति है.

सारिका पाठक-परिवार १९७५

● सर्वशुद्ध हल तथा पुरस्कार-विजेता

इस बार न्यूनतम एक अशुद्धि पर ११ प्रतियोगियों को २०–२० रु. का पुरस्कार दिया जा रहा है जो हैं :

१. कृष्ण कुमार अग्रवाल, ११७३ मेडिकल कालेज हास्टेल, जबलपुर, २. वीरेंद्र कुमार जैन, कमरा नं. ३१, इंजीनियरिंग होस्टल नं. ३, जोधपुर (राज.), ३. कुंजबिहारी मिश्र, द्वारा नवीन कुमार भाटिया, सीमा बुक सेंटर, स्टेशन रोड, बीकानेर (राज.), ४. सुशील कुमार जैन ११८६, एन. एच. ४, एन. आई. टी. फरीदाबाद (हरियाणा), ५. पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव, माल गोदाम रोड, बजरिया बीना, बीना (म. प्र.), ६. जवाहर लाल अग्रवाल, स्टेट बैंक आफ इंडिया, कटनी (म. प्र.), ७. वर्धमान सकलेचा, प्रेसिम केमिकल डिवीजन, बिरला ग्राम, नागदा (म. प्र.), ८. ओमप्रकाश गुप्त, फ्लैट नं. ९ न्यू साहू बिल्डिंग्स, अनन्तपुर, रांची (बिहार), ९. भुवनेश वशोत्तर, द्वारा डा. ए. ए. नईम, शिंदे की गोठ, हुजरात पुल, लश्कर, ग्वालियर (म. प्र.), १०. हरचरन सिंह रेखी, ४।१०१, निरंकारी कालोनी. दिल्ली–१, ११. अवतार सिंह, १३३ सायर भवन, आजाद रोड, विले पार्ले (पूर्व), बंबई–५७.

और यह रहा इस बार का सर्वशुद्ध हल : १. एक और हत्या, २. स, ३. मजमेबाज, ४. पृ. ४८–४९, ५. गनेसीलाल, ६. जबलपुर, लखनऊ, गाजियाबाद, ७. पृ. १२।७९, ८. पृ. ७९, ९. आतंक भरा सुख.

सारिका कथा पहेली

ध्यान से कहानियां पढ़िए और २५० रु. पुरस्कार प्राप्त कीजिए

इस कथा-पहेली के सभी प्रश्न 'सारिका' के जनवरी ७५ के अंक पर आधारित हैं. डाक द्वारा कार्यालय में हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि ७ मार्च ७५ है. लिफाफे पर मात्र यह पता लिखिए :

सारिका कथा पहेली : फरवरी : पो. बा. २१३, बंबई–१

१. इस पुरुष-पात्र के प्रति बरबस ही सहानुभूति उमड़ आती है : बड़े बाबा ( ), दीनबंधु पाठक ( ), लगनराम ( ), जीनियस ( )

२. लक्ष्मी का जिक्र इस पृष्ठ पर आया है : ( )

३. इस पुरुष पात्र के प्रति आक्रोश से अधिक घृणा ही उपजती है : बेबेन बाबू ( ), मास्साब ( )

४. इस स्थान का जिक्र इस अंक में आया है : सुलतानपुर ( ), रीवां ( ) पानीपत ( ), सतना ( ), हाजीपुर ( )

५. पृष्ठ ६६-६७ की लघुकथाओं में से जिसका व्यंग्य सबसे तीखा है, वह इस अक्षर से शुरू होती है : ( )

६. इन दो रंगीन पृष्ठों की साज-सज्जा और ले आउट सर्वश्रेष्ठ है : २४-२५ ( ), ३६-३७ ( ), ४८-४९ ( ) ६०-६१ ( ), ७२-७३ ( )

७. इस कहानी का शीर्षक इसके कथ्य के सर्वथा उपयुक्त है : बूढ़ेवाली ( ), फिर एक बार ( ), घुन ( )

८. इस कहानी के प्रमुख पात्र का व्यवहार समझ पाना सरल नहीं : घुन ( ), यह सब अंतहीन ( ), इजारेदारी ( )

नाम . . . . .आयु. . . . .

पता. . . . .

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

modipon
Makes Better Nylon & Polyester Yarn

Reslon®
Makes Better Synthetic Fabrics

Reshamwala RAYONS (SURAT) PVT. LTD.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफर में थोड़ा सामान रखें

ज्यादा सामान से आपको और अन्य यात्रियों को परेशानी होगी।

मध्य रेल

H.N.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

AGMARK

खाने की
खालिस वस्तुओं
के लिए
एगमार्क
निशान देखिए

मक्खन, घी, तेल, पिसे मसाले, गेहूं का आटा, शहद, अंडे आदि खरीदते समय एगमार्क निशान जरूर देखिए।

एगमार्क निशान
असली की पहचान

davp 4/414

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित
व प्रकाशित. पो बाक्स २१३, बंबई-१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-१; कलकत्ता आफिस : १३/१
और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट. लंदन आफिस : ३०-ए, डिस्ट्रिक्ट रोड, सडबरी, वेम्बले, मिडिलसेक्स, यू. के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पंजीयत सं. एम. एच. दक्षिण बंबई-३९९

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

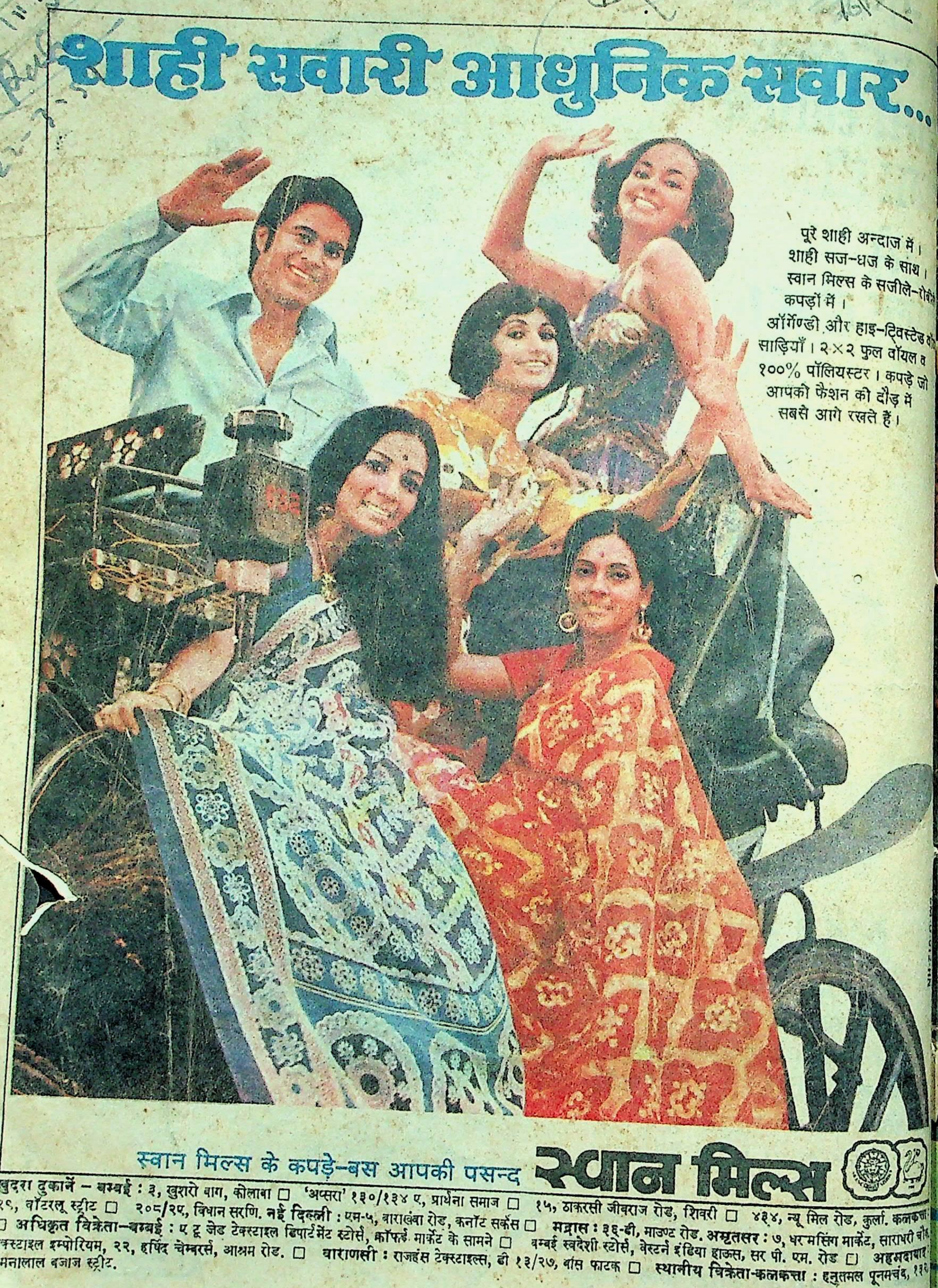

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar